देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
July 2025
Vol.-22, Issue-1

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

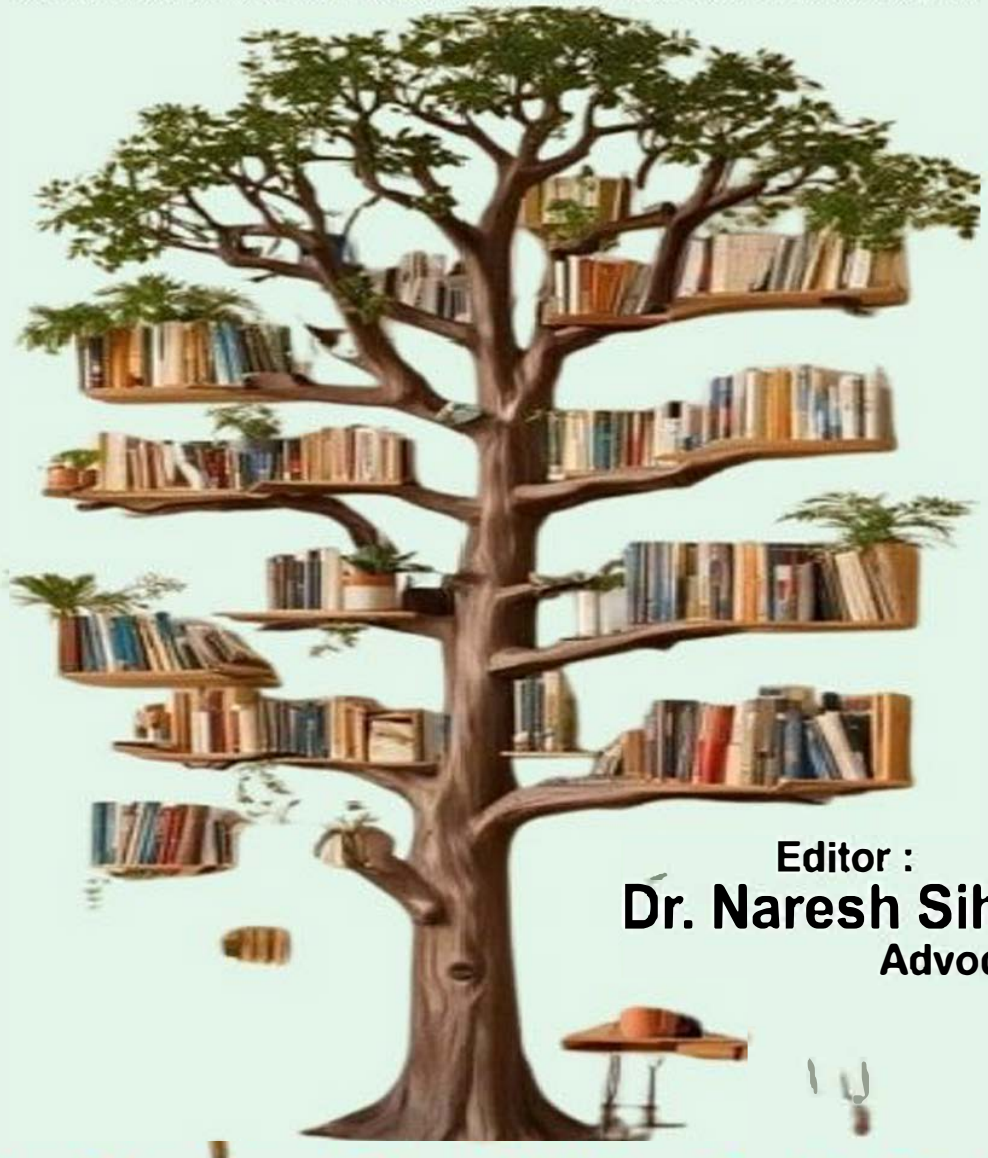

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 **ISSUE-1** **(जुलाई 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

अनुक्रमणिका - जुलाई 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	डॉ. अम्बेडकर : जन्म, शिक्षा, परिवेश और वैचारिक विकास	डॉ० अरुण कुमार सिंह	11-15
3.	भारतीय ज्योतिष परंपरा में स्वास्थ्य और आहार : मेडिकल एवं आहार ज्योतिष का समन्वित अध्ययन	स्नेह	16-22
4.	“સામાજિક પરિવર્તનકારી કલંકિત એવી વિભાજનની રાજકીય ઘટનાનું હિન્દી કવિતામાં પ્રતિબિંબ”	મિસ્ત્રી પ્રકાશકુમાર મગનલાલ	23-26
5.	अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के सशक्त हस्ताक्षर : डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा ‘अरूण’	डॉ. भरत सिंह	27-31
6.	ग्रेस कुजुर की कविताओं में स्त्री संघर्ष का स्वर	बलराम मीना	32-35
7.	पृथ्वीराज चौहान और उनकी दिग्विजय की समीक्षा	भोजाराम	36-38
8.	डा० रामविलास शर्मा का हिंदी आलोचना में योगदान	प्रो० डॉ. रश्मि कुमारी शीलेन्द्र कुमार	39-45
9.	अथर्ववेद में पर्यावरण चेतना	गिरजा शर्मा डॉ0 निहारिका चतुर्वेदी	46-50
10.	भारत पाकिस्तान के सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक संबंध	विनोद कुमार डॉ. एस.के. सिद्धार्थ	51-53

11.	शराब की समस्या पर कुमाउँनी कवियों का चिंतन	गरिमा पंत त्रिपाठी	54-56
12.	കേരളത്തിലെ ഗോത്രസ്ത്രീകളുടെ സ്വത്വപരിണാമം	ഡോ. സൗമ്യ ബേബി	57-65
13.	प्राचीन भारत में शिक्षा का अधिकार	डॉ. शक्ति जायसवाल	66-69
14.	प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली: गुरुकुल से विश्वविद्यालय तक	डॉ॰ हरीश कुमार सिंह	70-72
15.	राकेश कुमार सिंह के उपन्यासों में आदिवासी कला और संस्कृति	ऐश्वर्या अनिलकुमार	73-76
16.	पानीपत की तृतीय लड़ाई - भारतीय इतिहास का निर्णायक मोड़	Dr. Rashmi Malik	77-80
17.	भारत की राजनीति में जाति समूह का महत्व	कविता यादव	81-84
18.	हिन्दी दलित कहानियों का कला पक्ष	रूपम कुमारी	85-89
19.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं मानवीय मूल्य : संभावनाएँ और चुनौतियाँ	डॉ॰ नन्द किशोर शर्मा	90-94
20.	Aligning Yoga with Present-Day Education	Dr. Rajesh Kumar Sinha	95-98
21.	BITCOIN – A DIGITAL ASSET	Dr. Anju Singla	99-103
22.	बदलते गाँव बदलते रिश्ते -एक मूल्यांकन- 'एम डॉट कॉम' कहानी के विशेष संदर्भ में	डॉ. अमलाकुमारी बी	104-106
23.	Sociology of Vulgarity: Impact of Vulgar content on children	Dr Punditrao C Dharenavar	107-110
24.	लिपियों का उद्गम : एक समीक्षात्मक आकलन	डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह	111-114
25.	Exploring Academic Anxiety in	Swati,	115-118

	Secondary Education: A Conceptual Framework	Dr. Sudarshan Singh	
26.	राम भक्ति काव्य धारा का सामाजिक प्रभाव एवं विस्तार	अविनाश पाण्डेय, डॉ. अनुराग मिश्रा	119-122
27.	ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ನಡುವಿನ ಸಂಬಂಧ: ಒಂದೇ ನಾವೆಲ್ಲಾ	-ಪ್ರೊ|| ಪಂಡಿತರಾವ ಚಂದ್ರಶೇಖರ ಧರೆನ್ನವರ	123-126
28.	ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਬਸਵੱਨਾ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ	ਡਾ. ਪੰਡਿਤਰਾਓ ਚੰਦਰਸ਼ੇਖਰ ਧਰੇਨਵਰ	127-132
29.	माता खीवी और सामाजिक सेवा: आधुनिक समाज में समाज सेवा को मजबूत कैसे किया जाए	डा. पंडितराव चन्द्रशेखर धरेनवर	133-140
30.	विनोद कुमार के उपन्यास : 'झारखंड' के अस्मिता एवं अस्तित्व की दास्तान	तरुण कांति खलखो	141-144
31.	हिंदी आदिवासी कहानियों में चित्रित आदिवासी स्वास्थ्य समस्याएं	नेहा यादव	145-148
32.	ऐतिहासिक मिंजर मेले का सांस्कृतिक परिदृश्य	आमना देवी	149-153
33.	The Interrelation of Religion and Morality: A Gandhian Perspective	Utpal Gogoi	154-159
34.	हिंदी दलित कहानियों पर डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकी का प्रभाव	रोहित कुमार, डॉ. ए. सैंथिल कुमार	160-164
35.	ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾਈ ਅਧਿਐਨ	ਪ੍ਰਭਜੀਤ ਕੌਰ, ਡਾ: ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ	165-169
36.	भारतीय कानूनी व्यवस्था में वक्फ संपतियों का स्थान: संशोधन के बाद की स्थिति का	रत्ना श्रीवास्तव	170-174

	मूल्यांकन		
37.	प्रवासी हिन्दी कथा साहित्य में वर्णित वृद्ध स्त्रियों की स्थिति	मोना सिंह	175-178
38.	हिन्दी गजल के जनक	हरिओम महौर, प्रो० नीलू शर्मा	179-182
39.	विज्ञापनों में प्रयुक्त हिंदी	मुजावर जैनु हमिद	183-187
40.	'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों में राजनितिक साम्प्रदायिकता	सुरेश कुमार	188-193
41.	सामाजिक न्याय के अग्रदूत डॉ० बी० आर० अम्बेडकर : एक संक्षिप्त अध्ययन	दीपिका रानी	194-198
42.	In India Online Education Benefits and Challenges	Dr. Hema Ram Dhundhwal	199-202
43.	कृषि और आर्थिक विकास	अन्नू यादव	203-207
44.	'संत कबीर की जीवन-दृष्टि'	गीता देवी	208-211

संपादकीय

"वक़्त के आईने में साहित्य की परछाइयाँ"

“बाहर से शांत दिखने के लिए
अंदर से बहुत लड़ना पड़ता है...”

इस एक नज्मी पंक्ति में आज का समय जैसे सिमट आया है — एक अंतर्विरोध से भरा यथार्थ, जहाँ समाज का चेहरा मुस्कुराता दिखता है लेकिन भीतर कहीं गहरे संघर्ष की लपटें हैं। **बोहल शोध मंजूषा** का यह **जुलाई 2025 अंक** भी इसी अंतर्दृष्टि को आत्मसात करता है — जहाँ शोध, साहित्य और संवेदना, सब एक साथ चलते हैं।

“हर लम्हा सौदागर होते हैं
दौलत के शोकीन लोग...”

यह भी आज की मनोवृत्ति को उजागर करने वाली एक और नज्मी झलक है — जहाँ मूल्य और मुनाफा, भावना और बाजार के बीच लगातार द्वंद्व चलता रहता है। साहित्य इस द्वंद्व को केवल दर्ज नहीं करता, बल्कि उसे चुनौती भी देता है।

इस अंक में प्रकाशित कई लेखकों ने परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष को अपनी दृष्टि से देखा है। कुछ ने लोक साहित्य को नई व्याख्या दी है, तो कुछ ने फेसबुक, ब्लॉग और यूट्यूब पर हो रहे सृजनात्मक कार्यों की प्रामाणिकता पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत किया है। यह संपादकीय मंडल के लिए गर्व की बात है कि **बोहल शोध मंजूषा** अब ऐसी आवाज़ों का मंच बन रही है, जो समय के खिलाफ खड़े होकर सत्य की तलाश करती हैं।

हम यह भी देख रहे हैं कि नवोन्मेषी शोध छात्र अब केवल विश्वविद्यालयों के परिसरों तक सीमित नहीं हैं। वे गाँव की धूल से लेकर शहर की भीड़ तक, हर अनुभव को शोध की ज़मीन बनाते हैं। यही कारण है कि इस अंक में ग्रामीण संवेदना, दलित विमर्श, वैदिक ज्योतिष विज्ञान, पर्यावरण चेतना, बाल साहित्य, मीडिया भाषा और न्यायिक साहित्य जैसे विविध पक्षों पर आलेख शामिल किए गए हैं।

यह अंक समर्पित है उन सभी अनदेखे और अनकहे अनुभवों को, जिन्हें साहित्य ने शब्द दिए हैं। यह प्रयास रहेगा कि हर अंक के साथ हम उस मौन को भी स्वर दें जो समाज के कोनों में घुट रहा है।

अंत में, मैं उन सभी लेखकों, समीक्षकों और पाठकों का आभार प्रकट करता हूँ जो इस वैचारिक यात्रा में सहभागी बने हैं। आइए, हम सब मिलकर ‘बाहर की शांति’ को केवल मुखौटा न बनने दें — बल्कि भीतर की लड़ाई को भी समझें, स्वीकारें और साहित्य के माध्यम से उस पर संवाद करें।

“जिंदगी सफल तभी है
जब खुद का परिचय खुद ना देना पड़े...”

शायद यही साहित्य का भी परिचय है — मौन में बोले, और अपनी उपस्थिति को प्रमाणित न करना पड़े।

संपादक
बोहल शोध मंजूषा
(जुलाई 2025 अंक)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. अम्बेडकर : जन्म, शिक्षा, परिवेश और वैचारिक विकास

डॉ० अरुण कुमार सिंह
एसो० प्रो०, इतिहास विभाग,
डी.ए.वी.पी.जी. कालेज आजमगढ़, उ०प्र०

प्रस्तावना

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर भारतीय इतिहास की वह विलक्षण विभूति हैं, जिन्होंने अपने जन्म से लेकर जीवन की अंतिम साँस तक सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों के लिए संघर्ष किया। उनका जीवन एक ऐसे युगपुरुष का जीवन है, जिसने विषम सामाजिक परिस्थितियों में जन्म लेकर न केवल शिक्षा के शिखर को प्राप्त किया, बल्कि भारतीय समाज की बुनियादी संरचनाओं को चुनौती भी दी। उनका जन्म एक अस्पृश्य माने जाने वाले महार समुदाय में हुआ, जो उस समय सामाजिक शोषण और बहिष्कार का शिकार था। परंतु शिक्षा, आत्मबल और अद्भुत बौद्धिक क्षमता के बल पर अम्बेडकर ने न केवल अपनी पहचान बनाई, बल्कि पूरे देश के वंचित वर्गों के लिए एक आवाज बने। प्रस्तुत लेख में डॉ. अम्बेडकर के जन्म, शिक्षा, सामाजिक परिवेश और उनके वैचारिक विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है, जिससे यह समझा जा सके कि कैसे एक व्यक्ति विचारों के माध्यम से समाज और राष्ट्र की दिशा बदल सकता है।

मुख्य शब्द–वैचारिक विकास, मानवाधिकार, शिक्षा, गरीबी, संघर्षशीलता, जाति व्यवस्था।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक महान समाज सुधारक, न्यायविद, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ थे। वे सामाजिक समानता और न्याय के प्रबल समर्थक थे, जिन्होंने अपने जीवन को वंचित और दलित वर्गों के उत्थान के लिए समर्पित किया। अम्बेडकर भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार माने जाते हैं और उन्होंने सामाजिक भेदभाव के खिलाफ संघर्ष करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना का सपना देखा। उनका जीवन संघर्ष, आत्मसम्मान, और प्रेरणा का प्रतीक है। वे सत्य, समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर आधारित समाज के निर्माण के प्रति समर्पित थे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त विराट है जो आज भी समाज को नई दिशा देने का संबल प्रदान करते हैं।

1. जन्म और शिक्षा

बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को तत्कालीन गुलाम भारत के मध्य प्रांत (वर्तमान में मध्य प्रदेश) के महू नगर की सैन्य छावनी में हुआ। वे रामजी मालोजी सकपाल और भीमाबाई की 14वीं और अंतिम संतान थे। उनका परिवार मराठी मूल का था और कबीर पंथ का अनुयायी था, जो रत्नागिरी जिले के आंबडवे गांव से संबंध रखता था। महार जाति से ताल्लुक रखने के कारण, जिसे उस समय अछूत माना जाता था, बाबा साहब को समाज में गहरे भेदभाव और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनके पूर्वज ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में कार्यरत थे, और उनके पिता रामजी सकपाल महू छावनी में सेवा करते हुए सूबेदार के पद तक पहुंचे। अपनी जाति के कारण डॉ. भीमराव अंबेडकर को बचपन में ही सामाजिक भेदभाव और प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। आर्थिक रूप से समृद्ध परिवार से होने के बावजूद, उन्हें छुआछूत और समाज के कठोर व्यवहार के कारण अनेक कठिनाइयों से गुजरना पड़ा। 7 नवंबर 1900 को उनके पिता रामजी सकपाल ने उन्हें सतारा की गवर्नमेंट हाई स्कूल में

'भीवा रामजी आम्बडवेकर' के नाम से दाखिल करवाया। उनका मूल उपनाम 'सकपाल' की जगह 'आम्बडवेकर' दर्ज कराया गया, जो उनके गांव आम्बडवे से संबंधित था। उस समय कोंकण क्षेत्र के लोग अपने उपनाम में गांव का नाम जोड़ते थे। बाद में उनके एक ब्राह्मण शिक्षक, कृष्णा केशव अंबेडकर, जो भीमराव से विशेष स्नेह रखते थे, ने उनका उपनाम 'आम्बडवेकर' से बदलकर 'अंबेडकर' कर दिया। इसी कारण से वे आगे चलकर 'अंबेडकर' नाम से प्रसिद्ध हुए और इसी नाम ने उन्हें इतिहास में अमर कर दिया।

रामजी सकपाल अपने परिवार के साथ मुंबई आ गए। 1906 में, जब भीमराव अंबेडकर की उम्र 15 वर्ष थी, उनकी शादी 9 वर्षीय रमाबाई से कर दी गई। उस समय अंबेडकर 5वीं कक्षा में पढ़ रहे थे। बाल–विवाह की प्रथा के चलते उनके माता–पिता ने यह निर्णय लिया। भीमराव अंबेडकर ने 7 नवंबर 1900 को सतारा नगर के सरकारी हाईस्कूल (जो वर्तमान में प्रताप सिंह हाईस्कूल के नाम से जाना जाता है) में अंग्रेजी की पहली कक्षा में प्रवेश लिया। इसी दिन उनके शैक्षिक जीवन की शुरुआत हुई, और महाराष्ट्र में इस दिन को 'विद्यार्थी दिवस' के रूप में मनाया जाता है। उस समय अंबेडकर को 'भीवा' कहकर पुकारा जाता था, और उनका नाम विद्यालय के उपस्थिति रजिस्टर में क्रमांक 1914 पर अंकित था। चौथी कक्षा उत्तीर्ण करना उस समय अछूतों के लिए असाधारण उपलब्धि मानी जाती थी। इस सफलता का जश्न सार्वजनिक समारोह में मनाया गया। इस अवसर पर उनके पारिवारिक मित्र और लेखक दादा केलुस्कर ने उन्हें बुद्ध की जीवनी भेंट की। इस पुस्तक को पढ़कर अंबेडकर पहली बार गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म से परिचित हुए। उनकी शिक्षा और विचारधारा ने अंबेडकर को गहराई से प्रभावित किया।[1]

1897 में अंबेडकर का परिवार मुंबई आ गया, जहां उन्होंने सरकारी हाईस्कूल में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की। 1907 में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और एलफिंस्टन कॉलेज में प्रवेश लिया, जो उस समय बॉम्बे विश्वविद्यालय से संबद्ध था। स्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वाले अंबेडकर अपने समुदाय के पहले व्यक्ति थे। 1912 में उन्होंने बॉम्बे विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान में बी.ए. किया और बड़ौदा राज्य सरकार के साथ कार्य करने लगे। उनके पिता का निधन 2 फरवरी 1913 को हुआ, जिसके बाद वे मुंबई लौट आए। 1913 में, 22 वर्ष की आयु में, अंबेडकर को सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय द्वारा प्रदत्त तीन वर्षों की छात्रवृत्ति मिली, जो उन्हें न्यूयॉर्क स्थित कोलंबिया विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए मिली। इस योजना के तहत उन्हें प्रति माह 11.50 डॉलर प्रदान किए गए।[2] अमेरिका पहुंचकर वे अपने पारसी मित्र नवल भातेना के साथ लिविंगस्टन हॉल में रहने लगे। जून 1915 में उन्होंने एम.ए. की डिग्री प्राप्त की, जिसमें अर्थशास्त्र उनके मुख्य विषय थे, और समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शनशास्त्र और मानव विज्ञान अन्य विषय। उन्होंने प्राचीन भारतीय वाणिज्य पर शोध कार्य प्रस्तुत किया। 1916 में अंबेडकर ने अपना दूसरा शोध, **''भारत का राष्ट्रीय लाभांश : एक ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन''** प्रस्तुत किया और कोलंबिया विश्वविद्यालय से दूसरी डिग्री प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने लंदन का रुख किया। 1916 में अपने तीसरे शोध, 'ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास' के लिए उन्होंने अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की, जिसे 1927 में प्रदान किया गया। उनका यह शिक्षण और शोध कार्य आधुनिक भारत के लिए अमूल्य योगदान है।

2. सामाजिक साहित्यिक–राजनीतिक परिवेश

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई स्तरों पर और कई पद्धतियों से चलने वाली एक अखण्ड प्रक्रिया है। व्यक्ति या वर्ग के समूह से जब समाज बनता है तो धीरे–धीरे नियम–उपनियम बनाये जाते हैं। इसके मूल में दृष्टि केवल उतनी ही होती है कि उस समय में स्थित प्रत्येक को व्यक्तित्व विकास का समुचित अवसर उपलब्ध हो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्वतंत्र हो, उस पर किसी व्यक्ति अथवा गुट का कोई बंधन न हो। यह प्रत्येक समाज का मूलभूत सिद्धान्त होता है। धीरे–धीरे ये सिद्धान्त स्थायी बन जाते हैं, फलतः इनको वैधानिक स्वरूप देने के लिए किसी ग्रन्थ की अवश्यकता पड़ती है। धर्म और ईश्वर के नाम पर स्थापित ये ग्रन्थ काफी समय तक समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं। इन ग्रन्थो में इसके रचनाकार द्वारा कुछ अमानवीय, अलोकतांत्रिक और अव्यवहारिक प्रावधानों को भी शामिल कर दिया जाता है। इसका कोई विरोध भी नहीं करता क्योंकि धर्म अफीम की गोली के समान है। ये ग्रन्थ अपरिवर्तनशील होते हैं फलतः व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में बाधा उत्पन्न होता है। इस व्यवस्था से

अनेकशः लोग पीड़ित होते हैं। इसलिए इन शोषित वर्गों के अन्दर विद्रोह की ज्वाला धीरे–धीरे पनपने लगती है लेकिन उनके अन्दर विद्रोह करने की कोई क्षमता नहीं होती है। परिमाणतः इस समाज का कोई संवेदनशील, सक्षम और क्रान्तिकारी व्यक्ति इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह कर एक नई व्यवस्था की आवश्यकताओं की वकालत कर देता है। बाबा साहब अम्बेडकर भी इसी विद्रोही परम्परा के थे।

बाबा साहब अम्बेडकर का सामाजिक परिवेश इस प्रकार का था कि उन्हें बचपन में ही जातिगत भेदभाव के कारण अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी। महाराज गायकवाड़ का सैन्य सचिव नियुक्त करने के दौरान जब उनके साथ जाति के नाम पर भेदभाव किया गया तो यह घटना उनकी जीवन की अतिमहत्वपूर्ण घटना साबित हुई। इस घटना को अम्बेडकर ने अपनी आत्मकथा 'वेटिंग फार अबीजा' में लिखा था। नौकरी छोड़ने के बाद आजीविका का साधन खोजने के लिए उन्होंने भरपूर प्रयास किया लेकिन जब उनके सारे प्रयास असफल हुए क्योंकि उन्हें अछूत के नाम पर लोगों ने उनके यहां सामान खरीदना छोड़ दिया। जब ये प्रोफेसर बने तो वे छात्रों के साथ बातचीत करने के बाद सफल हुई परन्तु उनके साथ के अध्यापकों ने उनके साथ पानी पीने के बर्तन साझा करने से मना कर दिया।

भारत सरकार अधिनियम 1919 तैयार कर रही साउथ ब्यूरो समिति के समक्ष अम्बेडकर को प्रमुख विद्वान के तौर पर आमंत्रित किया गया। इस आमंत्रण के दौरान अम्बेडकर ने दलितों और अन्य धार्मिक समुदायों के लिए अलग से आरक्षण और निर्वाचिका देने की भरपूर वकालत की। 1920 में अम्बेडकर ने साप्ताहिक अखबार 'मूकनायक' के प्रकाशन की शुरूआत की जो बहुत कम समय में ही आम जनता के बीच लोकप्रिय हो गया। अम्बेडकर ने इस अखबार का उपयोग रूढ़िवादी हिन्दू राजनेताओं एवं जातिगत भेदभाव से लड़ने वाली राजनीतिक समुदाय की आवाज उठाने के लिए किया। एक बार वे दलित वर्ग के सम्मेलन में भाषण दे रहें थे तो कोल्हापुर के राज्य के स्थानीय शासक साहू चतुर्थ को बहुत प्रभावित किया जिनके साथ अम्बेडकर के साथ भोजन करना रूढ़िवादी और पोंगापंथी समाज को अरूचिकर लगा। अम्बेडकर ने बाम्बे उच्च न्यायालय में वकालत करते हुए अछूतों की शिक्षा को बढ़ावा देने के प्रयास के लिए पहला केन्द्रीय संस्थान ''बहिष्कृत हितकारिणी सभा'' की स्थापना था, जिसका उद्देश्य शिक्षा और आर्थिक सुधार को अवसादग्रस्त वर्गों के रूप में संदर्भित करके बहिष्कार करना था। डॉ. अम्बेडकर ने दलित अधिकारों की रक्षा तथा उनके हकों की लड़ाई के लिए आवाज बुलंद करने के लिए 'मूकनायक', बहिष्कृत भारत, समता, प्रबुद्ध भारत और जनता जैसी पांच बड़ी पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया।

अम्बेडकर का राजनीतिक कैरियर 1926 में शुरू होकर 1956 तक वे विभिन्न राजनैतिक क्षेत्र में कई पदो को सुशोभित किये। दिसम्बर 1926 में बॉम्बे के गवर्नर ने उन्हें बाम्बे परिषद के सदस्य के रूप में नामित किया। इस सदस्य के रूप में अम्बेडकर ने गम्भीरता से अपने कार्यों को पूरा किया और परिषद में आर्थिक मामलों पर कई गम्भीर भाषण भी दिये। 13 अक्टूबर 1935 को अम्बेडकर को एक सरकारी लॉ कालेज का प्राचार्य नियुक्त किया गया। इस पद पर रहते हुए उन्होंने दो वर्षों तक कार्य किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज के संस्थापक के मृत्यु के बाद कॉलेज के गवर्निंग बॉडी के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। 1936 में अम्बेडकर ने स्वतन्त्र लेकर पार्टी की स्थापना की जो 1937 के केन्द्रीय विधानसभा चुनाव में 13 सीटें जीती थीं। अम्बेडकर को बाम्बे सभा के विधायक के रूप में चुना गया था। वे 1942 तक बाम्बे विधानसभा के सदस्य रहते हुए भी विपक्ष के नेता के रूप में भी कार्य करते रहें। अम्बेडकर ने 1942 में ऑल इण्डिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन का गठन किया जिसके द्वारा दलित समुदाय के अधिकारों के लिए अभियान की शुरूआत करना था। 1942 से 46 के दौरान अम्बेडकर वायसराय के कार्यकारी परिषद में श्रम मंत्री के रूप में कार्यरत रहे वहीं दूसरी तरफ वे भारत की आजादी के लड़ाई में भी सक्रिय रूप से हिस्सा ले रहे थे। अम्बेडकर ने अपने राजनीतिक पार्टी को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन में बदल दिया, परन्तु 1946 में आयोजित भारत के संविधान सभा के लिए हुए चुनाव में बहुत खराब प्रदर्शन किया। बाद में वह पश्चिम बंगाल जहां मुस्लिम लीग सत्ता में थी वहां से भारतीय संविधान सभा में चुने गये थे। 1952 में अम्बेडकर ने बाम्बे के उत्तर क्षेत्र से पहला भारतीय लोकसभा का चुनाव लड़ा लेकिन वे कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार नारायण काजोलकर से हार गये। 1952 में वे राज्य सभा के सदस्य बन गये तथा भण्डारा से 1954 के उपचुनाव में फिर से लोकसभा में प्रवेश करने की कोशिश की परन्तु इस बार भी वे तीसरे स्थान पर रहे। 1957 में दूसरे आम चुनाव के दौरान अम्बेडकर की मृत्यु हो गयी।

अम्बेडकर उच्च सदन में महाराष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले भारत के संसद के सदस्य बने थे। उनका पहला कार्यकाल 3 अप्रैल 1952, 2 अप्रैल 1956 के बीच था। जब कि दूसरा कार्यकाल 3 अप्रैल 1956 से, 2 अपैल 1962 तक था। परन्तु 6 दिसम्बर 1956 को अम्बेडकर का देहावसान हो गया।

3. वैचारिक विकास

डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों का विकास कालक्रम में लगातार परिपक्वता की प्रक्रिया रही है। वे स्वयं भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक भेदभाव और अन्याय के शिकार रहे, किन्तु इसी अनुभव ने उनकी वैचारिक चेतना को और अधिक तीव्र और सशक्त बनाया। अपने जीवन के विभिन्न चरणों में उन्होंने न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामाजिक चेतना का भी विकास किया। अंबेडकर ने बार–बार इस बात पर बल दिया कि "शिक्षित बनो, शिक्षित बनो और संगठित बनो," जो उनकी इस मान्यता का प्रतिबिंब है कि शिक्षा और संगठन ही सामाजिक अन्याय के खिलाफ सबसे प्रभावशाली हथियार हैं।[3] उनका यह विचार सामाजिक सुधार की गहन समझ को दर्शाता है, जिसमें शिक्षा को न केवल ज्ञान का साधन बल्कि सामाजिक मुक्ति और स्वावलंबन का आधार माना गया। इसी संदर्भ में, जॉन ड्यूई ने कहा था, "शिक्षा केवल जीवन के लिए नहीं, बल्कि जीवन के साथ भी जुड़ी होनी चाहिए।"[4] अंबेडकर के लिए शिक्षा केवल व्यक्तित्व विकास का माध्यम नहीं थी, बल्कि सामाजिक अन्याय और असमानता को समाप्त करने का सबसे प्रभावी साधन थी, जिसने उनके वैचारिक विकास की प्रक्रिया को लगातार आगे बढ़ाया। दुनिया के कई देशों में शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही साथ इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास सहित अन्य सभी विषयों पर अम्बेडकर ने अपनी गहन दृष्टि डाली और उनकी इसी दृष्टि के कारण उनकी चेतना का विस्तार हुआ। यह चेतना विस्तार और ज्यादा तब हुआ जब वे विदेश से लौटकर वापस भारत आते हैं और उनके साथ उसी तरह का दुर्व्यव्यवहार किया जाता है जैसा उनके साथ बचपन में किया जाता था तो उनके अन्दर की चेतना जो शिक्षा के द्वारा अर्जित की गयी थी और मुखर होकर सामने आती है। भारत में सामाजिक भेदभाव को खत्म करने के लिए उन्होंने अपने द्वारा अर्जित की गयी शिक्षा का भरपूर इस्तेमाल करते हुए पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिखना प्रारम्भ किया। समाज के बीच हो रहे भेदभाव के खिलाफ संगठन खड़ा किया और उन सभी लोगों को इस संगठन से जोड़ने की कोशिश की जो मानवता के विकास के लिए प्रयासरत थे। बहुत कम समय में अम्बेडकर ने अपनी सामाजिक दृष्टि का बेहतर विकास कर लिया था।

डॉ. अम्बेडकर का वैचारिक विकास बचपन के संघर्षों और शिक्षा के लिए लगातार ठोकर खाते परिस्थितियों से हुआ। वे बहुत समय पहले ही इस बात को समझ चुके थे कि ईश्वर और धर्म से सम्बन्धित जितनी भी धारणाएं बनायी गयी हैं, वे सब बिना किसी तर्कों पर आधारित झूठी हैं। वे जन्मजात और पूर्व के सिद्धान्तों से कदापि सहमत नहीं थे। सामाजिक बंधनों को वे व्यक्ति की गुलामी से ज्यादा कुछ भी नहीं मानते थे। उनका मानना था कि मनुष्य की चेतना ही सब कुछ है। ईश्वर पर हम जितना अधिक बात करेंगे उतना ही अंधविश्वास को बढ़ाएंगे। वे साफ कहते थे कि ईश्वर के प्रचार–प्रसार में होने वाले खर्च का आधा भाग भी यदि ठीक ढंग से जरूरतमंदो में खर्च किया जाए तो पीड़ित लोगों का दुःख मिट जाएगा।[5] साफ है कि अम्बेडकर की आस्था मानवता में थी। मानव को ईश्वर से भी महत्वपूर्ण स्थान वे देते थे। इस बात पर वे जोर देते थे कि गरीबी का अंत मानव के हाथ में है। शोषण के अन्त के लिए शोषितों का प्रयास ही अधिक जरूरी है। शोषण की मुक्ति तीर्थ स्थानों, पूजा पाठ या भक्ति द्वारा सम्भव नहीं है। सैकड़ों वर्षों से शोषितों को कोई सुख नहीं मिला। उनके धार्मिक विश्वास उन्हें गरीबी, गंदगी एवं भुखमरी से नहीं बचा सके।[6] अपनी बुद्धि और अनुभव के आधार पर ईश्वर की स्थिति को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। जीवन के अंतिम समय में बुद्ध का अनुसरण करते हुए उन्होंने कहा था कि ईश्वर को किसी ने देखा नहीं है। लोग ईश्वर की मात्र चर्चा करते हैं। ईश्वर अज्ञात एवं अदृष्टा है, कोई व्यक्ति ईश्वर को सिद्ध नहीं कर सकता है। संसार स्वतः विकसित है। इसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं हुई है। ईश्वर में विश्वास करने से कोई लाभ नहीं है, इससे केवल अंधविश्वास को बढ़ावा मिलता है।[7] अम्बेडकर की यह सोच उनके वैचारिक विकास की पराकाष्ठा है।[8] क्योंकि जीवन के जिस स्तर की पड़ताल अनेक विद्वानों ने आखिरी समय में किया है, अम्बेडकर उसे 25–30 वर्ष की अवस्था में खंडित कर दिए हैं।

निष्कर्ष–

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन एक प्रेरणास्रोत है, जो यह दर्शाता है कि कठिन सामाजिक परिस्थितियों और भेदभावपूर्ण परिवेश के बावजूद भी शिक्षा, संकल्प और संघर्ष के बल पर महान उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। उनका जन्म एक वंचित वर्ग में हुआ, परंतु उन्होंने अपने विचारों, अध्ययन और कर्मठता से न केवल स्वयं को प्रतिष्ठित किया, बल्कि भारत के दलित वर्ग को एक नई चेतना और आत्मगौरव प्रदान किया। उनके वैचारिक विकास ने भारतीय समाज को समता, स्वतंत्रता और न्याय के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी, जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उनके समय में थी।

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

1- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर : द बुद्ध एण्ड हिज धम्मा, पृष्ठ–112, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2007.
2- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर : Ancient Indian Commerce (1915-16), Independently Published, 2019.
3- गेल ओमवेड्ट : दलित और लोकतांत्रिक क्रांति, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन, 1994, पृ. 23–125.
4- जॉन ड्यूई : लोकतंत्र और शिक्षा, न्यूयॉकर्रू मैकमिलन, 1916, पृ. 88.
5- शंकरानन्द शास्त्री : युगपुरुष बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, पृष्ठ–412, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, सं. 2014.
6- डॉ. भीमराव अम्बेडकर : द बुद्धा एण्ड हिज धम्म, 1957, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2007.
7- जनतंत्र के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक शर्तें (लेख), 1951.
8- राजशेखर : अम्बेडकर के विचारो का ऐतिहासिक अध्ययन, इतिहास दर्पण, मई 2019.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 16-22
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्योतिष परंपरा में स्वास्थ्य और आहार : मेडिकल एवं आहार ज्योतिष का समन्वित अध्ययन

स्नेह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय

पश्येम् शरदः शतं, जीवेम् शरदः शतं, श्रुणुयाम् शरदः शतं,
प्रबवाम् शरदः शतं, अदीनः स्याम् शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्।
(शुक्लयजुर्वेद संहिता)

सारांश- वेदों में भगवान से यह प्रार्थना की गई है-
हम सौ वर्षों तक देखें, जिएं, सुने, बोले, आत्मनिर्भर रहें और सौ से अधिक वर्षों तक वैसे ही रहें अर्थात हमारी इन्द्रियाँ - कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल ना होवें एवं निरोग रहते हुये हम जीवन धारण कर सके। हम निरोगी कब होगें - जब स्वस्थ होंगे - जो कि उचित आहार-विहार पालन से संभव होगा। भारतीय वैदिक परंपरा में मनुष्य के स्वास्थ्य, व्यवहार और जीवनशैली को निर्धारित करने में भारतीय ज्योतिष का महत्वपूर्ण स्थान रहा है जो सीधे आयुर्वेद से जुड़ा है। दोनों ही स्वास्थ्य और आहार-विहार पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। आधुनिक युग में तेजी से बदलती जीवनशैली में भी हमारे प्राचीन शास्त्रों की यह ज्ञानधारा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। विशेषतः जब हम आहार और स्वास्थ्य की बात करते हैं तब ज्योतिष विज्ञान के दो उपविषय-**आहार ज्योतिष** और **चिकित्सा ज्योतिष** की भूमिका अत्यन्त प्रभावशाली बन जाती है। इन दोनों पद्धतियों का उपयोग व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य संरक्षण, रोग-निवारण, मानसिक संतुलन तथा आध्यात्मिक उन्नति हेतु किया जा सकता है।

प्रस्तावना - हितभुक मितभुक ऋतुभुक -महर्षि चरक ने चरक पक्षी से पूछा- कोऽरूक, नीरोग कौन है? तो चरक पक्षी ने जवाब दिया कि जो व्यक्ति हितकारक वस्तु का भोजन करता है, मिताहार- अर्थात आवश्यकतानुसार तथा समयानुसार भोजन करता है वही निरोग है - जो इन तीन नियमों का पालन नहीं करता वह रोगग्रस्त हो जाता है। तब रोग-मुक्त होने के लिए आयुर्वेद और ज्योतिष

शास्त्र का सहारा लिया जाता है। ज्योतिष के जान के द्वारा रोगी की चर्या, चेष्टा, सर्वांगलक्षण व रोग का कारण ग्रह-नक्षत्रों की स्थितिनुसार रोग की गंभीरता, साध्यता और अवधी का अनुमान लगाया जाता है क्योंकि मानव सीधे ज्योतिष से जुड़ा है- **"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"** जिस प्रकार सौरमण्डल में ग्रह होते हैं उसी प्रकार मानव देह में भी ग्रहमण्डल होते हैं। वराहमिहिर के अनुसार मानव देह एक कक्षावृत है जिसमें मानव के बारह अंगों से बारह राशियों तथा इन्हीं बारह भागों में सात आन्तरिक गुण परिभ्रमण करते हैं। जैसे मेष- मस्तक, वृष-मुख, मिथुन- वक्षस्थल, कर्क - हृदय, सिंह-उदर, कन्या- कटि, तुला - वस्ति वृश्चिक-लिंग, धनु-जंघा, मकर-घुटना, कुम्भ- पिंडली तथा मीन-पैर । आंतरिक गुण - आत्मा - सूर्य, मन- चन्द्रमा, धर्य - मंगल, वाणी - बुध, विवेक-गुरु, वीर्य-शुक्र, संवेदना-शनि। अतः शरीररूपी कक्षावृत आंतरिक गुणों को ग्रह-प्रकृति के रूप में मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। ग्रहों की मूल प्रकृति-प्रवृति के अनुसार मानवजीवन प्रभावित होता है। ज्योतिषशास्त्र में रोग का पता लगाने के लिए मुख्य तीन तत्व - 1) ग्रह 2) राशि एवं 3) भाव को मुख्य माना जाता है क्योंकि ग्रहों-नक्षत्रों का प्रभाव भूमण्डल के सभी जीवजन्तु, जड़-चेतन (अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि) पंचतत्वों पर पड़ता है। अतः ज्योतिषसिद्धान्त विश्लेषण से रोगों का पूर्वानुमान, पहचान तथा समय रहते निदान संभव है।

बृहतपाराशर होरा शास्त्र में रोगों के कारण और उनके ज्योतिषीय संकेतों का वर्णन है जैसे-

षष्ठे रोगाः अष्टमे आयु: द्वादशे व्यय:

छठा भाव रोग, आठवां आयु और बारहवे भाव से व्यय का विचार करते हैं।

भारतीय ज्योतिष परंपरा में आहार ज्योतिष और चिकित्सा ज्योतिष का स्वरूप - वेदों के अनुसार आहार और स्वास्थ्य को मानव जीवन के मूल स्तंभों में माना गया है। यह मान्यता है कि- **यथा अन्न तथा मन, यथा मन तथा कर्म** - अर्थात जैसा आहार होगा वैसा ही मन और कर्म होगा। जब ज्योतिष और आहार दो धाराएँ मिलती हैं तो एक अत्यन्त उपयोगी वैज्ञानिक और आध्यात्मिक अनुशासन का रूप हमारे सामने आता है जिसे आहार ज्योतिष कहते कहते हैं। आहार ज्योतिष यह स्पष्ट करता है कि किस ग्रह-स्थितिनुसार व्यक्ति को कौन सा आहार ग्रहण करना चाहिए और कौन सा वर्जित है। सकारात्मक ग्रह को बल देने के लिए सम्बन्धित ग्रह का भोजन ग्रहणीय है और नकारात्मक ग्रह का त्याज्य। यह विचार केवल स्वाद व पाचन तन्त्र तक सीमित नहीं है बल्कि यह शरीर, मन और आत्मा के समन्वय को भी दिखाता है।

उदाहरण: यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली में चन्द्रमा निर्बल हो तो उस व्यक्ति विशेष में मानसिक अशांति, अनिद्रा, चिन्ता अथवा भावनात्मक असंतुलन की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती है। ऐसे में चन्द्रमा से सम्बन्धित पदार्थ जैसे दूध, चावल, मिश्री, लौकी जैसे ठण्डे, सौम्य और शीतल आहार की अनुशंसा की जाती है। इस बात की पुष्टि **अष्टांगहृदयम्** के सूत्र स्थान अध्याय 6 में की गई है जहाँ ऋतुचर्या और ग्रहों के प्रभावानुसार आहार-विहार के निर्देश मिलते हैं।

अन्नं वै प्राणा: - आहार प्राणों के समकक्ष है (ऋग्वेद)

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुदौ ध्रुवस्मृतिः (छन्दोग्य उपनिषद)

शुद्ध आहार से मन की शुद्धि और स्मृति दृढ होती है। वहीं भगवद्गीता में श्री कृष्ण आहार को तीन तरह का बताते हैं -

सात्विक - स्वास्थ्य वर्धक, रसमय, ताजगीयुक्त

राजसिक - तीखा, खट्टा, अधिक नमकीन व उत्तेजक

तामसिक - बासी, दूषित भोजन

इनमें सात्विक आहार उत्तम है-

आयु सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्या स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा: सात्विकप्रियाः।। (भगवद्गीता 17.8)

आयुर्वेद की दृष्टिकोण से रोग और आहार सम्बन्ध देखा जाये तो **रोगाः सवेऽपि मन्देग्नौ** (चरक संहिता) सभी रोगों का मूल कारण मन्दाग्नि है और अग्नि का आधार आहार है।

"आहार से रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र धातुओं की पोषण क्रिया होती है। दूषित आहार इन धातुओं को दूषित कर रोग उत्पन्न करता है (**सप्त सिन्धु सिद्धान्त**)

"हर खाद्य पदार्थ के गुण, रस, विपाक, वीर्य और प्रभाव की विस्तृत जानकारी दी गई है, जो ग्रहों से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक है।(**भाव प्रकाश निघण्टू**)

चिकित्सा ज्योतिष (मेडिकल एस्ट्रोलॉजी) जिसे आयुर्वेदिक ज्योतिष भी कहा जाता है। ज्योतिष की एक अनुप्रयुक्त शाखा जो **मेलोथेसिया** पर आधारित है- मानव शरीर रोगों और ग्रहों के बीच सम्बन्ध को समझने का विज्ञान है। प्रत्येक ग्रह शरीर के विशेष अंग, तंत्र या मनोभाव से सम्बन्धित है और उसका प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। ज्योतिष कुण्डली में ग्रहस्थितिनुसार रोगों की प्रवृति निदान और उपायों का विश्लेषण करती है। होराशास्त्र के 25वें अध्याय में विस्तारपूर्वक यह वर्णन है कि किस भाव, किस ग्रह स्थिति में, किस प्रकार के रोग की संभावना है जैसे छठा भाव रोग ऋण शत्रु का है और इस भाव में मंगल राहु शनि आदि पाप ग्रह हो तो उस व्यक्ति को रक्तचाप, पाचन दोष या चर्मरोग होने की संभावना हो सकती है। इस प्रकार की ग्रहस्थितियों में केवल औषधियों से ही नहीं बल्कि आहार के संयमित प्रयोग से भी रोगों को नियन्त्रित किया जा सकता है।

ग्रह, आहार और चिकित्सा ज्योतिष

सूर्य - सूर्य आत्मबल, हृदय, नेत्र और अस्थिकारक है। वेदों में पिता और आत्माकारक माना गया है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋगवेद)

अनुकूल आहार -गेहूं, गुड़, आम शहद, अरहर दाल, केसर, गुलकन्द, लालरंग के फल और सब्जियाँ - टमाटर, गाजर, अनार, चकुन्दर, केसर और गुलाब की सुगंध।

अधिक ठण्डा, बासी व भारी भोजन वर्जित है।

रोग संभव - उच्च रक्तचाप और हृदय रोग

रोग निवारण- हदय सम्बन्धी समस्याओं में अनार, गाजर का रस और नेत्ररोग में केसर व शहद।

चन्द्रमा - चन्द्रमा मनसो जातः (पुरूषसूक्त)

मन, माता, मानसिक स्वास्थ्य और रक्त कारक कफ प्रधान शीतल और सौम्य गृह है।

अनुकूल आहार - दूध, दही, चावल, चीनी, गन्ना, सफेद मिठाईयाँ, चमेली तथा शतावरी की सुगंध लेना

वर्जित आहार- अधिक मसालेदार, तले हुये, अम्लीय खाद्य पदार्थ

रोग संभव- मानसिक तनाव, रक्त विकार

रोग निवारण - मानसिक तनाव दूध दही का सेवन, अनिद्रा में रात्रि को दूध में केसर पीना

मंगल - रक्त, माँसपेशियाँ, उष्ण तीव्र उर्जा कारक पित्त-प्रधान ग्रह

अनुकूल आहार - मसूर की दाल, गुड़, जौं, हींग, शहद तथा लाल फल और सब्जियां जैसे अनार, लाल चंदन की सुगंध

वर्जित आहार - अत्यधिक तीखा, खट्टा, माँसाहारी व शराब

रोग संभव - चोट और रक्तदोष, माँसपेशियों की कमज़ोरी

रोग निगरण - रक्ताल्पता में अनार और गुड़ का सेवन, माँसपेशियों की कमज़ोरी में मसूर दाल और जौ लाभकारी

बुद्ध - बुद्धिम् बुधः समाश्रित्य (बृहतपाराशर होराशास्त्र)

त्वचा तंत्रिकातन्त्र, बुद्धि का कारक त्रिदोष संतुलक और सौम्य ग्रह है

अनुकूल आहार - हरी सब्जियाँ, धनिया, पुदीना, मूंग दाल, ज्वार, आँवला, हरे फल-अमरूद आदि, इलायची और चंपा की सुगंध

वर्जित आहार- अत्यधिक तला-भुना तीखा भोजन

रोग संभव - चर्म रोग, ऑटिज्म (बच्चों में), याददाश्त कमी, पार्किसन रोग (वृद्धावस्था में)।

रोग निवारण - त्वचा रोग में हरी सब्जियाँ, याददास्त के लिए इलायची और हरी दालें, तुलसी अर्क तथा पार्किसन में अश्वगन्धा व ऑटिज्म में अखरोट, हरी सब्जियाँ, बादाम

गुरु - जठर, यकृत, मोटापा व ज्ञान कारक, कफ-प्रधान मधुर ग्रह है।

अनुकूल आहार - चना, हल्दी, बेसन, मक्का, पीली दालें, सेंधा नमक, केला। केसर और केवड़े की सुगंध लाभकारी

वर्जित - अधिक मीठा, मैदा और वसायुक्त भोजन

रोग संभव - मधुमेह, मोटापा, यकृत सम्बन्धी

रोग निवारण - यकृत संबंधी समस्या में हल्दी और मक्का, मोटापे में चना दाल, बेसन

शुक्र - प्रजनन तन्त्र, शुक्र धातु व सौन्दर्य का कारक कफ प्रधान, मधुर व सौम्य ग्रह है।

अनुकूल आहार - दूध, दही, चावल, खीर, घी, मखाना (कमल गट्टा), सौंफ, मिश्री, दालचीनी सफेद शलजम मूली, त्रिफला, सफेद पुष्पों और चंदन कपूर की खुशबू

रोगसंभव - प्रजनन विकार, त्वचा विकार

रोग निवारण - त्वचा रोग में त्रिफला और मिश्रीसेवन, प्रजनन समस्या में मूली शलजम लाभकारी

शनि - हड़ियाँ, बाल, दांत, वृद्धावस्था कारक वात प्रधान मंद व स्थिर ग्रह

अनुकूल आहार - तिल, उड़द, काला नमक, काली मिर्च, लौंग, तेजपत्ता, कस्तूरी, लोबान और सौंफ की सुगंध लाभकारी

वर्जित - खटाई और माँसाहारी भोजन

रोगसंभव - गठिया और लकवा

रोगनिवारण - हाड़ियों की कमजोरी - काली उड़द, काली मिर्च सेवन, बालों की समस्या में लौंग तेजपत्ता उपयोगी

राहु - भ्रम, विषाक्तता, मानसिक विकार व लत कारक वातप्रधान रहस्मय छाया ग्रह है

अनुकूल आहार- नारियल, बाजरा, काली गाय का घी, नीम, गोंद, कटहल, बैंगन आदि, लोबान कस्तूरी सुगंध

वर्जित - मदिरा सेवन, विषम खाद्य

रोग संभव - मानसिक रोग जैसे मतिभ्रम, विषबाधा

रोग निवारण- मानसिक रोग- तिल सरसों का तेल, विषबाधा में काली गाय का घी उपयोगी (शरीर डिटॉक्सीफाई करता है।

केतु - आध्यात्मिकता, त्वचा, फेफड़ों का कारक वातप्रधान रहस्यमय छाया ग्रह है।

अनुकूल आहार- त्रिफला, अजवाइन, अदरक, मशरूम, कस्तूरी, चिलगोजा, नीम

वर्जित - अत्यधिक शुष्क भोजन

रोगसंभव - कब्ज, अलसर

रोग निवारण - कब्ज़ में त्रिफला चूर्ण, अलसर- हल्दी अदरक

त्रिदोष संतुलन - वातदोष, पित्तदोष, कफदोष

वातदोष- गाय का घी, अजवाइन या दालचीनी युक्त जल

पित्तदोष- नारियल पानी या ऐलोवेरा जूस

कफ दोष - नींबू, जीरा, अदरक और शहद युक्त पानी

यदि शरीर के पंचतत्वों को संतुलित करना हो तो अगर अग्नितत्व की अधिकता है ऐसे में चन्द्र के खाद्य पदार्थ, दूध व ठण्डी तासीर के फल का सेवन।

"**यथा दिवसं तथा आहार**" - दिन और ग्रहों की उर्जानुसार आहार शरीर और मन दोनों संतुलित करता है।

समकालीन प्रासंगिकता - आज मानव का जीवन यांत्रिक तनावपूर्ण, अनियमित दिनचर्या युक्त है। कृत्रिम मिलावटी आहार एवं प्रकृति से बढ़ती दूरी ने मनुष्य को नाना-भांति के रोगों से ग्रस्त कर दिया है। जैसे मोबाईल-स्क्रीन, कृत्रिम प्रकाश और देर रात तक जगने से चन्द्रमा असंतुलित होता है और राहु उत्तेजित होकर मनोविकार पैदा होते हैं - सभाधान स्वरूप चन्द्र के खाद्य पदार्थ ग्रहण तथा मादक पदार्थ चाय, काफी, मदिरा का त्याग करें। स्क्रीन को सीमित करें। असंतुलित जीनशैली से शनि राहु के नकारात्मक प्रभाव बढ सकते है जिससे गठिया और कैंसर रोग उत्पन्न हो सकते हैं। आज के समय में तनाव, उच्च रक्तचाप, मधुमेह और अनिद्रा न केवल बड़ों को बल्कि बालकों और किशोरों को भी अपनी चपेट में ले रखा है। ऐसे में फास्ट-फूड, मादक पदार्थों का त्याग करें तथा संतुलित भोजन ग्रहण करें।

निष्कर्ष

आहार विज्ञान की परंपरा में शरीर को पंचतत्वीय संतुलन में लाना ही भारतीय ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य रहा है। रोग केवल शरीर का ही नहीं बल्कि मन और आत्मा के असंतुलन की अभिव्यक्ति है। ग्रहों की स्थिति हमें चेतावनी और उपचार दोनों देते है। यदि जन्मकुण्डली में कमज़ोर ग्रह का आहार लें, रोग अनुसार ग्रह-आहार तालमेल अपनाएँ और आत्मचिंतन में संतुलन रखें तो स्वास्थय सहजता से प्राप्त हो सकता है।

"**शरीरं आद्यं धर्म साधनं**" स्वस्थ शरीर ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का आधार है। चिकित्सा ज्योतिष की यह पुरातन परंपरा - ग्रहों और भोजन का सांमजस्य - पुनः स्वास्थ्य का आधार बन सकती है। निष्कर्षतः जो व्यक्ति अपनी प्रकृति, देशकाल और ग्रहानुसार आहार करता है वही दीर्घायु और रोगमुक्त रहता है -

हितभुक् मितभुक् चासी, देशकालानुसारिभुक्।
चतुर्विध आहारो नित्यं ग्रहदृष्ट्यनुकूलकः॥
(चरक संहिता)

संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता - महर्षि चरक
2. बृहत्जातकम - वराहमिहिर
3. श्रीमद्भगवद्गीता - गीताप्रेस गोरखपुर
4. छंदोग्य उपनिषद - गीताप्रेस गोरखपुर

5. सिद्धान्तज्योतिष मंजूषा - प्रो. विनय कुमार पांडे- प्र. चौखम्मा सुभारती प्रकाशन
6. ग्रह चिकित्सातंत्रम - टीका प्रेमदीक्षित, उमेश पांडे- मेघ प्रकाशन
7. आहार ज्योतिष - विवेकश्री कौशिक 'विश्वमित्त', शिलालेख पब्लिशर्स दिल्ली
8. बृहत्पराशर होराशास्त्र - महर्षि पराशर-ग्रह रोग अध्याय
9. भावप्रकाश निघंटू - भाव मिश्र - आहार वर्ग
10. अष्टांगहृदयम् - टीका व्याख्याकार प. काशीनाथ शास्त्री, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी वाराणसी
11. ऋग्वेद - वसिष्ठ ऋषि
12. vedicheritage.gov.in (IGNCA)
13. wisdomlib.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 23-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

“સામાજિક પરિવર્તનકારી કલંકિત એવી વિભાજનની રાજકીય ઘટનાનું હિન્દી કવિતામાં પ્રતિબિંબ”

મિસ્ત્રી પ્રકાશકુમાર મગનલાલ
સંશોધાર્થી, તુલનાત્મક સાહિત્ય વિભાગ
વીર નર્મદ દક્ષિણ ગુજરાત યુનિવર્સિટી, સુરત

સાહિત્ય સમાજનો અરીસો છે, પરંતુ આપણા ઘરના સાદા કે બાળવાટિકાનાં અંતર્ગોળ બહિર્ગોળ રમૂજ પ્રેરક અરીસા જેવો એ નિર્જીવ-નિર્લેપ અરીસો નથી. એની સાથે લેખક કે કવિની જીવંતતા, લાગણી, કલ્પના, ભાવ-ભાવનાનો પટ જોડાયેલો હોય છે. સાહિત્યકાર સમાજમાં રહીને સમાજનો એક ભાગ બનીને સાંપ્રત ઘટનાઓને જુએ છે. માત્ર જોતો નથી, અનુભવે પણ છે. આ ‘જોવું’ અને ‘જાગવું’ એ દર્શન અને અનુભૂતિ સાહિત્ય દર્પણનું આગવું તત્વ છે, એ સાદુ-સીધું, યથાતથ કે વક્રીભૂત જોતો નથી, પરંતુ અનુભૂત દર્શન આપે છે. એ જ એની વિશેષતા અને મહત્તા છે. કવિ પોતે જે અનુભવે છે તેની અનુભૂતિ વાચક-ભાવકને પણ કરાવે છે તે એનું આગવું લક્ષણ છે. એટલું જ નહીં જે તે જોયેલી-અનુભવેલી ઘટના પ્રત્યે એનો તાત્વિક દ્રષ્ટિકોણ, અને કંઈક સંદેશ પણ છુપાયેલો હોય છે. જે કોઈ વૈશ્વિક શાશ્વત મૂલ્ય કે સત્યના અંશથી પ્લાવિત હોય છે. માટે જ એ કૃતિ પ્રશિષ્ટ બને છે. સ્થળ-કાળના પરિણામથી પર હોય છે. તે માનવીય ભાવનાઓને, હૃદયને સ્પર્શી જનારી હોય છે. આવું જ કંઈક ઊંડું મર્મસ્પર્શી તત્વ ભારત-પાકિસ્તાનના ૧૯૪૭ના ભાગલાનું કે વિભાજનનું પ્રતિબિંબ ઝીલતી હિન્દીની કેટલીક કવિતાઓમાં જોવા મળે છે. વિભાજનની ઘટના આમ તો હિન્દુસ્તાનની સ્વાતંત્ર્ય પ્રાપ્તિ સાથે સંકળાયેલી ને સર્જાયેલ રાજકીય પરિસ્થિતિની બાબત છે, પરંતુ એના આઘાત પ્રત્યાઘાતો જીવનના કેટલાય ક્ષેત્રોમાં અને કેટલી મોટી માનવ વસ્તીને આવરી લેનારાં પડ્યા હતા. તો સાહિત્ય એમાંથી કેવી રીતે બાકાત રહી શકે? અને સમાજ તો એનાથી પ્રત્યક્ષરૂપે પ્રભાવિત થયો જ હતો. આટલી મોટી માનવવસ્તીનું સ્થળાંતર કેટલું દુઃખદાયક, યાતનાપૂર્ણ બન્યું છે હૃદય વિદ્યાલક ઘટના હતી. અંગ્રેજ રેડ ક્લીફે તો કાગળના નકશા ઉપર વિભાજક રેખા દોરીને હિન્દુસ્તાનના નકશાના ત્રણ ટુકડા કરી નાખ્યા. પરંતુ એનાથી સદીઓથી હળીમળીને સમ્પ-સોહાર્દથી રહેતી હિન્દુ-મુસ્લિમ પ્રજાના દિલો-દિમાગમાં કેવું ખૂની મંજર ઘૂસી ગયું કે બંને પ્રજા એકમેકના લોહીની તરસી બની ગઈ. લાખો લોકો મારામારી કાપાકાપી અને સ્થળાંતરમાં માર્યા ગયા. કદાચ માનવ ઇતિહાસનું આ પહેલું જ લોહીયાળ

દેશવિભાજન બની રહ્યું. ત્યારના અને ત્યાર પછીના લેખકો, કલાકારો, ફિલ્મકારોએ આ ઘટનાને પોતાના માધ્યમમાં ઝીલી છે. તો ઉર્દુ કે હિન્દીમાં કવિતા કરનારા કવિઓએ તેને કેવી સંવેદનાપૂર્વક જોઈ છે તેને તપાસવાનો અહીં ઉપક્રમ સેવ્યો છે.

પ્રસ્તુત પેપર એ સંવેદનશીલ આત્માઓ, ઋજુ હૃદય કવિઓની સંવેદનાને તેમની હિન્દી-ઉર્દુ કવિતાઓમાં ઝિલાયેલી જોવાનો એક નમ્ર પ્રયાસ છે. નિદા ફાઝલી, કૈફી આઝમી, બશીર ભદ્ર, બશીર અહમદ, ભારતેન્દુજી, પંડિત વૃજનારાયણ ચકબસ્ત, અને ધર્મવીર ભારતી. આ કવિ સપ્તર્ષિ દેશના ગણમાન્ય માનવીય કવિઓ છે. તેઓ બધા લાગણીના આઘાતમાંથી પસાર થતાં હતાં.

પાકિસ્તાનથી પાછા ફરતા નિદા ફાઝલી જુએ અને અનુભવે છે કે –

इंसान में हैवान, यहां भी है, वहां भी ।
अल्लाह निगहबान, यहां भी है, वहां भी ।
खूंखार दरिंदों के फक्त नाम अलग है
शहरों में बायाबान, यहां भी है, वहां भी है ।
हिंदू भी मजे में है, मुसलमां भी मजे में
इंसान परेशान है, यहां भी है, वहां भी ।
रहमन की कुदरत हो, या भगवान की मूरत
हर खेल का मैदान, यहां भी है, वहां भी है ।

કવિ અહીં ક્રૂરતાના નગ્ન નાચને પત્રકાર કે ઈતિહાસકારની જેમ જોતા વર્ણવતા નથી, પણ સપાટી પરની વાસ્તવિક્તાની અંદર ડૂબકી મારીને જુએ છે કે શેતાન તો અહીં પણ છે અને ત્યાં પણ છે, માનવ માત્રમાં છૂપાયેલો જ છે. એને હવા લાગતા જ માણસ હિન્દુ કે મુસ્લિમ મટી જાય છે અને હેવાન બની જાય છે. વિડંબના તો જુઓ કે ધર્મના નામે એકબીજાને મારવા મરવા તૈયાર થઈ જાય છે. અને માનવીય હિંસા આચરતા અચકાતો નથી. નિદા ફાઝલી સરહદની બંને બાજુ એક સરખી જ બદલાયેલી સ્થિતિ જુએ છે. આ છે સામાજિક પરિવર્તન એક અનિચ્છનીય, ખેદયુક્ત પરિવર્તન ! માણસ કોણ જાણે કેમ માણસ રહ્યો નથી. એનામાંથી માણસાઈ, માનવતા, દયા, ભાઈચારાની ભાવના ક્યાં લુપ્ત થઈ ગઈ?

આજ દર્શન હિન્દી કવિ ભારતેન્દુજીનું પણ છે-

हुआ बेशक बटवारा, बही खून की नदियां,
दानव की करतूतें, ना भूल सकेंगी सादियां ।

વિભાજનથી દેશના ટુકડા થયા, જેથી લોહીની નદીઓ વહી રહી. આવું ભયાનક કારસ્થાન સદીઓ સુધી ભૂલાશે નહિ. અને એ સાચું જ છે કે હજી આપણા પાડોશી દેશમાં માતૃભૂમિ ભારત માટે એ જ તિરસ્કાર અને શત્રુતા કાયમ છે. ન માત્ર ભારત અને પાકિસ્તાન, પણ દુનિયાએ રક્તરંજિત ભાગલા જોયા છે તે એને ભૂલી શકે તેમ નથી.

કવિ કૈફી આઝમી આ હેવાનિયતમાં સામેલ હત્યારાઓને પૂછે છે-

टपक रहा है जो जख्मों से दोनों फिरकों के
गौर देहो ये इस्लाम का लहू तो नहीं ?
समझ के माल मेरा जिसको तूमने लुटा है
पड़ोसियों ! वो तुम्हारी ही आबरू तो नहीं ?

પાક મુસ્લિમ હોવાથી કૈફી આઝમી આ માનવસંહાર જોઈ હચમચી ગયા છે. કારણ કે ઇસ્લામમાં તો કોઈની હત્યા કરવાની બંધી છે. સાચો ધાર્મિક મુસ્લિમ કદી કોઈનું લોહી ન વહાવે એનામાં દયા, અનુકંપા, કરૂણા હોય.... પણ ૧૯૪૭માં આ ગુણો અમારામાંથી ક્યાં ચાલી ગયા? મુસ્લિમ કેમ ધર્મઝનૂની બની ગયો? કેમ વિધર્મીઓને મારવા લાગ્યો? હજાર લોકોને મારી નખાયા, પરિવાર તૂટી ગયા, વેરવિખેર થઈ ગયા, નષ્ટ થઈ ગયા.

ડોક્ટર બશીર ભદ્ર પોતાની કવિતામાં કહે છે કે -

तेरी उन्नत से हजरत कर रहे हैं
फरिश्ते क्या बगावत कर रहे हैं ।
जमी भीगी हुई है आंसुओं से
यहां बादल इबादत कर रहे हैं ।
परिंदों को जमीनों आसमानों क्या
वतन में रहके हिजरत कर रहे हैं ।

ન માત્ર માણસોની વણજાર સરહદ પાર કરી રહી છે, પણ સ્વર્ગના સુખી પ્રદેશમાંથી પક્ષીઓ પણ ભારે હૈયે, રુંધાયેલા સ્વરે હિજરત ગાન ગાઇ રહ્યાં છે, જાણે કે માનવતાના મુલકમાંથી પાશવીપણાના પ્રદેશમાં જઈ રહ્યાં છે. તેમના આંસુઓથી ભૂમિ ભીની થઈ ગઈ છે. વાદળા પણ જાણે વહી વહીને લડતા ઇન્સાનને હિંસા રોકી દેવા વિનવી રહ્યાં છે. પક્ષીઓ કહે છે કે અમે હવે કદી મીઠાં ગીતડાં ગાઈ શકીશું નહીં, ઋતુ કહે છે કે અમારામાં કદી વસંત ખીલશે કઈ રીતે? ફૂલડાં ઊગશે નહીં, મધુર વાયરા વાશે નહીં, ધરતી રક્તરંજિત છે, એમાંથી ઊગશે કેવી રીતે? એનામાં હવે જીવનતા જ રહી નથી.

'सूर्यबीज' નામના પોતાના કાવ્યસંગ્રહમાં બશીર અહમદ તારવે છે કે, વિભાજન જનિત સામાજિક પરિસ્થિતિમાં તો પ્રાણીઓ પણ માણસ કરતા સારા એટલી નિમ્ન હદે માણસ ઊતરી ગયો છે. માણસ સામાજિક પ્રાણી કહેવાય છે, પણ આજે એ ખરેખર જંગલી પ્રાણીઓમાં પરિવર્તિત થઈ ગયો...

हाथ घायल हुए अध्य देते हुए,
मंत्र जपते हुए होंठ जलने लगे ।
जब फरिश्तों के वहेरों से नकाब हठी,
जानवर आदमी से बड़ा हो गया ।

પંડિત વૃજનારાયણ ચકબસ્ત તેમની કવિતા 'फरियाही कॉम'માં એવી જ ફરિયાદને વાચા આપે છે-

तबाह हाल है हिंदू भी और मुसलमां भी
हुए हैं नज मुसीबत के इमां भी
पढी नमाज तो उजड़े घरों के सहार में
अगर नहाए तो अपने लहू की गंगामें ।

બધી ધાર્મિક, સામાજિક નીતિ-રીતોઓ, ગતિ-વિધિઓ, નિયમો, સૂત્રો જે આજ સુધી સમાજને માણસને બાંધી રાખતી હતી જેને કારણે સમાજ માનવ સમાજ લાગતો હતો. તે બધું જ આજે છૂટી ગયું છે. હિંદુઓ ગંગાસ્નાને પવિત્રકરણ માટે, તનમન શુદ્ધિ માટે, આત્માના કલ્યાણ વાસ્તે ખૂબ જરૂરી માને છે ત્યારે કવિ અહીં કહે છે કે, હવે તમે તમારા જ લોહીની ગંગાનદીમાં સ્નાન કરી લો. કુમકુમ તિલક ભાલે કરતા હતા, તો હવે રક્તતિલક કરો. આમ વક્રતાપૂર્વક, વ્યંગવાણીમાં કવિ પોતાનું દુઃખ ઠાલવે છે.

જે. કૃષ્ણમૂર્તિ કહે છે –

"આપણી વૈચારિક જડ માન્યતામાંથી જ આપણા સંઘર્ષનો જન્મ થાય છે. પછી તે માન્યતા રાષ્ટ્રવાદની હોય, આદર્શવાદની હોય, જ્ઞાતિ-જાતિ ધર્મની હોય, તે જ આપણી વચ્ચે સંઘર્ષ મતાગ્રહ મતાંધતા, ઝનૂન વિખવાડ અને વિભાજનને જન્મ આપે છે."

આપણે દરેક જણ સત્તા, સંપત્તિ, પદ, પ્રતિષ્ઠા અને પોતાની જ માન્યતા સાચી એ માટે નથી લડતા પણ આપણા મનમાં જ યુદ્ધના મૂળ કે બીજ પડેલા છે. આતંકવાદ, જૂથ-અથડામણો, વિભાજન વગેરેમાં કોઈ બીજો કોઈ નહીં, આપણે પોતે જવાબદાર છીએ. આપણે જ કેન્દ્રમાં છીએ. માણસ જો સાંસ્કૃતિક મૂલ્યોનો પણ વારસદાર છે તો એજ માણસ સંસ્કૃતિક હિંસાનો પણ વારસદાર છે.

સંદર્ભસૂચિ :

૧. મુક્તિદા હસન નિદા ફાઝલી 'खोया हुआ सा कुछ' મેયોર પબ્લિકેશન, નવી દિલ્હી, ૧૯૯૬
૨. Kaifi Azmi, 'Selected Poems' Penguin India, New Delhi 1990
૩. સં. ધર્મવીર ભારતી 'વિભાજન કી કવિતા' રાજકમલ પ્રકાશન, દિલ્હી ૧૯૮૦

મો.નં : 9924801210

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 27-31
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के सशक्त हस्ताक्षर : डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरूण'

डॉ. भरत सिंह
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा भाषा सम्मान से अलंकृत डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' जी का जन्म 7 जून, 1941 को कनखल जिला हरिद्वार उत्तराखण्ड में हुआ था | पेशे से अध्यापन से जुड़े 'अरुण' जी ने अपने अकादमिक कार्यकाल में अनेक विश्वविद्यालयों में सेवाएँ दी हैं | वर्तमान में स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य में संलग्न हैं | इन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी हैं जिसमें प्रमुख रूप से 'स्वयंभू एवं तुलसी के नारी पात्र प्राकृत अपभ्रंश : इतिहास दर्शन, जैन कहानियाँ, दादी माँ ने हाँ कर दी, जैन रामायण की कहानियाँ, काव्य सरोवर का हंस : उदय भानु हंस, श्याम शिंह शशि ; सृजन एवं मूल्यांकन, अहसास और अन्य कहानियाँ, अभिनन्दन (कहानी संग्रह), चार बाल काव्य संग्रह, गीत-त्रिवेणी (गीत संकलन), बाती नदी हो जाए (गज़ल संग्रह), नदिया से सीखो (बाल-काव्य), विचार प्रवाह (निबन्ध संकलन) आदि प्रकाशित हो चुके हैं | इसी क्रम में वर्ष 2020 में प्रकाशित उनका दोहा संग्रह 'आशा कभी न छोड़िए' वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नितान्त प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण रचना है |

वस्तुतः डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' को 'आशा कभी न छोड़िए' शीर्षक से रचित दोहों को लिखने की प्रेरणा उन्हें वर्ष 2016 में उनकी धर्मपत्नी डॉ. आशा शर्मा के इस लोक से परलोक सिधारने के उपलक्ष्य पर उनके हृदय में निराशावाद, अकेलापन, पत्नी के बिछोह ही पीड़ा से उत्पन्न गहरे अवसाद के परिणामतः माँ शारदा ने स्वतः उनके हृदय तल से कभी भी आशा न छोड़ने की अनुभूति को जगाया जो उन्होंने दोहों के माध्यम से साकार होता है | 'अरुण' जी द्वारा रचित 'आशा कभी न छोड़िए' न केवल रचनाकार के निजी अनुभवों, भावनाओं, सम्वेदनाओं की अभिव्यक्ति है बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग उनके अकेलेपन, मनोस्थितियों, भावों, आदर्शों एवं समानभूति को आत्मसात करता है जो इसकी रचनाधर्मिता की प्रमुख विशेषताओं को उजागर करता है | दोहों के माध्यम से रचनाकार ने यह कहने की चेष्ठा की है कि इस मनोमय जीवन न जाने कितने दुखों, कष्टों, समस्याओं से भरा क्यों न हो व्यक्ति को सदैव आशातीत रहना चाहिए-

आशा कभी न छोड़िए, आशा है वरदान,
आशा बिन जीवन नहीं, आशा ही है प्राण |"[1]

कोई भी रचना तभी प्रसिद्ध होती है जब सहृदय उसमें आत्मसात करे या पाठक वर्ग लेखक की अनुभूति, वेदना, भावनाओं के साथ तादातम्य स्थापित करें | इस दृष्टि में 'अरुण' जी द्वारा रचित दोहा संग्रह 'आशा कभी न छोड़िए' खरा उतरता है | विवेच्य दोहा संग्रह एक ऐसी काव्य रचना है जो मानवता की उच्च भूमि पर अवस्थित है | इसमें कवि

ने अपने जीवन के समस्त भावों, क्रियाकलापों, गुण-दोषों, आशा-आकाक्षाओं की सार्थक अभिव्यक्ति की है | अतः यहाँ रचनाकार की मानवीय सहानुभूति तथा मानव कल्याण की भावना से जुड़ा हुआ है जो कालान्तर में पाठक वर्ग पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है |

सम्प्रतिकाल में 'अरुण' जी द्वारा रचित दोहा-संग्रह अत्यंत प्रासांगिक है क्योंकि जिस प्रकार से विगत वर्षों में कोरोना काल में मानव जाति ने असमय अपने संगे-सम्बन्धियों को खोया है, ऐसे में 'आशा कभी न छोड़िए' के माध्यम से कवि विश्व के समस्त जनमानस को यही संदेश देते हैं कि जो संसार पर विकट घड़ी आई है, यह बुरा समय भी खत्म हो जाएगा | इस सम्बन्ध में कवि लिखते हैं-

दूर निराशा को करे, आशा हो भरपूर
जीवन धन अनमोल है, रखिए याद जरुर |"[2]
नई सुबह आती रहे, यही कामना आज |
आशा सबके साथ हो, बढ़ता रहे समाज |"[3]

कवि समाज, देश और जगत का पथ प्रदर्शक एवं निर्माता होता है | इसके परिणामतः उनमें निहित मानवीय संवेदनाएँ, सर्वजन हिताय और सर्व कल्याण की भावना घनीभूत होती है | इस सम्बन्ध में कवि 'अरुण' की पंक्तियाँ साक्षी हैं-

सबका सुख अपना लगे, अपना हो यह धर्म |
जग का हित होता रहे, सदा करें वह कर्म |"[4]

'आशा कभी न छोड़िए' दोहों में कबीर की भान्ति रहस्यवाद की अनुगूँज परिलक्षित होती है | "अपनी अंतः स्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा सत्य, परम-तत्त्व अथवा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है |"[5] ऐसी मान्यता है कि परमतत्त्व प्राप्त करने के बाद मनुष्य को मुक्ति मिलती है | रहस्यवादी साधक रहस्यवादी सत्य के लिए आश्वस्त रहता है | इसलिए यह व्यक्तिगत धर्म का आधार बनती है | अनुभूति के परम क्षणों में आत्मा एक दिव्य शक्ति से ओत-प्रोत, नूतन परम आनन्द, मुक्त और प्रवृत्तिकृत अनुभव कराती है |

रीत प्रीत की है यही,
सब कुछ प्रिय पर वार |
प्रीत धार तलवार की,
है मन का त्यौहार |"[6]

मिलन की अनूठी ललक यहाँ डबडबाई आँखें ही नहीं, झीनी मुस्कान भी है | दृश्यों में भटकी इस दोहे में कवि ने आंतरिक भावों को ढालने का प्रयास किया है | किसी भी काल विशेष में देखें रूमानी कविता (दोहे) की भाषा इतनी सरल नहीं है | वर्तमान परिदृश्य में व्यक्ति पर तरह-तरह के दबाव हैं उनमें से एक दबाव समाज, संस्कृति और परम्परा का भी है | ऐसे में सबके प्रति सम्मान, प्रेमभाव, कर्मठता, आत्मबोध, आत्मविश्वास तथा आत्मचिंतन के सकारात्मक भावों की अत्यंत आवश्यकता है | कवि ने अपनी अनुभूति की प्रामाणिकता के आधार पर ऐसे दोहों रचने की कोशिश की है कि जिसके परिणामतः आत्मविश्वास, आशावाद और आत्मशक्ति में जब परिवर्तित होता है तो घोर निराशावाद भी आशा की किरण में परिवर्तित हो जाता है | इस दिशा में कवि लिखते हैं-

आत्मशक्ति होगी अगर विजयी होंगे आप
कर्म मन्त्र के जाप से, मिटेगे सब अभिशाप |"[7]

गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्म योग का उपदेश दिया था | उसी से प्रेरणा लेकर कवि ने अपने दोहों में कर्म को महत्ता प्रदान की है | वैसे भी मनुष्य जब किसी से प्रेम भाव से जुड़ता है तब उसका प्रत्येक पक्ष शुभ कर्म बन जाता है | ऐसी स्थिति में वह स्वर्ग-नरक के भेदभाव को मिटाकर अपने कर्मों पर अटल रहता है | कर्म मार्ग के आधार पर उसकी मनः स्थिति में आत्मसन्तुष्टि का भाव जागृत होता है | कविवर 'अरुण' ने अपनी रचना में इस बिन्दु को बड़ी सूक्ष्मता से उद्घाटित किया है, यथा-

करें भरोसा स्वयं पर, बनेंगे सारे काम,
यही मनुज का धर्म है, कर्म करे निष्काम |
आत्मशक्ति होगी अगर, चिन्तन होगा शुद्ध,
जग में जय होगी तभी, कहते यही प्रबुद्ध |"[8]

गीता में कर्म की महत्ता से प्रभावित होकर कवि ने अपनी रचना में कर्मशीलता के महत्त्व को उजाकर किया है| कवि जनमानस से सृष्टि के मूल में कर्म को स्थापित स्थापित करते हुए यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टि का नाश कुकर्म से होता है | कवि ने अनुभूति को जीवन की अनुभूति से उत्पन्न मानते हुए सबका ध्यान केन्द्रित करते हैं कि कवि ने उसे संस्कारित किया ताकि उसकी स्वायत्तता सुरक्षित रह सके | कवि मानना है कि व्यक्ति का अहंभाव, संस्कारहिनता, आपसी द्वेष, कुकर्म, अहिंसा, अभिमान आदि मनुष्यता के कटु शत्रु हैं | उनके अनुसार यदि किसी व्यक्ति के अंतर्मन में यह भाव होंगे तो वह उस मनुष्य को मानव बनने में बाधाएँ उत्पन्न करता है | मनुष्य के सद्कर्म, उच्चभाव, संस्कारी भाव, अहम का विनाश अच्छे मानव का निर्माण करते हैं | वह लिखते हैं –

करे याद तुमको जगत, गर हो यह अरमान,
सबसे ही हंसकर मिलो, छोड़ो बस अभिमान |
मेरा 'मैं' सबसे बड़ा, ये तो शुद्ध विचार,
दूजे का सम्मान ही, दिलवाता है प्यार |"[9]

समकालीन कवि अपनी लोकसंस्कृति, परम्पराओं, रीति-रिवाजों एवं संस्कारों के संरक्षण सम्बर्धन हेतु प्रतिबद्ध है | वैसे भी जिस व्यक्ति, समाज या देश से संस्कार गायव हो जाते हैं, उनका पतन निश्चित है | संस्कृति संस्कार से बनती है | यदि हम अपनी संस्कति से ही कट जाएगे तो हमारा अस्तित्व ही नष्ट हो जाएगा | वर्तमान समय में आज का भारतीय समाज अपनी लोकसंस्कृति की उपेक्षा पर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है | ऐसी स्थिति में वह पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववश अपने संस्कारों को भूल कर स्वार्थ के वशीभूत होकर व्यक्ति और समाज के साथ विश्वासघात कर रहा है ऐसी स्थिति में उसमें मनुष्यता के जीवन मूल्यों में अवघटन हो रहा है जिससे उसकी कथनी और करनी में अंतर आ गया है | कवि ने इस समस्या को बड़ी सुन्दरता से अभिव्यंजित किया है-

कथनी कुछ, करनी कुछ, कौन करे विश्वास,
जीवन में हो सत्य जब, पूरी हो हर आस |"[10]
कथनी करनी एक हो, सज्जन की पहचान,
जो कहकर करती नहीं, वो कैसा इन्सान |"[11]

कविवर ने बारम्बार आत्मविश्वास, आशा, कर्म, परोपकार आदि को सफल एवं सुखद जीवन के प्रमुख बिंदु कहे हैं | उनके अनुसार यदि व्यक्ति ने बुरे समय में आत्मविश्वस की भावना जागृत होगी तो वह किसी भी दुःख, पीड़ा से उभरकर आशातीत होगा | उसका जीवन सार्थक होगा | कवि 'अरुण' धन सम्पत्ति को जीवन का मूल उद्देश्य नहीं

मानते उनके अनुसार जीवन तभी सार्थक होगा जब उसमें परोपकारी भाव, परहित निःस्वार्थ, सेवाभावी होकर अपना जीवन यापन करता है | उनके अनुसार यही जीवन की वास्तविकता है, धन, माया और भागवादिता आत्म आनन्द की प्रतीति नहीं करवाती | एक दोहे में वह लिखते हैं –

मर्यादा में जो रहे, वो ऊँचा हो जाए |
सागर सीमा न तजे, रत्नाकर कहलाए |"[12]

समकालीन साहित्य विविध विमर्शों को लेकर चलता है | इस कालखण्ड में दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, तृतीयलिंगी विमर्श एवं वृद्ध विमर्श का दौर है | आज का ऐसा दौर है जब तथाकथित पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी वर्ग अपने वृद्ध माता-पिता की उपेक्षा करते हैं | आज के असंख्य वृद्धाश्रम इसके उदाहरण है | इनमें किसी गरीब या ग्रामीण जनमानस के वृद्धजन नहीं रहते बल्कि खुद को सभ्य और पढ़े-लिखे कहे जाने वाले लोगों के माता-पिता रहते हैं | यह समस्त अमानवीयता अपने संस्कारों का त्याग कर पाश्चात्य संस्कारों के ग्रहण करने के फलस्वरूप हो रहा है| इस संस्कारहीनता के कारणवश वर्तमान दौर में नवयुवकों के भीतर अपने पूर्वजों के प्रति उपेक्षा, अनादर, अपमान का भाव बढ़ गया है | वह यह नहीं समझते कि आने वाले समय में उनके साथ भी ऐसा ही होने वाला है | कविवर 'अरुण' जी ने इस विषय को बड़ी गम्भीरता से चित्रित किया है-

जो बोया वो काटेगा, दुनिया का दस्तुर,
प्यार पास लाता सदा, नफरत करती दूर |"[13]
रंग बदलता आदमी, गिरगिट भी शर्माय,
कैसा आया वक्त अब, कुछ भी कहा न जाए |"[14]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनुभूति की प्रामाणिकता से सींचे यह दोहे मनुष्य को निराशा में भी आशा के भाव जागृत करते हैं | कविवर 'अरुण' ने बड़े सरलता, सहजता और स्वाभाविकता से अपनी भावों, सम्वेदनाओं को अभिव्यक्त किया है | इस दोहों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये किसी व्यक्ति विशेष की रचना न होकर समूचे देश, प्रदेश और विश्व के मानव जाति की अभिव्यक्ति बन जाती है जो रचनाकार की अद्भुत प्रतिभा के द्योतक हैं | 'आशा कभी न छोड़िए' विषय नितान्त प्रासंगिक है | इसमें निहित विषय और भाव वर्तमान समस्याओं को उजागर करता है | कवि ने अपनी अनुभूति के माध्यम से इन समस्याओं को दूर करने का भगीरथ प्रयास किया है |

सन्दर्भ सूची :

1. डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण', आशा कभी न छोड़िए', स्याहीBlue, दिल्ली- 110053, संस्करण 2020, पृ.10
2. वहीं, पृ. 43
3. वहीं, पृ. 50
4. वहीं, पृ. 11
5. धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य कोश(प्रथम भाग), संस्करण 2009, पृ. 535
6. डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण', आशा कभी न छोड़िए', स्याहीBlue, दिल्ली- 110053, संस्करण 2020, पृ. 20
7. डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण', आशा कभी न छोड़िए', स्याहीBlue, दिल्ली- 110053, संस्करण 2020, पृ. 54

8. डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण', आशा कभी न छोड़िए', स्याहीBlue, दिल्ली- 110053, संस्करण 2020, पृ. 20
9. वहीं, पृ. 14
10. वहीं, पृ. 96
11. वहीं, पृ. 65
12. वहीं, पृ. 12
13. वहीं, पृ. 62
14. वहीं, पृ. 99

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 32-35
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रेस कुजुर की कविताओं में स्त्री संघर्ष का स्वर

बलराम मीना
पी. एच डी. , हिंदी विभाग (दिल्ली विश्विद्यालय),
B-373 ग्राउंड फ्लोर नेहरू विहार, दिल्ली –110054

शोध सार – हिन्दी में लिखनेवाली और वर्तमान अग्नितत्व से लैस आदिवासी कवयित्रियों में ग्रेस कुजुर सर्वप्रमुख है | इनकी कविताओं में आदिवासी संस्कृति, परिवेश, संघर्षरत स्त्री तथा पूर्वजों की याद करने की परंपरा इत्यादि जैसे विषय शामिल किए गए हैं | इन्होंने "बाल्टर भेंगरा तरुण और डॉक्टर महेंद्र किशोर" के मार्गदर्शन में अपनी छोटी-छोटी कविताओं को साप्ताहिक पत्रिका में छपवाने से अपने लेखन की शुरुआत की | इनकी कविताओं में आदिवासी विश्व दृष्टिकोण सामने आता है जो कि अतीत की स्मृतियां और आदिवासियों के गौरवपूर्ण इतिहास को उजागर करता है | इनकी कविताएं जैसे हे समय के पहरेदारों, कलम मौसम बदलेगी ,एक और जानी शिकार, कलम को तीर होने दो, मां बहन बेटी ही क्यों हूं , पानी ढोती औरत, बिटिया के नाम ,अब हम गीत नहीं गाएंगे,स्वाद जैसी कविताओं में स्त्रियों के श्रम व संघर्ष का चित्रण किया है | इनकी कविताएं कथ्य ,मुहावरे ,शिल्प के स्तर पर भी अपनी खास पहचान बनाती हैं|
बीज शब्द – आदिवासी,अग्नितत्व, परम्परा,विश्व दृष्टिकोण,स्त्री संघर्ष, पूर्वज , भाषा
मूल आलेख – आदिवासी जीवन को लेकर जब कविता की बात की जाती है तो मौखिक परंपरा ही समृद्ध धरोहर के रूप में सामने आती है जो प्रमुख रूप से गेय परंपरा रही है | ग्रेस कुजुर की कविताएं कई अर्थों में विशिष्ट है तथा समकालीनों से कई अर्थों में पृथक भी है क्योंकि वे सिर्फ आदिवासी जीवन और आदिवासी स्त्रियों की बात नहीं करती बल्कि इन कविताओं में उन सभी स्त्रियों को स्थान मिला है जो निरंतर संघर्षरत है | ग्रेस कुजुर की कविताओं में तीर का प्रतीक वही है जो रामदयाल मुंडा की कविताओं में नदी प्रतीक हैं | तीर संघर्ष, प्रतिरोध का प्रतीक है और नदी निरंतरता का | तीर आदिवासी संस्कृति में संभवतः नवपाषाण काल से ही महत्व रखता है | भूमंडलीकरण के दौर में विभिन्न प्रकार के घातक हथियार हैं परंतु आज भी आदिवासी अपने घरों से सड़कों पर निकलकर तीर और कमान के जरिए जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए कतारबद्ध चलते हैं | कवयित्री पूंजीवाद के विरोध में खड़ी है उनमें प्रतिरोध को तर्ज करने की जिद है वह बार-बार "कलम को तीर होने दो" को दोहराती है जैसा कि नागार्जुन की कविता "अकाल और उसके बाद" में कई दिनों के बाद पद बार-बार दोहराया गया है |

प्रसिद्ध सांस्कृतिक अगुवा रामदयाल मुंडा ने आदि धर्म किताब में अतिशय लाभ की आकांक्षा और पूंजीवादी व्यवस्था के कारण अत्यधिक खनन ,औद्योगिकरण ,शहरीकरण पर सवाल खड़े किए हैं | धरती के ताप में निरंतर वृद्धि और मौसम चक्र के परिवर्तन को इंगित किया है | सृष्टि को बचाने के लिए आदिवासियत की महत्ता पर प्रकाश डाला है - ''सृष्टि की श्रेष्ठतम रचना होने का मतलब उसे प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने का असीमित अधिकार मिल गया , यह

नहीं है | मनुष्य को उसके ज्ञान के उत्तरोत्तर विस्तार के बावजूद प्रकृति के समक्ष उसकी शुद्रता का एहसास और उसके प्रति कृतज्ञता और आदर भाव का बोध होना चाहिए | प्रकृति हमारा संपोषण करती है तो हमारा भी कर्तव्य बनता है कि हम भी उसका संपोषण करें |"1

ग्रेस कुजूर की एक "जनी और शिकार" कविता में सिनगी दई जो क्रांतिकारी स्त्री है उन्हें शिकार करते हुए बिम्ब के रूप में दर्शाया है जो दिखाता है कि आदिवासी स्त्री सिर्फ नेतृत्व शक्ति से संपन्न नहीं है बल्कि अपने समुदाय की मार्गदर्शक भी है |

" हे संगी!
तानों अपना तरकश
नहीं हुआ है भोथरा अब तक
बिरसा आबा का तीर
कस कर थामो
टहनी पर अटके हुए
सूरज के लाल गोंढा को
गला दो हथेलियों की
गर्मी से अपनी" 2

ग्रेस कुजुर ने "स्त्री" कविता के माध्यम से हर स्त्री की पीड़ा को साझा किया है साथ ही,यह कविता हर तरह के विभाजन ,असमानता के खिलाफ खड़ी है | उनकी इस कविता में स्त्री पुरुष समानता की पक्षधरता है जो आदिवासी साहित्य का सौंदर्यबोध है |

" समय के पृष्ठ पर स्त्री
करतीं है रोपनी
प्यार दुलार ओर रिश्तों के बीज
उगते हैं जहां नागफनी के कांटों सा
हिंसा,अपमान,तिरस्कार और
बलात्कार के बीज
बावजूद इसके
पकती है उसकी किताब
शायद ही पढ़ी जाती होगी कभी
पूरी की पूरी
अपने शीर्षक में सिमटी
किताब के पृष्ठ
तरसते हैं तुम्हारी उंगलियों का स्पर्श
पाने के लिए !" 3

"स्वाद" कविता में आदिवासी लड़की चरीयो अपने पिता से विवाह संबंधी अपने सपने साझा करती हैं क्योंकि आदिवासी समुदायों में लड़कियों को अपनी पसंद नापसंद बताने का अधिकार है | जो वर्तमान समय में स्त्री की स्वतंत्रता

को उजागर करता हैं जिसको अन्य समाज अपने मूल्यों अब समाहित कर रहे है जो कि एक सकारात्मक सोच और समानता को दर्शाता हैं |

"बिटिया के नाम" कविता में अपनी बेटी के बहाने कवयित्री ने सभी बेटियों को संबोधित किया है | इस कविता में निरंतर संघर्ष करने की पक्षधरता है और अनवरत प्रयास करने का संकल्प भी | कवयित्री ने इस कविता में यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि बेटियां आदिवासी समुदायों में किस तरह जन्म से ही स्वीकार की जाती है और उनको आगे बढ़ने का पूरा मौका दिया जाता हैं | मुंडारी गीत में भी लड़की के जन्म को गोहार भरने के साथ जोड़ा जाता हैं |

"जीवन में
शिखर तक है पहुंचना
करना है प्रयास अनवरत
नहीं हो कभी जीवन में
डर भय
क्योंकि जब तुम पत्थर पर हो बैठी
तो निश्चित है
तुम,होगी नहीं भयभीत
क्योंकि - है वह स्थिर
चलने लगे पत्थर यदि
तो लगेगा भय l" 4

"चिंगारियां" कविता में ग्रेस कुजुर का प्रतिरोध कुछ अलग ढंग से नजर आता हैं जहां एक ओर कवयित्री समाज के तानों बानो का विरोध करती हैं वहीं दूसरी ओर लोगों के रंगभेदी नज़रिया का पुर ज़ोर तरीके से विरोध करती हैं क्योंकि आदिवासी महिलाओं को अपने रंग रूप और नयननक्श के चलते कथित मुख्यधारा से प्रताड़ित होना पड़ता है कई तरह की टिप्पणियां की जाती है कामवासना दृष्टि से देखा जाता हैं | इस प्रकार इस कविता में कवयित्री अपने अंदर की शक्ति को पहचाने का आह्वान करती है |

"वे जो मेरा सांवला रंग देखते है
तिरछी नजरों से
उनसे कहे देती हूं
फूंक मत मारना
इस रंग के नीचे बहुत है चिंगारियां |" 5

ग्रेस कुजुर ने "स्त्री, आग़ , पानी ढोती औरत, नन्ही हरि दूब ,गांव निकाला ,मां बहन बेटी ही हूं ," कविताओ में समाज में प्रचलित दोहरे मानदंडों, पितृसत्तात्मक संघर्षों ,हर तरह के अत्याचारों ,अंधविश्वासों को तोड़ने की पहल की है | समाज में स्त्री का स्थान बदलने को तत्पर कवयित्री अनामिका, कात्यायनी के समान कवयित्री ग्रेस कुजुर भी समाज में स्त्री का स्थान बदलने को तत्पर पर दिखती है | हालांकि आदिवासी समुदाय में गैर बराबरी न के बराबर है | आदिवासी समुदाय सबसे अधिक लोकतांत्रिक समाज है | स्त्रियां समाज में सामंती जकड़न की शिकार नहीं है अतः स्त्रीवाद न के बराबर है परंतु ग्रेस कुजुर जब भारत के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण करती हैं तो उनको स्त्री की विडंबना ,पीड़ा को समीप से देखने का अवसर मिला | अतः इनकी कविताओं में दूसरे समाज के भी स्त्री जीवन के विविध पक्ष दिखाई देते हैं | एक बुद्धिजीवी कवयित्री के तौर पर वह मानती है कि हर स्त्री के इंसान होने की गरिमा की रक्षा होनी चाहिए |

"मां बहन बेटी ही क्यों हूं ?" कविता में अपनी उपस्थिति को दिखाती हैं और बताती है कि स्त्री जिंदगी के हर पड़ाव में , हार जीत, सभा, संसद अब जगह कंधे से कंधा मिलाकर चलती है फिर भी मनुष्य की जुबा पर उनके नाम की भद्दी गाली क्यू दी जाती है |

" तुम्हारी जिह्वा की बोली, भाषा
जिंदगी की मिठास भी हूं
फिर भी तुम्हारी जुबां की निकृष्टम गाली में
"मां, बहन,बेटी" ही क्यों हूं ?" 6

निष्कर्ष – ग्रेस कुजूर की कविताओं में स्त्री संवेदना तो है ही लेकिन उनकी कविताओं में पशु -पक्षियों, पेड़ -पहाड़ों ,जंगलों के प्रति भी पूरी संवेदनाएं मौजूद हैं |इनकी कविताएं सिर्फ आदिवासी जिजीविषा, जीवन संघर्षों सपनों, आकांक्षाओं की कविता नहीं है बल्कि कविताओं का फलक व्यापक है और वितान बड़ा है | स्थानीय बिंबों,प्रतीकों के द्वारा भी आदिवासीयत, इंसानियत ,धरती प्रकृति की सलामती की कामना करती हैं | इन्होंने अपनी कविताओं में ऐसे बिंबो का चयन किया जिससे आदिवासी जीवन की वास्तविक स्थिति को बताया जा सके तथा आदिवासी स्त्रियों के अधिकारों को सामाजिक मंच प्रदान करने के लिए अपनी कविताओं को आधार बनाया | ग्रेस बुजुर्ग की भाषा अपने समुदाय संस्कृति के संपूर्ण यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम है इनकी कविताओं में आदिवासी स्त्री के साथ अन्य निरंतर संघर्षरत स्त्रियों के जीवन संघर्षों को बखूबी उभरकर सामने आता हैं | वे आदिवासी, दलित और हाशिये की स्त्रियों की पीड़ा, प्रतिरोध और चेतना को काव्यात्मक भाषा में प्रस्तुत करती हैं| उनकी कविता सिर्फ एक साहित्यिक अनुभव नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव की दस्तक है|

" लावा नहीं
अलाव हूं मैं
उन तक पहुंचने
की चाहत में
सुलगती हूं
आहिस्ता, आहिस्ता," 7

संदर्भ ग्रंथ

1. आदि धरम, रामदयाल मुंडा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 46
2. एक जनी और शिकार,ग्रेस कुजुर, अनुज्ञा बुक्स मुद्रण 2025, पृष्ठ 118
3. स्त्री, ग्रेस कुजुर, अनुज्ञा बुक्स मुद्रण 2025, पृष्ठ 41
4. बिटिया के नाम, ग्रेस कुजुर, अनुज्ञा बुक्स मुद्रण 2025, पृष्ठ 46
5. चिंगारियां,ग्रेस कुजुर, अनुज्ञा बुक्स मुद्रण 2025, पृष्ठ 138
6. मां बहन बेटी ही क्यों हूं, ग्रेस कुजुर, अनुज्ञा बुक्स मुद्रण 2025 , पृष्ठ 58
7. एक जनी और शिकार, ग्रेस कुजुर, अनुज्ञा बुक्स मुद्रण 2025, भूमिका पृष्ठ 6

मोबाइल नंबर: 9414504634. ई-मेल: balrammeena909@gmail.com.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 36-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पृथ्वीराज चौहान और उनकी दिग्विजय की समीक्षा

भोजाराम

अतिथि–शिक्षक एवं शोधार्थी इतिहास,
अतिथि–शिक्षक-राजकीय महाविद्यालय सांकड़ा (जैसलमेर)

प्राक्कथन – भारत के अंतिम हिंदू सम्राट के रूप में ख्याति प्राप्त धनुर्विद्या में सिद्धहस्त पृथ्वीराज चौहान का जन्म 1166 ईस्वी में अन्हिलपाटन में हुआ था। 11 वर्ष की अल्पायु में वह अजमेर की गद्दी पर बैठा। 1 वर्ष तक माता कर्पूरी देवी व मुख्यमंत्री कैमार्स (कदंबवास)के संरक्षण में शासन किया। सेनापति भुवनमल्ल ने पृथ्वीराज चौहान को शुरुआती कठिनाइयों से सुरक्षित रखा।

12वीं शताब्दी में चौहानों की शक्ति लगातार बढ़ रही थी , दिल्ली और राजपूताने के कई शासक उनके सामंत बन चुके थे तथा पृथ्वीराज चौहान की दिग्विजय से ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब चौहान शक्ति उत्तर भारत में नेतृत्व करेगी और पुनः एक शक्तिशाली केंदीय सत्ता का निर्माण होगा

तत्कालीन समय में भारत में केंद्रीय सत्ता का अभाव था। छोटे–छोटे राजपूत राज्य आपस में लड़कर अपनी शक्ति नष्ट कर रहे थे। इन राजपूत राजाओं ने पश्चिम की तरफ से बढ़ रहे तुर्की आक्रमणों के विरुद्ध कोई योजना नहीं बनाई थी।

पृथ्वीराज का प्रारंभिक संघर्ष – अल्पवयस्कता के कारण पृथ्वीराज के चाचा अपरगांगेय ने विरोध किया तो पृथ्वीराज ने उन्हें हराकर हत्या करवा दी। तब उसके छोटे भाई नागार्जुन ने विद्रोह कर दिया। नागार्जुन ने गुड़गांव पर अधिकार कर लिया तब पृथ्वीराज ने बड़ी सेना लेकर क्रूरता पूर्वक इस विद्रोह का दमन किया, ताकि भविष्य में कोई विद्रोह करने का दुस्साहस न कर सके।

भंडानक सतलज प्रांत से आने वाली स्वतंत्रता प्रिय जाती थी। जो गुड़गांव हिसार के आसपास बस गई थी। इनका बाहुल्य मथुरा, भरतपुर, अलवर के आसपास के प्रदेशों में बढता जा रहा था, विग्रहराज चतुर्थ आदि पूर्व शासकों ने इनको पराजित किया था लेकिन पूर्ण रूप से दबाने में असफल रहे। 1182 ईस्वी में पृथ्वीराज चौहान ने उनके उपद्रवों को हमेशा के लिए दबा दिया।

पृथ्वीराज तृतीय का दिग्विजय अभियान – कम उम्र में प्राप्त की गई प्रारंभिक विजयों से पृथ्वीराज चौहान के हौसले बढ़ गए अब वह प्राचीन भारतीय सम्राटों की तरह अपने पड़ोसी छोटे–मोटे राज्यों को अपने अधीन करने की योजना बनाने लगे।

पृथ्वीराज चौहान की दिग्विजय नीति का प्रथम सोपान महोबा विजय थी। बुंदेलखंड, जैत्राकमुक्ति, महोबा आदि के सम्मिलित क्षेत्र पर चंदेल शासक परमर्दिदेव का शासन था। चंदेल राज ने पृथ्वीराज के कुछ घायल सैनिकों को मरवा दिया था तब पृथ्वीराज ने बदला लेना आवश्यक समझा। इस समय महोबा की स्थिति ठीक नहीं थी उनके दो सेनापति आल्हा और उदल रुष्ट होकर कन्नौज चले गए थे। लेकिन जब उन्हें पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण की सूचना मिली तो हुए मातृभूमि की रक्षार्थ युद्ध मैदान में आ गए। उनके आने तक परमर्दिदेव के सामंत मलखान ने चौहान सेना को सिरसागढ के निकट रोक रखा तथा परमर्दिदेव ने भी युद्ध विराम की बातचीत जारी रखी। आल्हा– ऊदल के आने पर दोनों सेना के मध्य तुमुल युद्ध हुआ, जिसमें आल्हा– ऊदल वीरता पूर्वक लड़ते हुए मातृभूमि की रक्षार्थ शहीद हुए और विजयश्री पृथ्वीराज चौहान के हाथ लगी।

दिग्विजय का दूसरा सोपान चालुक्य – चौहान संघर्ष था। वैसे तो यह संघर्ष 4–5 पीढियों से लगातार चलता रहा था जिसमें कभी संघर्ष तो कभी मैत्री हो जाती थी।

पृथ्वीराज रासौ के अनुसार पृथ्वीराज ने आबू की राजकुमारी इच्छिनी से विवाह कर चालुक्य नरेश भीम द्वितीय को नाराज कर दिया था। चौहान – चालुक्य संघर्ष का वास्तविक कारण राज्य विस्तार था, दोनों राज्यों की सीमाएं टकराने लगी। दोनों शासकों की महत्वाकांक्षाएं वैमनस्य का कारण बनी। ऐसी स्थिति में दोनों सेनाओं के बीच छोटी–मोटी सैनिक झड़पें होती रही तथा संधि के प्रस्ताव भी चलते रहे फिर भी दोनों के बीच वैमनस्य बना रहा।

दिग्विजय का तीसरा सोपान चौहान गहड़वाल वैमनस्य था। दिल्ली पर अधिकार को लेकर चौहान गहड़वाल संघर्ष विग्रह राज चतुर्थ के समय से चला रहा था। जिसे जयचंद ने बरकरार रखा, तो पृथ्वीराज ने जवाबी कार्यवाही का निश्चय किया। पृथ्वीराज की दिग्विजय योजना को जारी रखने हेतु कन्नौज को पराजित करना जरूरी था। पृथ्वीराज की सैनिक विजयों से जयचंद गहड़वाल को भारी ईर्ष्या होने लगी। पृथ्वीराज रासौ में दोनों के मध्य संघर्ष का कारण जयचंद की पुत्री संयोगिता बताई गई है, जिससे पृथ्वीराज चौहान प्रेम करता था। जयचंद ने इस प्रेम **संबंध** की अवहेलना की। तथा पृथ्वीराज का अपमान करने हेतु संयोगिता का स्वयंवर रचा, जिसमें पृथ्वीराज को आमंत्रण नहीं भेजा और उनकी पत्थर की मूर्ति बना द्वारपाल की जगह पर रखवा दी। जब संयोगिता ने वरमाला पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में डाल दी तभी पृथ्वीराज दल – बल सहित जाकर संयोगिता का अपहरण करके चल पड़ा। जयचंद की सैनिकों ने पीछा किया परंतु सफलता नहीं मिली।

पृथ्वीराज का तुर्कों के विरुद्ध अभियान – गौरी वंश के शासको ने गजनी पर आधिपत्य स्थापित किया फिर पश्चिम की तरफ उनको सफलता नहीं मिली तो पूर्व की ओर अपने साम्राज्य का विस्तार करने हेतु तथा भारत की उपजाऊ भूमि प्राप्त करने, धन– संपदा की इच्छा से भारत पर सैनिक अभियान शुरू किए। गयासुद्दीन गौरी ने अपने छोटे भाई शिहाबुद्दीन गौरी को गजनी का गवर्नर नियुक्त कर भारत की ओर प्रसार करने की छूट दे दी। मोहम्मद गौरी के आक्रमण के समय भारत की उत्तर – पश्चिम में सीमा पर सिंध, मुल्तान और पंजाब तीन मुस्लिम राज्य थे। गोरी ने 1175 में सर्वप्रथम मुल्तान के विरुद्ध अभियान किया। 1176 में सिंध पर अधिकार कर लिया। 1178 – 79 में गौरी के राजपूताना होते हुए चालुक्य के विरुद्ध अभियान किया। जिसमें नायिका देवी के नेतृत्व में चालुक्य की सेना ने तुर्क सेना को बुरी तरह परास्त किया। उसके बाद गौरी ने 1179 में पेशावर तथा 1181 में लाहौर जीता। तथा 1189 में तबरहिंद (भठिंडा) पर अधिकार कर लिया तब पृथ्वीराज और गौरी की सीमाएं टकराने लगी तो संघर्ष अवश्यंभावी हो गया। दोनों सेनाएं तराइन के मैदान में आमने–सामने हो गई युद्ध शुरू हुआ, पृथ्वीराज के सेनापति गोविंदराय के वार से गौरी घायल हो गया। गौरी के साथी गौरी को बचाकर सुरक्षित स्थान पर ले गए। तुर्क सेवा में भगदड़ मच गई और अपनी जान बचाकर युद्ध मैदान से भाग निकली। पृथ्वीराज ने घेरा डालकर तब तबरहिंद के दुर्ग को काजी जियाउद्दीन से छीन लिया।

इस पराजय के बाद गौरी ने सैनिक तैयारी शुरू कर दी। अपनी पुरानी गलतियों से सबक लेकर 1 साल बाद पुनः तराइन के मैदान में आ डटा, उधर पृथ्वीराज चौहान जीत का जश्न मना रहे थे, तथा विलासी जीवन का आनंद ले रहे थे।

तराइन के मैदान में आकर मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज को भुलावे में रखने हेतु संधि वार्ता भेजी तो चौहान सेना रात भर आनंद मानती रही। ज्यों ही प्रभात हुआ राजपूत सैनिक शौच आदि कार्यों में लगे तभी अचानक तुर्कों ने आक्रमण कर दिया, जिससे राजपूत सेवा में भगदड़ बच गई तथा तुर्क सेना को विजय प्राप्त हुई।

पृथ्वीराज की दिग्विजय नीति की समीक्षा – कई इतिहासकार और विद्वान पृथ्वीराज की दिग्विजय नीति की आलोचना करते हैं और उसके पतन का कारण मानते हैं। हालांकि कुछ हद तक यह सही है कि दिग्विजय नीति से पृथ्वीराज ने अपने चारों ओर दुश्मन बना लिए थे लेकिन इसी दिग्विजय के फलस्वरुप पृथ्वीराज उत्तर भारत का महत्वपूर्ण और शक्तिशाली शासक बन पाया और इतिहास में अग्रणी स्थान अर्जित कर पाया है। यदि वह दिग्विजय नीति नहीं अपनाता तो शांतिपूर्वक अजमेर जैसे छोटे से राज्य से संतुष्ट रहकर आधी

शताब्दी तक शासन कर सकता था या किसी के अधीनस्थ रहकर जीवित भले ही रहे। उसने दिग्विजय से प्राचीन भारत के गौरव को ऊंचा उठाया है। वह भी सम्राट अशोक, हर्ष, समुद्रगुप्त की भांति केंद्रीय सत्ता का निर्माण करना चाहता था, लेकिन तराइन के द्वितीय युद्ध में हार से यह कार्य नहीं हो पाया।

महोबा विजय से चंदेलों की प्रतिष्ठा को धक्का लगा तथा चौहानों की सत्ता का प्रभाव बड़ा परंतु चौहान इस विजय से स्थाई लाभ नहीं उठा सके। चंदेलों और गहड़वालों के गठबंधन के कारण पृथ्वीराज को अपनी सेना का एक भाग उनकी सीमा पर रखना पड़ा। जिससे सैनिक व्यय बढ़ा। राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से यह पृथ्वीराज की असफलता ही रही।

1178 में मोहम्मद गौरी व चालुक्यों के मध्य संघर्ष में चालुक्यों ने पृथ्वीराज से सहायता मांगी थी लेकिन मंत्री कैमार्स के कहने पर पृथ्वीराज ने सैनिक सहायता न देकर भारी भूल की। वर्ना इससे चालुक्य – चौहान गठबंधन मजबूत हो जाता। तो पृथ्वीराज को गौरी के विरुद्ध चालुक्यों की सहायता मिल जाती और तुर्कों को परास्त कर सकते थे।

चालुक्यों से संघर्ष और वैमनस्य से चौहानों को नुकसान ही हुआ था।

पृथ्वीराज की गहड़वालों से वैमनस्य भी घातक सिद्ध हुई इससे चंदेल, गहड़वालों के अधिक निकट आ गए। गढहड़वाल शासक जयचंद पृथ्वीराज से बदला लेने और उसे नीचा दिखाने का कोई अवसर नहीं चूकता था। संयोगिता से प्रेम करना तथा उसका अपहरण करना भी पृथ्वीराज को भारी पड़ा जिससे जयचंद उसका दुश्मन बन गया तथा पृथ्वीराज चौहान भोग –विलास में डूबता चला गया। जिससे उसकी सैनिक तैयारियां कमजोर हुई और उसे तराइन जैसे महत्वपूर्ण युद्ध में परास्त होना पड़ा।

पृथ्वीराज चौहान तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार कूटनीति से कार्य नहीं कर पाया। यदि वह चंदेल, चालुक्यों, गहड़वालों से मैत्री स्थापित कर तुर्कों के विरुद्ध एक सैनिक संगठन बनाता तो भारत में इस्लाम का प्रसार नहीं हो पाता। भारतीय संस्कृति को जितना नुकसान इस्लामिक शासकों ने पहुंचाया, उसे बचाया जा सकता था।

तराइन की प्रथम विजय एक गौरवपूर्ण अध्याय है, परंतु इस युद्ध में की गई भूल एक कलंकित पृष्ठ है। पृथ्वीराज ने यह कभी प्रयत्न नहीं किया कि इस विजय को एक स्थायी विजय बनाया जाए। उसने पराजित तुर्क सेवा का पीछा नहीं किया, यह उदारता, सैनिक नियमों और मुस्लिम युद्ध प्रणाली से मेल नहीं खाती। पृथ्वीराज ने उत्तर– पश्चिम की सीमा से निरंतर मुस्लिम आक्रमण हुए वहां सुरक्षा के स्थायी व्यवस्था नहीं कर पाया। ष्पृथ्वीराज ने शत्रु को परास्त कर यश कमाया परंतु उसे समूल नष्ट कर संपूर्ण भारत को नहीं बचा पाया। पृथ्वीराज में सैनिक योग्यता थी, पर कूटनीति की कमी थी वह शत्रु की चालों को नहीं समझ पाया था।

पृथ्वीराज चौहान अपने कई अनुभवी सेनाध्यक्षों को तराइन के द्वितीय युद्ध में साथ लेकर नहीं गया था। उसने तुर्क सेना को कमजोर मानकर अल्प तैयारी के ही युद्ध मैदान में आ गया था। उसके अधिकतर सैनिक पीछे ही रह गए थे। जो पड़ोसी राज्यों से सुरक्षा के लिए नियुक्त थे। वैसे पृथ्वीराज ने तराइन के प्रथम युद्ध को अंतिम युद्ध मान निश्चिंत हो गया था, जो उसकी भारी भूल थी।

पृथ्वीराज चौहान वीर, उत्साही तथा प्रतिभाशाली शासक था, उसने अल्पायु में ही अपने पडोसी राज्यों पर विजय प्राप्त कर ली थी स लेकिन अनुभव और कूटनीति की कमी के कारण वह तुर्कों के खतरे को नहीं भांप पाया और उनके विरिद्धा राजपूत राज्यों का संगठन नहीं बना पाया , जिससे अंत में उसे सब कुछ हारना पड़ा।

संदर्भ ग्रंथ–

1. राजस्थान का इतिहास – डॉ. गोपीनाथ शर्मा
2. द अर्ली चौहान डामेनेस्टीज – डॉ. दशरथ शर्मा।
3. पृथ्वीराज रासो – चंदबरदाई।
4. पृथ्वीराज विजय – जयानक।
5. हिस्ट्री ऑफ कन्नोज – डॉ आर.एस. त्रिपाठी
6. एनाल्स – कर्नल जेम्स टॉड

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 39-45
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डा० रामविलास शर्मा का हिंदी आलोचना में योगदान

प्रो0 डॉ. रश्मि कुमारी
शोध निर्देशिका एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग) ,
शीलेन्द्र कुमार
शोधार्थी,
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्धनगर

डा० रामविलास शर्मा: जीवन और व्यक्तित्व

डा० रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के प्रमुख और विचारशील मार्क्सवादी आलोचकों में सम्मिलित हैं, जिन्होंने हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना परंपरा को सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर समृद्ध किया। उनका जन्म 10 अक्टूबर 1912 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के "उँचगाँव सानी" नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम गयादीन शर्मा था, और वे परिवार में तीसरी संतान के रूप में जन्मे थे। इनके परिवार में पाँच भाई और एक बहन थीं। मात्र 14 वर्ष की आयु में इनका विवाह लखनऊ जनपद के जबरौली ग्राम निवासी कैलास देवी से हुआ। दम्पत्ति के छह संतानें (तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ) थीं। डा० शर्मा का बाल्यकाल ग्राम्य परिवेश में बीता, जहाँ उनके व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव उनके बाबा श्री लालता प्रसाद का पड़ा, जो सेना से सेवानिवृत्त थे। डा० शर्मा ने अपनी आत्मकथा *"अपनी धरती अपने लोग"* में अपने बाल्यकाल की स्मृतियों को विशेष स्नेह और संवेदना के साथ वर्णित किया है। उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार उनके बाबा अपने स्नेहमयी देखरेख में उन्हें आरंभिक शिक्षा के साथ-साथ लोककथाओं और पारंपरिक कविताओं का भी ज्ञान देते थे। यह साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्कार उनके बालमन पर गहरी छाप छोड़ गए। उनके ग्राम में उस समय कोई विद्यालय नहीं था, अतः प्रारंभिक शिक्षा का दायित्व उनके बाबा ने ही निभाया। उन्होंने गिनती, पहाड़ा, तथा हिन्दी की मूलभूत शिक्षा प्रदान की, साथ ही लोक साहित्य की मौखिक परंपरा का भी परिचय कराया। लगभग छह-सात वर्ष की आयु में डा० शर्मा को आगे की शिक्षा के लिए झाँसी भेजा गया, जहाँ उनके पिता कार्यरत थे।

झाँसी में अध्ययन के दौरान डा० शर्मा ने सरस्वती पाठशाला से आरंभिक कक्षाओं की पढ़ाई की, जहाँ वे मास्टर रुद्र नारायण के सान्निध्य में आए। रुद्र नारायण एक कुशल चित्रकार एवं राष्ट्रवादी विचारों से ओतप्रोत शिक्षक थे, जो चन्द्रशेखर आज़ाद के भी निकट मित्र थे। उनके माध्यम से डा० शर्मा के भीतर देशभक्ति और कलात्मक अभिरुचि का बीजारोपण हुआ। इसके पश्चात आर्थिक कारणों से सरस्वती पाठशाला बंद हो गई और वे मैकडॉनल्ड हाईस्कूल में स्थानांतरित हो गए।

उच्च शिक्षा हेतु डा० शर्मा ने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और 1932 में बी.ए. तथा 1934 में अंग्रेज़ी साहित्य से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात प्रोफेसर एन.के. सिद्धान्त के निर्देशन में "प्री-रैफेलाइट्स एंड कीट्स" विषय पर शोध कार्य आरंभ किया, जो 1938 में पूर्ण हुआ और 1940 में उन्हें पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। उल्लेखनीय है कि वे लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में पीएच.डी. प्राप्त करने वाले प्रथम छात्र

थे। इसी अवधि में वे लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य से भी जुड़ गए। लखनऊ प्रवास के दौरान उनकी राजनीतिक चेतना और अधिक तीव्र हुई। सन् 1932 के आसपास लखनऊ स्वतंत्रता आंदोलन का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। विश्वविद्यालय परिसर में राष्ट्रवादी वातावरण व्याप्त था, और अनेक युवा मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हो रहे थे। डा० शर्मा भी इसी प्रवृत्ति से अनुप्राणित हुए। इस काल में उन्हें कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का निकट सान्निध्य प्राप्त हुआ। साहित्यिक जगत में यह संबंध अत्यंत विशिष्ट माना जाता है। निराला के प्रति समर्पित अनेक नवयुवक लेखक-आलोचक उस समय उनके संपर्क में आए, किंतु डा० शर्मा का स्थान उन सबमें विशिष्ट था, क्योंकि वे न केवल निराला के प्रति आदरभाव रखते थे, अपितु उनकी रचनाओं के सुसंस्कृत आलोचक भी थे।

डा० शर्मा ने निराला के लिए अंग्रेज़ी साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों की जानकारी उपलब्ध कराई, विशेष रूप से टी.एस. इलियट के विचारों से उन्हें परिचित कराया। इस प्रकार यह काल केवल निराला की सृजनात्मक उर्वरता का ही नहीं, बल्कि डा० शर्मा के वैचारिक निर्माण और साहित्यिक दृष्टि के परिष्कार का भी महत्वपूर्ण समय था। इसी कालखण्ड में उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन का गहन अध्ययन आरंभ किया, जो आगे चलकर उनके साहित्यिक विश्लेषण की केंद्रीय दृष्टि बना।

डा० रामविलास शर्मा का वैचारिक विकास न केवल उनके अध्ययन और शिक्षण से जुड़ा रहा, बल्कि यह भारतीय समाज, राजनीति और संस्कृति की गहराई से की गई समझ का परिणाम था। प्रारम्भिक जीवन में प्राप्त ग्राम्य संस्कृति, पारिवारिक लोक-संस्कार, और बाद में झाँसी तथा लखनऊ जैसे राजनीतिक रूप से सचेत वातावरण ने उनके विचारों की बुनियाद रखी। बाल्यावस्था में प्राप्त लोक साहित्य के अनुभव, राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ी स्मृतियाँ और शिक्षकों का प्रेरक सान्निध्य, उनके वैचारिक विकास में निर्णायक सिद्ध हुआ।

लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययन काल के दौरान उन्हें स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों से निकटता से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। यह वह समय था जब युवावर्ग के बीच समाजवाद और साम्यवाद की अवधारणाएँ तीव्र आकर्षण का केन्द्र बन रही थीं। इसी पृष्ठभूमि में डा० शर्मा का रुझान मार्क्सवादी विचारधारा की ओर हुआ। उनके भीतर उत्पन्न यह वैचारिक प्रतिबद्धता सतही नहीं थी, अपितु गहन अध्ययन और बौद्धिक मंथन का परिणाम थी।

1938 के पश्चात उन्हें विधिवत रूप से मार्क्सवादी साहित्य और दर्शन के अध्ययन का अवसर मिला। मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के ग्रंथों के साथ-साथ यूरोपीय समाजवादी विचारकों के चिंतन को समझते हुए उन्होंने भारतीय संदर्भ में उस विचारधारा की संभावनाओं और सीमाओं का विश्लेषण करना शुरू किया। उनके लिए मार्क्सवाद मात्र एक राजनीतिक विकल्प न होकर एक सैद्धांतिक उपकरण था, जिसकी सहायता से वे भारतीय समाज, साहित्य और इतिहास का गहराई से मूल्यांकन कर सके।

डा० शर्मा के वैचारिक निर्माण में कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की भूमिका को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। निराला के साथ उनके संवाद, असहमति और आलोचनात्मक समीपता ने उन्हें साहित्य के भीतर व्याप्त जटिलताओं को देखने की दृष्टि दी। उन्होंने निराला को न केवल पढ़ा, बल्कि गहराई से समझा, और उन्हें आधुनिक हिन्दी कविता का प्रतिनिधि स्वर माना। इस सम्बन्ध में डा० शर्मा की दृष्टि अंध-भक्ति से परे आलोचनात्मक विवेक से सम्पन्न थी। वे किसी भी साहित्यकार को उनकी रचना की वैचारिक अंतर्वस्तु, सामाजिक सरोकार और भाषिक नवाचार के धरातल पर परखते थे।

डा० शर्मा का वैचारिक विकास इस दृष्टिकोण से विशिष्ट है कि उन्होंने पश्चिमी विचारधाराओं को यथावत स्वीकार नहीं किया, बल्कि उन्हें भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ के आलोक में पुनर्परिभाषित किया। उन्होंने भारतीय इतिहास और परंपरा के गहन अध्ययन के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया कि किस प्रकार भारत

का जनपदीय इतिहास, भक्ति आंदोलन, किसान संघर्ष और लोकसंस्कृति, प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ संगति रखते हैं। उन्होंने साहित्य को जीवन की गहरी अनुभूति और सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में देखा।

इस प्रकार डा० शर्मा का वैचारिक विकास बहुआयामी था—जिसमें सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण, इतिहास-बोध की चेतना, भाषिक गहराई और प्रगतिशील परिवर्तन की आकांक्षा, सभी समाहित थे। उनका यह विकास उन्हें हिन्दी साहित्य के उन दुर्लभ आलोचकों की श्रेणी में स्थापित करता है जिन्होंने विचार और कर्म, दोनों स्तरों पर साहित्यिक मूल्यांकन की नई दृष्टि प्रस्तुत की।

लेखन यात्रा और सार्वजनिक जीवन

डा० रामविलास शर्मा की साहित्यिक यात्रा का आरम्भ उन्हीं के युवावस्था के दिनों से हो गया था। उनकी पहली प्रकाशित कविता *'बसन्त स्वप्न'* नामक शीर्षक से *'विश्वामित्र'* पत्रिका में छपी, जिससे उनकी सृजनात्मक अभिरुचियों की विधिवत शुरुआत मानी जा सकती है। इसके बाद, गद्य लेखन की दिशा में उनकी पहली प्रस्तुति 1934 में *'चाँद'* पत्रिका में प्रकाशित *'निराला जी की कविता'* नामक लेख के रूप में हुई, जो हिन्दी आलोचना क्षेत्र में उनके आगमन की औपचारिक उद्घोषणा थी।

इनकी रचनात्मक पहचान का विस्तार शीघ्र ही विभिन्न पत्रिकाओं में लेखन और सम्पादन के माध्यम से हुआ। उन्होंने *'हंस'* पत्रिका के काव्य-विभाग का सम्पादन कुछ समय तक किया और साथ ही *'चाँद'*, *'माधुरी'*, *'प्रभा'* जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में निरंतर लेख और कविताएँ प्रकाशित कीं। उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध लेखक अमृतलाल नागर द्वारा सम्पादित हास्य-व्यंग्य पत्रिका *'चकल्लस'* में डा० शर्मा की कई व्यंग्यात्मक कविताएँ भी प्रकाशित हुईं, जिससे उनके लेखन की बहुआयामी प्रकृति स्पष्ट होती है।

प्रेमचन्द की मृत्यु के पश्चात हिन्दी के प्रगतिशील आंदोलन में जो सैद्धांतिक शून्यता उत्पन्न हुई थी, उसे भरने का कार्य डा० शर्मा ने अपने प्रखर लेखन और सांगठनिक सक्रियता के माध्यम से किया। उन्हें *प्रगतिशील लेखक संघ* का मंत्री नियुक्त किया गया, जो उनके ऊपर साहित्यिक विचारधारा को व्यावहारिक कार्यों से जोड़ने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी थी। यह भूमिका उन्होंने पूर्ण निष्ठा और सफलता के साथ निभाई। वे इस पद पर 1948 से लेकर 1953 तक कार्यरत रहे। इसी अवधि में वे 1943 में बंबई (अब मुम्बई) में आयोजित सम्मेलन में भाग लेने पहुँचे, जहाँ उन्होंने विधिवत रूप से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता स्वीकार की।

सन् 1943 में ही अपने गुरु प्रो० एन.के. सिद्धान्त के आग्रह पर डा० शर्मा ने *बलवंत राजपूत कॉलेज, आगरा* में अंग्रेज़ी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यभार ग्रहण किया, जहाँ उन्होंने 1971 तक अध्यापन किया। इसके बाद वे आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थापित *कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी विद्यापीठ* में निदेशक के रूप में नियुक्त हुए, जहाँ से उन्होंने 1974 में सेवानिवृत्ति ली। सेवा निवृत्ति के पश्चात वे दिल्ली में स्थायी रूप से रहने लगे और निरंतर साहित्यिक साधना में संलग्न रहे।

उनकी पत्नी का निधन 1983 में हृदयगति रुकने के कारण हुआ, जो उनके जीवन का व्यक्तिगत रूप से एक कठिन समय था। इसके बावजूद उन्होंने अपने लेखन को अविराम जारी रखा। डा० शर्मा की अधिकतर आलोचनात्मक कृतियाँ—प्रेमचन्द, भारतेन्दु, निराला, आचार्य शुक्ल और महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे हिन्दी साहित्य के स्तंभों पर लिखी गईं—आगरा प्रवास के दौरान ही पूर्ण हुईं। इसी समय उन्होंने कुछ समय तक *'समालोचना'* नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया।

उन्हें 1950 में चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ यात्रा का आमंत्रण भी मिला था, परन्तु सरकार से अनुमति न मिलने के कारण वे विदेश नहीं जा सके। इसके स्थान पर उन्होंने भारत भ्रमण का निर्णय लिया और कश्मीर से कन्याकुमारी तक विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों—जैसे शांति निकेतन, हैदराबाद, उज्जैन, वनस्थली

आदि—का दौरा किया। इस यात्रा ने उनके भीतर भारतीय साहित्यिक परंपरा और सांस्कृतिक चेतना के गहरे स्तरों को सजीव रूप से स्पर्श किया।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण और प्रमुख सिद्धान्त

डा० रामविलास शर्मा हिन्दी आलोचना में एक ऐसी विशिष्ट उपस्थिति हैं, जिन्होंने आलोचना को केवल शास्त्रीय अनुशासन के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ, इतिहासबोध और वर्गचेतना से जोड़ते हुए एक सशक्त वैचारिक उपकरण के रूप में विकसित किया। उनकी आलोचना पद्धति की मूल आधारशिला **मार्क्सवादी दर्शन** है, किन्तु वे किसी एकरेखीय वैचारिक आग्रह में नहीं बंधते। उनका विवेक प्रायः भारतीय समाज की ऐतिहासिक अवस्थिति और सांस्कृतिक संरचना के बीच संवाद स्थापित करता है।

1. साहित्य का सामाजिक संदर्भ

डा० शर्मा की मान्यता थी कि साहित्य समाज से कटकर विकसित नहीं होता। उनका विश्वास था कि किसी भी रचना की मूल्यवत्ता का निर्धारण उसकी सामाजिक उपयोगिता और यथार्थ के प्रति उसके दृष्टिकोण से होता है। वे साहित्य को मानव संघर्ष, वर्गीय असमानता और सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में देखते हैं। वे बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि हिन्दी साहित्य को पढ़ते समय उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

2. भारतीय परंपरा और ऐतिहासिकता का समन्वय

यद्यपि डा० शर्मा मार्क्सवादी आलोचना के प्रवक्ता माने जाते हैं, किन्तु उन्होंने भारतीय समाज की सांस्कृतिक जड़ों, परंपरा और ऐतिहासिक विकास को हमेशा अपने आलोचनात्मक विवेचन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। वे भारतीय दर्शन, संस्कृति और भाषाओं के गहन अध्येता थे और उनका विश्वास था कि आलोचना की पद्धति पश्चिम से ली जा सकती है, परंतु उसकी व्याख्या और प्रयोग भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही सार्थक हो सकती है।

3. भाषाविज्ञान और आलोचना का संबंध-

डा० शर्मा के आलोचनात्मक चिन्तन में भाषा का विशेष स्थान है। उन्होंने भाषाई विमर्श को साहित्यिक आलोचना के एक केंद्रीय उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया। *'भारतीय भाषा और साहित्य'*, *'नयी कविता और भाषिक संकट'* जैसी रचनाओं में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भाषाई विश्लेषण साहित्य के विचारगत विमर्श को और अधिक स्पष्ट एवं तर्कसंगत बनाता है। वे मानते थे कि भाषा समाज की चेतना को अभिव्यक्त करने का माध्यम मात्र नहीं, बल्कि उसकी रचना और दिशा तय करने वाली शक्तिशाली संरचना है।

4. साहित्य और इतिहास की अंतःक्रिया

डा० शर्मा की आलोचना में ऐतिहासिक दृष्टि का विशेष महत्व है। वे साहित्य को केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि इतिहास का सामाजिक दस्तावेज भी मानते हैं। उन्होंने *'भारतेंदु हरिश्चंद्र'*, *'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी जाति'*, *'निराला की साहित्य साधना'* जैसी रचनाओं में यह सुस्पष्ट किया कि साहित्यिक विकास को ऐतिहासिक और सामाजिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है। वे हर साहित्यकार को उसके युग के सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करते हैं।

5. जनपक्षधरता और वैचारिक प्रतिबद्धता

डा० शर्मा की आलोचना की सबसे बड़ी विशेषता उसकी *जनपक्षधरता* है। वे सृजन को उसकी जनता के साथ उसके संबंधों के आधार पर आँकते हैं। उनके अनुसार, श्रेष्ठ साहित्य वही है जो जनता की पीड़ा, आकांक्षा और संघर्ष को स्वर दे सके। उनका आलोचना-कार्य 'कलावादी आग्रह' से मुक्त, 'जनवादी दृष्टिकोण' से अनुप्राणित है।

डा० रामविलास शर्मा की प्रासंगिकता

डा० रामविलास शर्मा न केवल बीसवीं शताब्दी के एक युगान्तरकारी आलोचक थे, बल्कि वे हिन्दी साहित्य में विचारधारा, इतिहासबोध और सामाजिक यथार्थ को केंद्र में स्थापित करने वाले महापुरुष भी थे। उनका कार्यकाल जिस कालखंड में फैला, वह भारतीय इतिहास के सबसे क्रांतिकारी दौरों में से एक था — उपनिवेशवाद से मुक्ति, राष्ट्र निर्माण, नवजागरण और समाजवाद के उभार का समय। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में डा० शर्मा का चिंतन और लेखन न केवल साहित्यिक विकास का पथप्रदर्शक बना, बल्कि सामाजिक चेतना को दिशा देने वाला भी सिद्ध हुआ।

आज के सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषिक परिदृश्य में डा० रामविलास शर्मा की दृष्टि और मूल्यांकन और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। भूमंडलीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के दबावों के बीच जब साहित्य और भाषा बाज़ार के नियंत्रण में आती जा रही है, तब डा० शर्मा का यह आग्रह कि साहित्य का उद्देश्य समाज के वास्तविक जीवन से जुड़ना है — एक सशक्त प्रतिपक्ष के रूप में सामने आता है। उन्होंने बार-बार यह सिद्ध किया कि साहित्य का वास्तविक मूल्य तभी है जब वह जन-चेतना से जुड़ा हो और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में हस्तक्षेप करे।

उनकी आलोचना में केवल साहित्य नहीं, बल्कि पूरा समाजशास्त्र, इतिहास, संस्कृति और राजनीति समाहित है। यही समग्र दृष्टिकोण उन्हें अन्य आलोचकों से अलग और अग्रणी बनाता है। वे मात्र पाठ-विश्लेषण तक सीमित नहीं थे, बल्कि पाठ के सामाजिक, ऐतिहासिक और वैचारिक संदर्भों को सामने लाने का कार्य करते थे।

हिंदी आलोचना में डॉ. रामविलास शर्मा का योगदान

डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी साहित्य में एक सुदृढ़ और सिद्धांत-समर्थ आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी आलोचना दृष्टि का मूलाधार मार्क्सवादी सिद्धांत है, जिसे उन्होंने भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के अनुरूप ढालकर एक सृजनात्मक स्वरूप प्रदान किया। आलोचना में उनकी प्रमुख पद्धति ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद रही है, जो न केवल विचारधारा की स्पष्टता को रेखांकित करती है, बल्कि साहित्य को समाज-सापेक्ष दृष्टिकोण से मूल्यांकित करने का आग्रह भी करती है।

डॉ. शर्मा का आलोचना-कर्म लगभग सात दशकों तक सक्रिय रहा। 1934 में प्रकाशित उनके पहले आलोचनात्मक लेख 'निराला जी की कविता' से लेकर 2000 में प्रकाशित 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश' तक उनका लेखन हिंदी आलोचना की गहराई और विविधता को समृद्ध करता रहा है। उन्होंने साहित्य को भाषा, समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने का आग्रह किया। उनके आलोचनात्मक लेखन में संस्कृत और अंग्रेज़ी साहित्य से लेकर भाषा-विज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास और दर्शनशास्त्र तक की अंतर्दृष्टियाँ समाहित हैं।

रामविलास शर्मा का मार्क्सवाद एक जड़बद्ध विचार न होकर एक विकासशील वैचारिक प्रवृत्ति है, जिसे उन्होंने भारतीय समाज के अनुरूप व्याख्यायित किया। 'भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद' जैसे ग्रंथों में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मार्क्सवाद को स्थानीय ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संदर्भों में संशोधित किया जाना चाहिए। उन्होंने आधार-अधिरचना के पारंपरिक सिद्धांत में संशोधन करते हुए सामाजिक संरचनाओं की भूमिका को भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण माना। वे आर्थिक विश्लेषण के साथ-साथ सांस्कृतिक और सामाजिक घटकों की भूमिका पर भी विशेष बल देते हैं।

भारतेंदु, द्विवेदी, प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों पर लिखे गए उनके ग्रंथ हिंदी नवजागरण की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमियों की गहराई से पड़ताल करते हैं। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ' तथा 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' जैसे लेखों में यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

यद्यपि डॉ. शर्मा की आलोचना-कला में तीव्रता और प्रतिरोध का स्वर प्रबल है, किन्तु कभी-कभी यह उनके दृष्टिकोण को एकांगी बना देती है। उन्होंने जिन लेखकों के विचारों से असहमति जताई, उनके प्रति आलोचना में कठोरता और आक्रोश की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में व्यक्त विचारों के संदर्भ में यह आरोप प्रमुखता से लगाया गया है। फिर भी, उनकी आलोचना में वह क्षमता है, जो विचारों से असहमति रखने वालों को भी संवाद की चुनौती देती है। नामवर सिंह, मैनेजर पांडे जैसे आलोचकों ने उनके साथ आलोचनात्मक संवाद की परंपरा को आगे बढ़ाया है।

निष्कर्षत:, डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना ने हिंदी साहित्य में एक समन्वयवादी, सैद्धांतिक और यथार्थपरक आलोचना पद्धति को प्रतिष्ठित किया। उनकी आलोचना न केवल विचारों के स्तर पर मौलिक रही है, बल्कि भाषा की स्पष्टता, तर्क की शक्ति और सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण वह आलोचना का एक आदर्श प्रतिमान बन गई है। हिंदी आलोचना का समकालीन विमर्श उनके योगदान के बिना अधूरा है। डा० रामविलास शर्मा हिन्दी आलोचना के उन पुरोधाओं में हैं, जिन्होंने आलोचना को समाज के बदलाव का औजार बनाया। उनकी आलोचना तटस्थ नहीं थी, बल्कि विचार और पक्षधरता से संपन्न थी। उन्होंने हिन्दी साहित्य को उसकी ऐतिहासिक भूमिका का बोध कराया, भाषिक प्रश्नों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा और भारतीय संस्कृति को साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के धरातल पर पुनः व्याख्यायित किया। उनका समस्त लेखन एक ऐसे आलोचक की चेतना का साक्ष्य है जो अपने समय, समाज और यथार्थ से गहरे जुड़ाव के साथ कार्य करता है। आज जब साहित्य को व्यक्तिगत अनुभवों और आत्मगत शैली में सीमित किया जा रहा है, तब डा० शर्मा का लेखन हमें फिर से यह याद दिलाता है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब ही नहीं, उसका हस्तक्षेपकारी स्वर भी होना चाहिए।

इस प्रकार, डा० रामविलास शर्मा का जीवन, विचार और लेखन आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि एक वैचारिक प्रेरणा है, जिससे हिन्दी आलोचना को नई दिशा और दृष्टि मिलती रहेगी।

संदर्भ :

1. राम विलास शर्मा अपनी धरती अपने लोग, खण्ड एक किताब घर प्रकाशनए नई दिल्ली; प्रथम संस्करण, 1996, पृ०5
2. वही, पृ० 61
3. वही, पृ० 6
4. वही, पृ०- 7
5. वही पृ० 8
6. आलोचना रामविलास शर्मा- संपा० नत्थन सिंह, विभूति प्रकाशन नई दिल्ली,1984ए पृ० 31
7. रामविलास शर्मा-अपनी धरती अपने लोग, खण्ड तीन पृ० 18
8. वही पृ० 19
9. वही पृ० 1
10. वही पृ० 8
11. वही० पृ० 6

12. आलोचक रामविलास शर्मा- संपा० नत्थन सिंह, पृ० 37-38
13. रामविलास शर्मा-अपनी धरती अपने लोग, खण्ड एक, पृष्ठ 107
14. आजकल, 'सितम्बर 94 पृ० 9 पर उद्धृत
15. रामविलास शर्मा, 'प्रगति और परम्परा' किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ 48
16. 'आलोचक रामविलास शर्मा' संपा० नत्थन सिंह, पृ० 139

मोबाइल - 8826084235
ईमेल – sheelendrajpn@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 46-50
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अथर्ववेद में पर्यावरण चेतना

गिरजा शर्मा
शोधार्थी,
डॉ0 निहारिका चतुर्वेदी
शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष (संस्कृत विभाग),
एस0आर0के0 पी0जी0 कॉलेज, फिरोजाबाद

पर्यावरण चेतना का अर्थ हमारे चारों ओर के उस परिवेश से है, जो हमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इसमें वह हवा शामिल है जिसमें हम सांस लेते हैं, वह पानी जिसमें हम स्नान करते और पीते हैं, नदियाँ, जंगल और वे असंख्य जीव-जंतु जिनका जीवन पृथ्वी, वायु और जल के साथ गहराई से जुड़ा है। पर्यावरण का मतलब केवल प्राकृतिक संसाधनों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मानव समाज की संस्कृति, परंपराएँ और विभिन्न जनसमूहों की अद्भुत जीवन-शैलियाँ भी शामिल हैं।**1**

आज के समय में पृथ्वी का तापमान बढ़ना, ओजोन परत में क्षति और जैव विविधता का संकट मानव समाज के लिए गंभीर चुनौतियाँ बन गई हैं। इसी बढ़ते पर्यावरणीय खतरे को देखते हुए 1972 में स्टॉकहोम में पहला विश्व पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में प्रदूषण को रोकने और पर्यावरण के संरक्षण के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाने की सिफारिशें की गईं। भारत ने भी इस दिशा में अपनी सक्रियता दिखाई और 23 मई 1986 को 'पर्यावरण संरक्षण अधिनियम' पारित कर इसे देशभर में लागू किया।**2**

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज गंभीर रूप धारण कर चुकी है, लेकिन हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस संकट का समाधान हजारों साल पहले ही सुझा दिया था। उनका मानना था कि जैविक और अजैविक घटकों के बीच संतुलन स्थापित कर ही पर्यावरण की रक्षा संभव है। वेदों में इस संतुलन की विस्तृत व्याख्या की गई है। शुद्ध विचार, पवित्र आचरण, सत्य वाणी और सत्कर्म ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के मूलभूत सिद्धांत हैं, और पर्यावरण संरक्षण भी इन्हीं सिद्धांतों पर आधारित है।

वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति और आकाश के प्रति अपार श्रद्धा और सम्मान की शिक्षा दी गई है। हमारे ऋषियों ने न केवल पर्यावरण के प्रति चेतना जगाई, बल्कि इसके संरक्षण के लिए आस्थाओं के माध्यम से भी समाज को प्रेरित किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि धार्मिक और नैतिक आचरण से जुड़कर हम पर्यावरण के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। वैदिक निर्देशों के अनुसार यदि मनुष्य अपने जीवन में मर्यादित और संतुलित आचरण अपनाए, तो पर्यावरण असंतुलन की समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी।

अथर्ववेद में पर्यावरण के विभिन्न तत्वों के महत्व का बहुत ही सुंदर और व्यापक चित्रण किया गया है। इसके प्रथम काण्ड में *पर्जन्य* (बादल), *पृथ्वी*, और *जल* के देवताओं का विशद उल्लेख मिलता है। यहाँ जल को औषधीय गुणों से युक्त माना गया है, जो जीवन और स्वास्थ्य का स्रोत है।

इसी प्रकार, अथर्ववेद के काण्ड ३२ के एक सूक्त में *पृथ्वी* और *आकाश* के संबंधों की भी चर्चा मिलती है, जो पर्यावरणीय संतुलन को दर्शाती है।

अध्याय 14 में *रोहिणी*, *सहदेवी*, *अपामार्ग*, *मधुला* तथा *ब्रह्मजाया* जैसी महत्वपूर्ण औषधियों का उल्लेख मिलता है। ये औषधियाँ न केवल स्वास्थ्यवर्धक हैं, बल्कि पर्यावरण के जैविक संतुलन में भी सहायक हैं।

इसी प्रकार, काण्ड ८ में *पलाश*, *ग्वारपाठा*, *पीली सरसों* और *तुलसी* जैसी वनस्पतियों का भी उल्लेख है, जो उस काल के पर्यावरणीय ज्ञान को दर्शाता है।

आज के समय में जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, इलेक्ट्रॉनिक और रेडियोधर्मी प्रदूषण जैसी समस्याएँ पूरी दुनिया में व्याप्त हैं, जिनसे मानव और अन्य जीवों का जीवन संकट में पड़ गया है। अतः वैदिक शिक्षाओं के आलोक में हमें पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए।

जल मानव जीवन के लिए एक अनिवार्य तत्व है। वेदों में इसके महत्व पर बार-बार जोर दिया गया है। ऋग्वेद में तो एक पूरा सूक्त (10/75) नदियों की प्रशंसा में समर्पित है। इसमें जल को अमृत और औषधि बताकर इसके महत्व को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। इसीलिए जल को शुद्ध और स्वच्छ बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में भी जल तत्व की शुद्धता और उसकी उपयोगिता पर बल दिया गया है। जल के बिना भूमि में हरियाली और जीवन की सरसता असंभव है। इसीलिए जल का संरक्षण करना बेहद जरूरी है ताकि पृथ्वी पर हरियाली बनी रहे।

मानव जीवन एक प्रकार से विराट प्रकृति की लघु प्रतिकृति है| मानव जीवन और प्रकृति के मध्य सामंजस्य आवश्यक है| तभी वैदिक साहित्य रचियता मनीषियों ने सहस्त्र वर्ष पूर्व ही अत्यंत श्रद्धा और स्नेहपूर्ण भाव से बार-बार पृथ्वी से उसी प्रकार शक्ति, तेज और अन्न के लिए प्रार्थना की| जैसे- एक पुत्र अपनी वत्सला माता से करता है। ऋग्वेद में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सूर्य को पिता, पृथ्वी को माता और किरणों के समूह को भाई के समान सम्मानित करने की बात कही गई है। इसी प्रकार, अथर्ववेद में पृथ्वी को माता कहकर उसकी महत्ता बताई गई है-

"सा नो भूमिं विसृजतां माता पुत्राय मे पयः|
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या"|| 3

अथर्ववेद के कवियों ने संसार की हर वस्तु को लोकमंगल के लिए समर्पित करने की प्रेरणा दी है। जल के संदर्भ में कहा गया है —

"हे दिव्य जल देवता! आप हमारे लिए कल्याणकारी बनें और हमारे जीवन को पोषित करें।"

"वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु
भद्रया प्रिये धामनिधामनि।" 4

संसार की प्रत्येक वस्तु को अथर्ववेद का कवि लोकमंगल के लिये विनियोजित करना चाहता है। जल के लिये कहा गया है-

"शं नो देवीरमिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि सवन्तु नः।" 5

हर जीव-जंतु और पेड़-पौधे के साथ तालमेल बनाए रखना पर्यावरण संरक्षण के लिए बेहद जरूरी है। अगर हमें किसी बड़े विनाश से बचना है, तो प्राकृतिक संतुलन को कभी भी बिगाड़ने का प्रयास नहीं करना चाहिए। नदी का उदाहरण लें—जब तक वह दोनों किनारों के बीच संतुलन बनाए रखती है, तब तक उसका प्रवाह शांत और नियमित बना रहता है। लेकिन जैसे ही उसमें कोई बाधा आती है, वह भंवर बनाकर अपने किनारों को

तोड़ने लगती है और तटबंध को कमजोर कर देती है। इसके परिणामस्वरूप जलस्तर बढ़ जाता है और बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में भी नदियों के प्रवाह को लेकर यह कहा गया है कि वे दिन-रात बिना किसी अवरोध के बहती रहें—

"यस्यामापः परिचराः समानी रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।" 6

"जिस भूमि पर जल प्रवाहित होता है, वहां दिन और रात निरंतर, बिना रुके बहते रहना चाहिए।"

समस्त जीव-जंतुओं का मूल आधार और उनका आश्रय स्थल पृथ्वी है। इसीलिए वेदों में पृथ्वी को माता के समान पूजनीय माना गया है। भूमि औषधियों, वनस्पतियों, फसलों और बहुमूल्य खनिजों को उत्पन्न करने का स्रोत है। अतः इसका संरक्षण हर हाल में करना चाहिए।

अथर्ववेद में उल्लेख किया गया है कि यदि भूमि के किसी भाग को खोदा जाए तो उसे तत्काल भर देना चाहिए ताकि उसका संतुलन बना रहे। पृथ्वी के हृदय या संवेदनशील भाग को कभी भी नुकसान न पहुँचाने की सलाह दी गई है—

"यत् ते भूमि विखनापि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
गा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।" 7

यजुर्वेद में भी भूमि के अनावश्यक दोहन से बचने का निर्देश दिया गया है—

"हे पृथ्वी, तुझे नष्ट न करूँ, तुझे कोई हानि न पहुँचाऊँ।"

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के योगदान को वेदों और प्राचीन ग्रंथों में अत्यंत महत्व दिया गया है। महर्षियों ने वृक्षों को न केवल प्रकृति का अंग माना, बल्कि उसे जीवनदायी भी बताया। मत्स्य पुराण में वृक्षों के महत्व को इस प्रकार बताया गया है—दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र, और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष का महत्व होता है।

शुद्ध वायु जीवन की नींव है। वायु को "विश्व का चिकित्सक" कहा गया है और यह कामना की गई है कि संसार भर में स्वच्छ वायु प्रवाहित हो। वायु को अशुद्धि से बचाने के लिए वैदिक युग में यज्ञ का विशेष महत्व था। यज्ञाग्नि में जो सूक्ष्म अशुद्धियों को नष्ट करने की शक्ति है, वह अन्य किसी साधन में नहीं मिलती। वेदों में यज्ञ को पृथ्वी और आकाश दोनों को शुद्ध करने वाला बताया गया है तथा इसके अनुष्ठान को प्रोत्साहित किया गया है।
बारहवें काण्ड में *पृथ्वी* की एक सुंदर स्तुति की गई है, जिसमें पृथ्वी के महत्व और उसके पोषणकारी स्वरूप की प्रशंसा की गई है:

"यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्मान्न कृष्टव्यः सम्बभूवुः।
यस्यामिदम् जिन्वति प्राणादेजत सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।" 8

अर्थात जिस धरती पर समुद्र और नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जहाँ अन्न पैदा होता है, वही धरती हमारे लिए सुख और प्रचुरता का आधार बने।

इसी सूक्त में *पृथ्वी* को कई सुंदर नामों से संबोधित किया गया है—**विश्वम्भरा**, **वसुधानी**, **हिरण्यवक्षा**, **जगतोनिवेशनी**—ये सभी शब्द धरती की पर्यावरणीय समृद्धि और जीवनदायिनी भूमिका को दर्शाते हैं।
दसवें काण्ड में वृक्षों के महत्व पर बल देते हुए उनका संरक्षण करने का संदेश दिया गया है:

"अविर्नाम देवतर्तेनास्तेपरिवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षाः हरिता हरितस्रजः।।" 9

अर्थात जिस देवी (पृथ्वी) ने अपने तेज से हमें घेर रखा है, उसके स्वरूप में ये हरे-भरे वृक्ष भी विद्यमान हैं, जो अपनी हरितिमा से सुशोभित हैं।

इस प्रकार अथर्ववेद में प्रकृति के विभिन्न घटकों—जल, भूमि, वृक्ष, औषधियों और वनस्पतियों—की महत्ता का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए उनके संरक्षण और संवर्धन का संदेश दिया गया है। यह न केवल पर्यावरणीय चेतना का उदाहरण है, बल्कि सतत् विकास की भारतीय परंपरा को भी उजागर करता है।

इन विचारों से स्पष्ट होता है कि जैविक और अजैविक दोनों ही घटकों की सुरक्षा और संतुलन के प्रति हमारी चेतना का मूल स्रोत वेद ही हैं। वेदों में लोककल्याण की भावना और विश्व-मंगल की प्रबल कामना दिखाई देती है। प्रकृति को उन्होंने एक कोमल, सौम्य गौ भी माना है, और एक प्रचंड सिंहनी भी। यदि हम प्रकृति के साथ सामंजस्य और सहयोग का व्यवहार करेंगे तो वह अनंत काल तक हमें अपने पोषण के अमृत से सींचती रहेगी। परंतु यदि हमने उसका शोषण और अत्यधिक दोहन किया तो वह हमें नष्ट करने से भी पीछे नहीं हटेगी।

इसीलिए, ऋषियों ने वायु, जल, औषधियों और वनस्पतियों जैसे पर्यावरणीय घटकों के प्रति जागरूक रहने और उनकी शुद्धता बनाए रखने का संदेश दिया है ताकि हम पर्यावरण-संरक्षण के अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

आज के समय में पर्यावरण प्रदूषण एक वैश्विक समस्या बन चुका है। हालांकि यह समस्या नई लग सकती है, लेकिन इसका अस्तित्व सृष्टि के आरंभ से ही है। महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त ग्रंथ में वस्तु और भाव के छह विकारों का उल्लेख किया है, जिसमें 'अस्ति' (सत्ता) विशेष रूप से विचारणीय है। उनका मानना था कि जब तक कोई वस्तु अपने भीतर के गुणों को बनाए रखने में सक्षम होती है, तभी तक वह अपनी असली सत्ता में रहती है। जब उस पर बाहरी हस्तक्षेप बढ़ जाता है, तो उसकी मूल धारणा शक्ति क्षीण हो जाती है—यही प्रदूषण है।

इसी प्रकार 'विष' शब्द का भी उपयोग शरीर और पर्यावरण के संदर्भ में प्रदूषण के अर्थ में किया गया है। ऋग्वेद के पहले मंडल के 191वें सूक्त में 'विष' शब्द कई बार आया है। ऋषि अगस्त्य ने विष के प्रभाव से बचने के लिए इस सूक्त का उपयोग किया।

इसी प्रकार अथर्ववेद में भी हर प्रकार के प्रदूषण से मुक्ति की प्रार्थना की गई है। मनुष्य जो अन्न खाता है, जो दूध और जल पीता है—चाहे नया हो या पुराना—वह सब उसके लिए विषरहित हो, ऐसा वरदान माँगा गया है।

इसके अलावा 'पाप' शब्द का प्रयोग भी प्रदूषण के अर्थ में अथर्ववेद में किया गया है। यजुर्वेद में कई मंत्रों में अग्नि, वायु और सूर्य से प्रार्थना की गई है कि वे दिन-रात, जागते और सोते हुए हमें पाप और प्रदूषण से मुक्त करें।

वेदों में प्रदूषण के दुष्प्रभावों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। प्रदूषण के कारण अत्यधिक तापमान बढ़ जाने से सूर्य की किरणें तीव्र हो जाती हैं और वे पेड़-पौधों, नदियों और अन्य जीव-जगत को प्रभावित करके तीनों लोकों को झुलसाने लगती हैं। यहाँ हमें 'ग्लोबल वार्मिंग' का एक बेहतरीन उदाहरण देखने को मिलता है।

ऋग्वेद में प्रदूषण को दूर करने के लिए विभिन्न उपायों की कामना की गई है। आचार्य सायण ने इस संदर्भ में "विषादिहरणे" (विषादि को हरने हेतु) का विनियोग लिखकर ही ऋचाओं की व्याख्या की है। अथर्ववेद में भी चेतावनी दी गई है कि जो शुभ वचनों या कल्याणकारी वस्तुओं को दूषित करते हैं, वे स्वयं ही दुःख-सागर में डूब जाते हैं।

ब्रह्मपुराण में शार्दूल मुनि ने प्रकृति प्रलय की संभावनाओं का संकेत देते हुए पर्यावरण-संरक्षण का संदेश दिया है। उन्होंने भौतिक पर्यावरण के पांच प्रमुख अंग बताए हैं—(1) पृथ्वी मंडल, (2) जल मंडल, (3) तेज मंडल, (4) वायु मंडल और (5) आकाश मंडल।

सचमुच, इसमें कोई संदेह नहीं कि वैदिक साहित्य ने पर्यावरण से जुड़े हर पहलू को गहराई और जीवंतता से प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषियों ने भारतीय समाज को पर्यावरण के प्रति जागरूक रहने और उसका सम्मान करने की शिक्षा दी थी।

उपसंहार

निःसंदेह, भारतीय संस्कृति के हर पहलू में पर्यावरण को विशेष महत्व दिया गया है। लेकिन औद्योगिकीकरण, बाजारवाद और पश्चिमी पूँजीवादी सोच ने हमारे इस मूल स्वरूप को ढक दिया। भारत भी धीरे-धीरे इसी पूंजीवादी दृष्टिकोण की ओर बढ़ा और प्रकृति को एक कठोर तत्व मानकर उसे नियंत्रित करने की कोशिश करने लगा।

फिर भी, भारत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण-संबंधी समझौतों का समर्थन करके अपनी सजगता का परिचय दिया है। यह भी सच है कि जीवन के लिए प्रकृति का दोहन जरूरी है, लेकिन उतना ही करना चाहिए जितनी हमारी आवश्यकता हो। जरूरत से ज्यादा दोहन करने पर पर्यावरण असंतुलन पैदा हो सकता है। इसलिए आज के समय में 'विकास' के बजाय 'सतत् विकास' की दिशा में कदम बढ़ाने की जरूरत है। मानव को चाहिए कि वह पर्यावरण के साथ सहयोगात्मक, समन्वयात्मक और सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए।

अतः भारत अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परंपराओं से प्रेरणा लेकर पर्यावरण के इस जटिल मुद्दे पर पूरी दुनिया के लिए मार्गदर्शक बन सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. पर्यावरण भारत की भूमिका,पृ0 4, कमलनाथ (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार, 1995)
2. संस्कृति एवं पर्यावरण, पृ0 152, हरिश्चन्द्र व्यास, 1993
3. अथर्ववेद 12/01/26
4. अथर्ववेद 12/01/52
5. अथर्ववेद 01/06/01
6. अथर्ववेद 12/01/9
7. अथर्ववेद 12/01/35
8. अथर्ववेद 12/01/03
9. अथर्ववेद 10/08/39

संपर्क सूत्र : 8826231741 girjaupadhyay1@gmail.com

पता – B–103 पंचशील बालक इन्टर कॉलेज, सैक्टर - 91, नौएडा गौतमबुद्ध नगर- 201304

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 51-53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत पाकिस्तान के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संबंध

विनोद कुमार
शोधार्थी, नामांकन क्रमांकः Phd/224002P0020 पंजीयन क्रमांकः SS 230403,
डॉ. एस.के. सिद्धार्थ
शोध निर्देशक,
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर–471001 (मध्यप्रदेश)

भारत–पाक के संबंध हमेशा से ही राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक संबंध जटिल और तनावपूर्ण रहे हैं। ऐतिहासिक रूप से, दोनों देश के संबंध भारत के विभाजन से जुड़े हुए हैं।

दोनों पड़ोसी देश हैं जो परमाणु शक्ति सम्पन्न हैं और अपनी भौगोलिक स्थिति, इतिहास और संस्कृति को साझा करते हैं। भारत का निर्माण लोकतांत्रिक पंथनिरपेक्ष एवं बहुलवादी राज्य के रूप में हुआ, वहीं पाकिस्तान का निर्माण धार्मिक आधार पर हुआ। जिनमें आपसी विभिन्न पहलुओं से प्रभावित है, जिनमें ऐतिहासिक मतभेद, राजनीतिक मुद्दे, और आतंकवाद शामिल है।

सामाजिक संबंधः

साझा संस्कृति और भाषाः

साझा संस्कृति, भाषा और सामाजिक विरासत में कई समानताएं हैं, जो आपसी सहयोग को बढ़ावा दे सकते हैं जैसे– भारत–पाकिस्तान के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान के प्रयास किए गए हैं, कतारपुर कॉरिडोर समझौता, जो तीर्थयात्रियों के लिए एक–दूसरे के धार्मिक स्थलों तक पहुँच की सुविधा प्रदान करता है।

सामाजिक संगठनः

भारत और पाकिस्तान दोनों दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) और राष्ट्रमंडल देशों के सदस्य है, जो कुछ संबंधों को बढ़ावा देते हैं, लेकिन राजनीतिक तनाव के कारण इनकी प्रभावी भूमिका रही है।

भाषाः

दोनों देशों में हिंदी और उर्दू अधिकारिक भाषाओं के रूप में बोली जाती है। ये भाषाएं एक–दूसरे से मिलती–जुलती है और दोनों देशों में बोली जाती है। दोनों देशों में, जैसे कि पंजाब और पश्चिमी भारत, संस्कृति और भाषा में काफी समानता है।

पाकिस्तान का सांस्कृतिक प्रतीकः

अर्धचंद्र और तारा, जो प्रगति और ज्ञान का प्रतीक है बीच में जो चार प्रमुख फसलों को दर्शाता है, ढाल के चारों और पुष्पमाला जो सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करती है, नीचे की और राष्ट्रीय आदर्श वाक्य लिखा हैः एकता, विश्वास, अनुशासन, संस्कृतिक परम्पराएं शामिल हैं– एक पुरूष प्रधान समाजः इस्लामी मूल्य और परंपराएं जो राष्ट्रीय भाषा के रूप में उर्दू के साथ–साथ विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं मौजूद हैं।

पाकिस्तान की सांस्कृतिक विरासत में पुरातात्विक स्थल, स्तूप, किले, धार्मिक स्थल, मकबरे, इमारतें, आवास, स्मारक और पूजा स्थल शामिल है। पाकिस्तान में यह स्तरीकरण इसकी वर्ग संरचना में स्पष्ट है

जिसमें उद्योगपतियों, राजनेताओं और जमींदारों से युक्त एक धनी उच्च वर्ग शामिल है, पेशेवर और कुशल श्रमिकों का एक बढ़ता हुआ मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग जिसमें ग्रामीण किसान, कारखाना श्रमिक और अनौपचारिक मजदूर शामिल हैं। भारत और पाकिस्तान कई मायनों में सामाजिक संबंध, समान संस्कृति विरासत, भाषा, भोजन, सामाजिक मूल्य है विभाजन से पहले एक संस्कृति के हिस्सा थे।

सेवा की भावनाः

दोनों देशों में परिवार और समुदाय महत्वपूर्ण हैं, सामाजिक संबंध मजबूत है और परिवार की भावना पर जोर दिया जाता है।

सामाजिक कार्यः

दोनों देशों में सामाजिक सेवा की भावना है। सामाजिक कार्य लोग अक्सर एक–दूसरे की मदद करते हैं और सामाजिक रूप में जिम्मेदार होते हैं लेकिन कुछ अन्तर भी है– दोनों देशों में सामाजिक मुद्दे जैसे– गरीबी, असमानता और महिलाओं के अधिकार से जूझ रहे हैं, लेकिन सामाजिक मुद्दे अलग–अलग तरीके से है। दोनों देशों में सामाजिक सुधार की आवश्यकता है और लोगों को बेहतर जीवन स्तर प्रदान करने के लिए प्रयास करने चाहिए।

राजनीतिः

पाकिस्तान में सैन्य शासन है, जबकि भारत में एक लोकतांत्रिक सरकार कायम है।

राजनीति सम्बन्धः

भारत और पाकिस्तान के बीच राजनीति सम्बन्ध हमेशा तनावपूर्ण रहे हैं। कश्मीर विवाद और सीमा पार आतंकवाद जैसे मुद्दे दोनों के बीच तनाव का कारण बने हुए हैं। विभाजन के बाद से ही गहरी दुश्मनी रही है, दोनों देशों के बीच गहरी मतभेदों को दर्शाती है। कश्मीर को लेकर मुख्य विवादों में से एक रहा है, जिसके कारण कई युद्ध और संघर्ष हुए हैं।

वर्तमान स्थितिः

दोंनों देशों के बीच संबंध अभी भी तनावपूर्ण रहे हैं, छिटपुट बातचीत एवं सामान्यीकरण के प्रयास होते रहे हैं लेकिन कश्मीर विवाद और सीमा पार आतंकवाद जैसे मुद्दे संबंधों पर भारी है। हाल ही में, पहलगाव में हुए आतंकी हमले के बाद से भारत ने पाकिस्तान के साथ संबंधों को कम करने के लिए कदम उठाए हैं, जैसे की सिंधु जल संधि को निलंबित करना है।

आर्थिक सम्बन्धः

भारत और पाकिस्तान के बीच औपचारिक व्यापार कम है, लेकिन अनौपचारिक व्यापार काफी अधिक है। भारत का पाकिस्तान को निर्यात लगभग 1.2 बिलियन डॉलर था जबकि आयात केवल 3 मिलियन डॉलर था।

आर्थिक निर्भरताः

दोनों देश विभिन्न प्रकार के आर्थिक सहयोग में भी लगे हुए हैं, जैसे की बिजली और रेलवे परियोजनाओं में।

आर्थिक संकटः

पाकिस्तान में हाल के वर्षों में आर्थिक संकट गहरा गया है, जिसमें मुद्रास्फीति, ऋण और विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी शामिल है।

राजनीति सहयोगः

दोनों देशों के बीच कुछ राजनीति सहयोग भी हुआ है, जैसे की सिंधु जल संधि और करतारपुर कॉरिडोर समझौता।

सीमा पार आतंकवादः

पाकिस्तान विभाजन के बाद से ही आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देता आया है जो– 1947 में कश्मीर पर, 1965 में की और 1971 में तो अपना दो हिस्सा करवा के ही माना है, 1980 के दशक में हिन्दुस्तान के पंजाब प्रान्त में आतंकवाद ज्यादा बढ़ावा दिया गया, 1999 में कारगिल युद्ध, 2008 में बम्बई ताज होटल पर आतंकवादी हमला जो जो कि कितने कि जानें गई व घायल हुए। कभी कश्मीर में उरी

हमला, पंजाब में पठानकोट पर हमला, वर्तमान में कश्मीर के पहलगाव में धर्म के नाम पर 26 व्यक्तियों के निर्मम हत्या।

भू–राजनीति और क्षेत्रीय स्थितियां:

दोनों देशों के बीच भू–राजनीतिक और क्षेत्रीय स्थितियाँ भी संबंधों को प्रभावित करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन:

दोनों देशों को विभिन्न देशों से अलग–अलग समर्थन मिला, जिससे तनाव बढ़ा।

निष्कर्ष:

भारत और पाकिस्तान के बीच राजनीतिक संबंध काफी जटिल और तनावपूर्ण रहा है, जिसमें ऐतिहासिक विवाद, सीमा पार आतंकवाद और जल बंटवारे जैसे मुद्दे शामिल है। सामाजिक–आर्थिक संबंध जटिल और चुनौतिपूर्ण है, लेकिन इसमें सुधार की संभावना है। लेकिन इसमें सुधार की संभावना है दोनों देशों को आपस में सहयोग करने और व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कई अवसर है, और विवादों और चुनौतियों को हल करने के लिए बातचीत और विश्वास–निर्माण की आवश्यकता है। करतारपुर कॉरिडोर सकारात्मक सहयोग की भावना सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप में अच्छा संकेत की और इशारा करता है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. भारत–पाक राजनीतिक एवं सामाजिक सम्बन्धों का इतिहास ; लेखक–संजय पवार ; प्रकाशकः वंदना पब्लिकेशन , दूसरी मंजिल, जे.एम.डी. हाऊस 4–बी, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली– 110002 ISBN: 978-93-83386-29-1
2. भारत–पाक संम्बन्ध विवादों के आईने में ; लेखक–डॉ कृष्णानंद शुक्ल ; प्रकाशकः मोहित पब्लिकेशन्स 4675 / 21 गणपति भवन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002 ISBN: 978-81-7445-637-3
3. भारत–पाक और अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद ; लेखक–प्रो. मामनचन्द खंडेला ; प्रकाशकःप्रेमचंद बाकलीवास आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रब्यिूटर्स 807, व्यास बिल्डिंग, चौड़ा रास्ता जयपुर– 302003 राजस्थान ISBN: 978-81-7910-293-0
4. भारत और पाकिस्तान लाल शीत युद्ध की दास्तान ; लेखक–डॉ कृष्णानन्द शुक्ल ; प्रकाशकः मोहित पब्लिकेशन्स 4675 / 21 गणपति भवन, अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली– 110002 ISBN: 978-81-7445-638-0
5. भारत–पाक सम्बन्ध एक पुनर्वेक्षण ; लेखक–पुष्पेन्द्र कुमार मिश्र ; प्रकाशकः वी.के.तनेजा क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी 28, शॉपिंग सैंटर, कर्मपुरा, नई दिल्ली– 110015 ISBN: 978-81-7054-633-7

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 54-56
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शराब की समस्या पर कुमाउॅनी कवियों का चिंतन

गरिमा पंत त्रिपाठी

शोधार्थी हिंदी– विभाग,
एम0बी0पी0जी0 कालेज हल्द्वानी उत्तराखण्ड (नैनीताल)

किसी भी समाज के निर्माण में वहॉ रहने वाले लोगों का वातावरण, जीवन शैली, आहार–विहार का योगदान होता है। जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र की छवि निर्धारित होती है। प्रत्येक क्षेत्र की सभ्यता संस्कृति के योग से ही देश के स्वरूप का निर्धारण होता है। अतः देश के सभी नागरिकों के चरित्र एवं कार्यों से ही देश का समग्र विकास होता है।आज हम अपने आस–पास देखते है, कि अधिकांश व्यक्ति शराब का सेवन कर समाज का वातावरण दूषित कर रहे हैं, जिससे घर परिवार पास–पड़ोस में रहन वाले लोग भी परेशान रहते हैं। आज कुमाऊँ क्षेत्र में शराब का सेवन बढ़ता जा रहा है जो हमारे क्षेत्र की शान में कलंक है।

समाज में शराब का सेवन बढ़ने के अनेक कारण हैं, किन्तु जनता में अज्ञानता इस सीमा तक व्याप्त है कि लोग इनके कुप्रभावों से परिचित नहीं होते हैं, यदि होते भी हैं तो इस विषय में नहीं सोचते हैं। इसका सेवन करने वाले लोगों द्वारा तर्क दिया जाता है कि, इसे पीने से व्यक्ति अपनी परेशानी भूल जाता हैं। वहीं कुछ लोग आनन्द लेने के लिए इसका सेवन करते हैं, इस पदार्थ में अलकोहल की मात्रा होती है जिसका ज्यादा सेवन करने से नशा चढ़ता है व इसकी तासीर गर्म होती है। यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इसका उल्लेख शराब की बोतल में भी वैधानिक चेतावनी के रूप में किया जाता है, किन्तु लोग क्षणिक सुख के लिए इस बात को भूल जाते हैं। शराब एक ऐसा जहर है,जो धीरे–धीरे शरीर को नष्ट कर देता है। जिसका सेवन करने से व्यक्ति अपने होश खो देता है, लोगों के साथ अभद्र व्यवहार करता है उसे अपनी मान मर्यादा का ध्यान नही रहता, ऐसी स्थिति में व्यक्ति का नैतिक पतन होता है। समाज में उसे कोई सम्मान नही मिलता है, और अनुचित आचरण व्यवहार के कारण लोगों द्वारा अपमानित होता है। किन्तु नशे के अभ्यस्त व्यक्ति को इन बातों से कोई प्रभाव नही होता है कुमाउॅनी कवि दिलीप सिंह बोरा का कथन है शराब के कुप्रभाव से व्यक्ति की दशा दयनीय एवं वीभत्स हो जाती है।

''य देखो य आजि शराब पी बेर ऐगो,
लुकुड़ फाड़ि फाड़ि घिंगाड़ बड्या ल्यागो
हाथ खुटन हाड़ि ख्वौर फौड़ि ल्यागो
य देखों य आजि शराब पी बेर ऐगो''

शराब का सेवन करने वाला व्यक्ति माता–पिता के साथ अभद्र व्यवहार करता है, पत्नी व बच्चों के साथ मारपीट करता है, जिससे बच्चों की परवरिश ,शिक्षा, बचपन, संघर्षपूर्ण एवं अभाव में व्यतीत होता है।ऐसी परिस्थिति में कुछ बच्चे स्वयं भी नशे का सेवन करने लगते है, व कुछ बच्चे घरों से काम की तलाश में संघर्ष करते हैं। दोनों ही परिस्थतियों में बच्चों का भविष्य बर्बाद हो जाता है। इस स्थति का वर्णन करते हुए कवि का कथन है।–

''तौ शराब लै घर परिवार
कर हालो सब बरबाद
चौपट है गे नानौक पढ़ाइ
खेति बाडि कारबार सबै बजि गो ''

वर्तमान समय में उत्तराखण्ड में शराब की लत से देवभूमि के नाम से विख्यात राज्य शराब माफियाओं के चुंगल में आ गया है। जिसमें उच्चवर्गीय लोगों से लेकर निम्न गरीब जनता के मध्य इस व्यसन के आदी लोग विद्यमान हैं, ये लोग अपने आसपास के वातावरण को दूषित करते है। इनके कारण इनके साथ रहने वाले लोगों में भय का माहौल बना रहता है। शराबी व्यक्ति को देखते ही लोग भागने लगते है, शराब की बदबू एवं शराबी की अनैतिक क्रियाओं से घृणा, व डर का वातावरण बन जाता है।समाज में फैलते शराब एवं शराबी का वर्णन करते हुए कवि केसर सिंह बिष्ट का कथन है–

''देबभूमि में दारू के आई
पड़ि गयो बजर
दिन छिपिया हाइ पहाड़ा!
दारूलै हैजाँ तर
डर शराबी डर, शराबियों की डर।''

शराब की आदत से लोग अपना जीवन तबाह कर रहे है। आज घरों में होने में होने वाले माँगलिक कार्यों में भी शराब का प्रयोग किया जा रहा है। जिन घरों के लोग इसका सेवन नही करते या शराबियों के पिलाने से मना करते हैं, लोग उनको घरों में जाने, शुभ कार्यों में सहयोग करने में रूचि नही लेते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी कार्यालयों में भी इसका प्रयोग होता है, जनता अपने छोटे, बड़े सरकारी कार्यों के लिए इसका प्रयोग करने में संकोच नही करती इस स्थिति का वर्णन करते हुए कवि पूरन चन्द्र काण्डपाल का कथन है

''गौं में ब्या काज लै बाड़ मुश्किलैल निभैं रई
क्वे मदद निकरन भै बैर धूं देखैं रई,
शराब देते ही सब काम उतकै है जांरौ
ऐजी तारों में बिजुली नलों में पाणी ऐ जारौं
पकूणीं पकै जां खांणी जमि बेर खै जारौं
नि पेउना त सब काम ठप्प है जारौं ''

शराबी व्यक्ति इस दुर्व्यसन में लिप्त रहते हुए धन दौलत, स्वास्थय, परिवार की सुख समृद्धि ,मानसिक शान्ति अल्प आयु में ही गवा देता है। वह अपने परिवार की जिम्मेदारी का निर्वहन करने में असर्मथ हो जाता है। समाज में कई ऐसे परिवार होते हैं, जो इस समस्या से पीड़ित होते हैं। इन परिवारों के लोगों में जिसमें मुख्यतः पुरूष वर्ग इस व्यसन को अपनालेते है जिससे घर की महिलायें बच्चे अपनी मूल भूत आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान आदि से वंचित रहते हैं । समाज के लोगों को इस व्यसन से दूर रहते हुए अपने धन, स्वास्थ्य परिवार की रक्षा के लिए प्रेरित करते हुए कवि केशर सिंह बिष्ट का कथन दृष्टव्य है।

'' शराबी का सब काम धरियै रे जानी
बिमारी लागिंछो जब फिर पछतानी,
लटका शराबी धन इज्जत गवाँनी
शराबी का गिचाँ कणी कुकूर चाटनी
दारू भजाओ दारू बज्याओ ''

इस शराब के सेवन से घर परिवार, समाज ,एवं संपूर्ण राष्ट्र की प्रगति में बाधा आती है अतः इस त्याग कर अपने आस पास उचित वातावरण बना कर शिक्षित एवं आदर्शवान नागरिक तैयार करने का संदेश देते हुए कुमाउॅनी कवि दिलिप बोरा का कथन है।

''शराब छोड़ी घर परिवार समाओं
नानौंकैं शिक्षित कर अगिल बढ़ाओं''

साहित्यकारों का प्रयास है कि समाज में व्याप्त कुरितीयों को दूर करके आदर्श स्वरूप का निर्माण किया जा सके अतः इसी प्रयास में इन्होंने समाज में व्याप्त इस ज्वलंत समस्या पर काव्य द्वारा चिंतन कर समाज के लोगों को शिक्षित करने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची –

1. बोरा, डॉ0 दिलीप सिंह, बखताक हाल, प्रकाश प्रकाशन चौधानपाटा, अल्मोड़ा,पृ0 73
2. बोरा, डॉ0 दिलीप सिंह, बखताक हाल, प्रकाश प्रकाशन चौघानपाटा, अल्मोंड़ा ,पृ073
3. बिष्ट केशर सिंह, पहाड़कि चिट्ठि, उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ077
4. काण्डपाल पूरनचन्द्र, कवड़ घंटी,घूस शराब,मुक्सायार, पृ015 ; प्रकाशन रंक बन्धु साहित्य अकादमी,937 सेक्टर,21 सी फरीदाबाद
5. बिष्ट केशर सिंह, पहाड़कि चिट्ठि , उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ078
6. बोरा,डॉ0 दिलीप सिंह, बखताक हाल, प्रकाश प्रकाशन चौघानपाटा, अल्मोंड़ा ,पृष्ठ73

ईमेल garimapant14902gmail.com
मो0न0: 9456572421, मो0नं0: 7248800825

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 57-65
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

കേരളത്തിലെ ഗോത്രസ്ത്രീകളുടെ സ്വത്വപരിണാമം

ഡോ. സൗമ്യ ബേബി
അസോസിയേറ്റ് പ്രൊഫസർ മലയാള വിഭാഗം
സെന്റ് തെരേസാസ് കോളേജ് എറണാകുളം – 682011

സംഗ്രഹം
നൂറ്റാണ്ടുകളായി കേരളത്തിലെ കാടുകളിലും വനാതിർത്തിയിലെ ഗോത്രഗ്രാമങ്ങളിലുമായി കഴിയുന്ന ആദിവാസി സ്ത്രീകളുടെ ജീവിതം പുരുഷന്മാരെ അപേക്ഷിച്ച് കൂടുതൽ അപരിഷ്കൃതം ആയിരുന്നു. സാമൂഹിക ജീവിതത്തിന്റെ പല ഘടകങ്ങളിലും അവർക്കിടയിലെ പുരുഷന്മാർക്കു ലഭിച്ചിരുന്നത്രയും അവകാശവും സ്വാതന്ത്ര്യവും സ്ത്രീകൾക്കു ഉണ്ടായിരുന്നില്ല. എന്നാൽ, ഇരുപതാം നൂറ്റാണ്ടിന്റെ രണ്ടാംപകുതി ആയതോടു കൂടി ചിലതെല്ലാം മാറി തുടങ്ങി. ഇതിനുവേണ്ടി ഓരോ ആദിവാസി സമൂഹത്തിലും ബോധപൂർവ്വവും അല്ലാത്തതുമായ ദീർഘകാല ശ്രമങ്ങൾ നടന്നിരുന്നു. ചില ഗോത്രവിഭാഗങ്ങൾക്കിടയിൽ ഒന്നോ രണ്ടോ ദശകങ്ങൾക്കു മുൻപു വരെയും, പുരോഗമനാത്മക സമൂഹം വിയോജിപ്പു പ്രകടിപ്പിക്കുന്ന പല ജീവിതാംശങ്ങളും നിലനിന്നിരുന്നതായി കാണാം. അപൂർവ്വം ചില വിഭാഗങ്ങളി ലാകട്ടെ ഇപ്പോഴും ഭാഗികമായെങ്കിലും നിലനിൽക്കുകയും ചെയ്യുന്നു. ഇത്തരമൊരു പശ്ചാത്തലത്തിൽ കേരളത്തിലെ ആദിവാസി സ്ത്രീകളുടെ സ്വത്വപരിണാമത്തിന്റെ വർത്തമാന കാലങ്ങൾ വിലയിരുത്തുക എന്നതാണ് പ്രബന്ധത്തിന്റെ ലക്ഷ്യം.

താക്കോൽ വാക്കുകൾ
ആദിവാസികൾ - സ്ത്രീസ്വത്വം - ഗോത്രസംസ്കാരം - നവോത്ഥാനം - തീണ്ടാരിപ്പുര - പേറ്റുപുര - സ്വത്വപരിണാമം - സ്വയംസത്ത - വ്യക്തിവികാസം - സാമൂഹികാവസ്ഥ

ഒരു കാലഘട്ടം വരെയും കേരളത്തിലെ ഏതു സാമുദായിക ശ്രേണിയിൽപ്പെട്ട സ്ത്രീയാണെങ്കിലും അവരുടെ അവകാശങ്ങൾക്കു പരിധി കൽപ്പിക്കപ്പെട്ടിരുന്നു. അക്കാലത്തെ മേൽജാതിയായി പരിഗണിക്കപ്പെട്ടിരുന്ന നമ്പൂതിരിമാർക്കിടയിലെ സ്ത്രീകൾ പോലും അടുക്കളകളിൽ തളച്ചിടപ്പെട്ടു. ജാതിവിവേചനവും അയിത്തവും[1] അസമത്വവും സങ്കീർണ്ണമായിരുന്ന നാളുകളിൽ അവർണർ എന്നും അധഃസ്ഥിതർ എന്നും വിശേഷിപ്പിക്കപ്പെട്ടവർ ദുരിതപൂർണമായ ജീവിതമാണ് നയിച്ചത്. ആധുനിക വിദ്യാഭ്യാസം പ്രചാരത്തിലാവുകയും, നിരവധി പേരിൽ നവോത്ഥാന വീക്ഷണം രൂപപ്പെടുകയും, പൊതുസമൂഹത്തിന്റെ പ്രതിരോധവും പ്രതിഷേധവും കരുത്തു

പ്രാപിക്കുകയും ചെയ്തതോടെ സാമൂഹിക പരിഷ്കരണം ശക്തിപ്പെട്ടു. ഇത്തരം സംഘടിതമായ ചെറുത്തുനിൽപ്പുകളെ അടിച്ചമർത്താൻ മേൽജാതിക്കാർ നിരന്തര ശ്രമം നടത്തി. പലപ്പോഴും അവരുടെ നീക്കങ്ങൾ വിജയകരമായിരുന്നുവെന്നു സാമൂഹിക ചരിത്രത്തിന്റെ നാൾവഴികളിൽ കാണാം. അങ്ങനെ വന്നപ്പോഴെല്ലാം അധഃസ്ഥിതരുടെ ജീവിതാവസ്ഥ കൂടുതൽ മോശമായി. എങ്കിലും അന്തിമ മേധാവിത്തം നവോത്ഥാന മുന്നേറ്റത്തിനുതന്നെ ആയിരുന്നു. യാഥാസ്ഥിതികരുടെ നീക്ക ങ്ങൾക്കുള്ള പിന്തുണ ദുർബ്ബലമാവുകയും കൂടി ചെയ്തതോടെ രാജാക്കന്മാർക്കും സവർണരുടെ സമ്പ്രദായങ്ങളെ തള്ളിപ്പറയേണ്ടി വന്നു. ജനാധിപത്യ ഭരണമായപ്പോൾ പരിഷ്കരണ പ്രവർത്ത നങ്ങൾ കൂടുതൽ ഊർജ്ജിതമായി. അങ്ങനെ, അവർണർക്കു പ്രവേശനം ഇല്ലാതിരുന്ന ഇടങ്ങളും പാതകളും ദേവ-ദേവതാ സങ്കേതങ്ങളുമെല്ലാം പൊതുസമൂഹത്തിനു മുന്നിൽ തുറക്കപ്പെട്ടു.

മുഖ്യധാരാസമൂഹം പുരോഗമനാത്മകതയ്ക്കു വിധേയമായി കൊണ്ടിരുന്നപ്പോഴും കാടിനുള്ളിലെ ആദിവാസികളുടെ ജീവിതാ വസ്ഥ പരമ്പരാഗത ഗോത്രനിയമങ്ങളുടെ കാർക്കശ്യത്താൽ കെട്ടുപിണഞ്ഞു കിടക്കുകയായിരുന്നു. അയിത്തവും തൊട്ടുകൂടാ യ്മയുമെല്ലാം അവിടെയും നിലനിന്നു. കുറിച്യരെ ഉദാ ഹരണമായി എടുക്കാം. 'മലനമ്പൂതിരിമാർ' എന്നും വിശേഷി പ്പിക്കപ്പെടുന്ന കുറിച്യർ, ബ്രാഹ്മണർ ഒഴികെയുള്ള മുഴുവൻ ജനവിഭാഗങ്ങളുമായും അയിത്തം പുലർത്തി.[2] കാട്ടുനായ്ക്ക രെയും പണിയരെയും പോലെയുള്ള മറ്റു ആദിവാസി സമൂഹ ങ്ങളുമായി ഇടപെടാതിരിക്കാൻ അവർ പ്രത്യേകം ശ്രദ്ധിച്ചു. അന്യജാതിക്കാരുടെ വാസകേന്ദ്രങ്ങളിൽ പോവുകയോ, സ്വന്തം താമസസ്ഥലത്തേക്കു അവരെ ക്ഷണിക്കുകയോ ചെയ്തില്ല. ഇപ്പോഴും, കുറിച്യരുടെ ജാതിബോധവും അയിത്ത മനോ ഭാവവുമൊന്നും പൂർണമായി അവസാനിച്ചിട്ടില്ലെന്നും പറയാം. ഇതേരീതിയിൽ പല ആചാര-വിശ്വാസ പാരമ്പര്യങ്ങളും കേരളത്തിന്റെ ഗോത്ര സംസ്കാരത്തിൽ ഇന്നും പ്രകടമാണ്. സ്വാഭാവികമായും ആദിവാസി സ്ത്രീകളുടെ സ്വയംസത്തയെയും ഇതു അധികമായി ബാധിക്കുന്നുണ്ട്. ഇത്തരം പാർശ്വവത്കരണം ചില സമൂഹ ങ്ങളിലെ സ്ത്രീകൾക്കെങ്കിലും ഇപ്പോഴും അനുഭവിക്കേണ്ടി വരു ന്നതിന്റെ കാരണവും മറ്റൊന്നല്ല.

ഗോത്രസംസ്കാരവും സ്ത്രീകളും

അടിയൻ, അരണാടൻ, എരവാലൻ, മലപ്പുലയൻ, ഇരുളർ, കാടർ, കാണിക്കാർ, കാട്ടുനായ്ക്കൻ, കൊച്ചുവേലൻ, കൊറഗർ, കുടിയ മേലേക്കുടി, കുറിച്യൻ, കുറുമൻ, കുറുമ്പർ, മഹാമലസർ, മലയരയർ, മലമ്പണ്ടാരം, മലവേടൻ, മലക്കുറവൻ, മലസർ, മലയൻ, മന്നാൻ, മറാട്ടി, മുതുവാൻ (മുഡുഗൻ), പളിയൻ, പണിയൻ, ഉള്ളാടൻ, ഊരാളി, മലവേട്ടുവൻ, തേൻകുറുമൻ, തച്ചനാടൻ മൂപ്പൻ, ചോലനായ്ക്കൻ, മാവിലൻ, കരിമ്പാലൻ, വേട്ടക്കുറുമൻ, മലപ്പണിക്കർ എന്നിവയാണ് കേരളത്തിലെ ആദിവാസി വിഭാഗ ങ്ങൾ.[3] ഈ ഗോത്രസമൂഹങ്ങൾ സംസ്ഥാനത്തിന്റെ എല്ലാ ഭാഗ ങ്ങളിലും കാണപ്പെടുന്നില്ല. രണ്ടും മൂന്നും ജില്ലകളിൽ മാത്രമെ ഓരോ വിഭാഗത്തിന്റെയും സാന്നിധ്യമുള്ളൂ. ചില സമൂഹങ്ങൾ ആണെങ്കിൽ ഓരോ ജില്ലകളിൽ മാത്രവും. ഏറ്റവും കൂടുതൽ ഗോത്രവർഗ്ഗങ്ങൾ അധിവസിക്കുന്നത് വയനാട്, ഇടുക്കി, പാലക്കാട് ജില്ലകളിലാണ്. 2011-ലെ സെൻസസ് റിപ്പോർട്ട് അനുസരിച്ച് കേരളത്തിൽ ആകെ 4,84,839 ആദിവാസികൾ ഉള്ളതായി കാണാം. ഇതിൽ 2,38,203 പേർ പുരുഷന്മാരും 2,46,636 പേർ സ്ത്രീകളുമാണ്.[4] ജില്ലാടിസ്ഥാനത്തിലുള്ള എണ്ണം നോക്കിയാൽ ഒന്നര ലക്ഷത്തി ലധികം ആദിവാസികൾ ജീവിക്കുന്ന വയനാട് ഒന്നാംസ്ഥാനത്തും അമ്പത്താറായിരത്തോളം ഗോത്രവർഗക്കാരുള്ള ഇടുക്കി

രണ്ടാം സ്ഥാനത്തും നിൽക്കുന്നു. ഏറ്റവും വലിയ വിഭാഗമായ പണിയരുടെ അംഗസംഖ്യ 88,450-ഉം രണ്ടാംസ്ഥാനത്തുള്ള കുറിച്യരുടേത് 35,171-ഉം ആണ്.

മിക്ക ആദിവാസി വിഭാഗങ്ങളിലും പുരുഷ മേധാവിത്വമുള്ള ഭരണ സംവിധാന-സംസ്ക്കാരമാണ് അനുവർത്തിക്കുന്നതെന്നു മനസിലാക്കാം. കാടു വെട്ടിത്തെളിച്ചു കൃഷിയിറക്കുമ്പോഴും വയലിൽ പണിയെടുക്കുമ്പോഴും സ്ത്രീകളുടെ സാന്നിധ്യം സജീവമായി ഉണ്ടാവും. അടുക്കളയുടെ ഭരണവും നിയന്ത്രണവും സ്ത്രീകൾക്കു ആയിരിക്കുമെങ്കിലും വിഭവശേഖരണത്തിൽ പുരുഷ ന്മാരുടെ ഇടപെടലും ഉണ്ടാകാറുണ്ട്. ഭാരപ്പെട്ട ജോലികളിൽ ഏറെയും ചെയ്യുന്നത് പുരുഷന്മാരാണ്. മണ്ണാരുക്കൽ, തേനെടു ക്കൽ, നെല്ലിക്കയുടെ വിളവെടുപ്പ്, കാട്ടുകിഴങ്ങുകളും ഈന്ത ങ്ങയും പോലെയുള്ള മറ്റു ഭക്ഷ്യവിഭവങ്ങൾ സംഭരിക്കൽ തുട ങ്ങിയവ ഇതിൽ ഉൾപ്പെടും. അതേസമയം കാട്ടുപുഴ കളിൽനിന്നു ചൂണ്ടയിട്ടും കൂരിക്കുടുക്ക വെച്ചും മീൻപിടിക്കുന്നത് സ്ത്രീകളും പുരുഷന്മാരും ഒരുമിച്ചാണ്. കറികൾക്ക് ആവശ്യമായ തകരയും മണിത്തക്കാളിയും കാട്ടുപാവയ്ക്കയും ശേഖരിക്കാൻ മുന്നി ട്ടിറങ്ങുക പെൺസംഘങ്ങൾ തന്നെയായിരിക്കും. ഈ രീതിയിൽ നോക്കുമ്പോൾ സ്ത്രീകൾക്കു ഒരു പരിധിക്കപ്പുറം സ്ഥാനമാനമോ പരിഗണനയോ ലഭ്യമാകാതിരുന്ന സാമൂഹിക സംവിധാനമാണ് ആദിവാസി സംസ്കാരത്തിൽ നിലനിന്നിരുന്നത്. ഓരോ ഗോത്ര ത്തിലും മൂപ്പന്റെ ഭാര്യയ്ക്കു മാത്രം മറ്റു സ്ത്രീകളെ അപേക്ഷിച്ചു കൂടുതൽ പരിഗണന ലഭിച്ചിരുന്നു. ഇരുള സമൂഹത്തിൽ മൃതദേഹങ്ങൾ അടക്കം ചെയ്യുമ്പോൾ കർമ്മം ചെയ്യാൻ രണ്ടു സ്ത്രീകളും നിയോഗിക്കപ്പെട്ടിരുന്നു എന്നതാണ് മറ്റൊരു അപ വാദം. ഇതൊഴിവാക്കിയാൽ, ഭക്ഷണം പാകംചെയ്യും പുറം ജോലികളിൽ പുരുഷന്മാരെ സഹായിച്ചും ജീവിതം നയിക്കുന്നവർ ആയിരുന്നു ഗോത്രസ്ത്രീകൾ. അതേസമയം വയസറിയിക്കൽ, പ്രസവം തുടങ്ങിയ സ്ത്രീപ്രകൃതമായ വിഷയങ്ങളിൽ അവരെ കൂടുതൽ ഒറ്റപ്പെടുത്തുകയും ക്ലേശിത രാക്കുകയും ചെയ്യുന്ന പരമ്പരാഗത നിയമങ്ങളും തനതാ ചാരങ്ങളുമാണ് എല്ലാ ആദിവാസി വിഭാഗങ്ങളിലും നില നിന്നിരുന്നത്. ഇക്കാലത്ത് തീണ്ടാരിപ്പുരകളിലും പേറ്റുപുര കളിലുമായി അവർക്കു ജീവിക്കേണ്ടി വന്നു. ഗോത്രസ്ത്രീകളുടെ സ്വതാവസ്ഥയെ അടയാള പ്പെടുത്തുന്ന ഒന്നായിരുന്നു ഇത്തരം പുരകൾ.

തീണ്ടാരി-പേറ്റു പുരകളിലെ സ്ത്രീജീവിതം

വയസറിയിക്കുന്ന നാളുകളിൽ പെൺകുട്ടികളും പിന്നീട് ആർത്തവ ദിനങ്ങളിൽ മറ്റു സ്ത്രീകളും കുലാചാരപ്രകാരം കഴിഞ്ഞിരുന്ന ഇടങ്ങളാണ് തീണ്ടാരിപ്പുരകൾ. പൊതുവെ ഇങ്ങനെ പറയാമെങ്കിലും എല്ലാ സമൂഹങ്ങളും ഒരേ പേരിൽ ആയിരുന്നില്ല ഇവയെ വ്യവഹരിച്ചിരുന്നത്. മുതുവാന്മാർക്കിടയിൽ തിണ്ണവീട് എന്നും മലയരയർക്കിടയിൽ ഈറ്റുപുര എന്നും ഉള്ളാടർക്കിടയിൽ പള്ളമാടം അഥവാ കുപ്പമാടം എന്നും മന്നാന്മാർക്കിടയിൽ പള്ളപ്പുര എന്നും ഊരാളികൾക്കിടയിൽ പാട്ടുപുര എന്നും പളി യർക്കിടയിൽ മുട്ടുവീട് എന്നും മലപ്പുലയർക്കിടയിൽ ചപ്രാംതല എന്നും ഇത്തരം കുടിലുകൾ അറിയപ്പെട്ടു.[5] ചോലനായ്ക്കർ ഇവയെ വിളിച്ചിരുന്നത് ഗുഡിമന എന്നും കാട്ടുനായ്ക്കർ വിളിച്ചിരുന്നത് ഗുഡറ എന്നുമാണ്. കുറിച്യർക്ക് ഇത് ഈറ്റു പ്പുരയും മലവേടർക്ക് മറപ്പുരയും കാടർക്ക് വാലായ്മപ്പുരയും കുറുമ്പർക്ക് ചപ്പയും മലസർക്ക് കുടിശും ഇരുളർക്ക് പച്ച ക്കുടിശ്ശിയും ആയിരുന്നു. മലമ്പണ്ടാരം വിഭാഗത്തിൽപ്പെട്ടവർ തീണ്ടാമാടം എന്നാണ് ഇത്തരം കുടിലുകളെ വിളിച്ചിരുന്നത്. ഒന്നിലധികം സമൂഹങ്ങൾക്കിടയിൽ ഒരേപേരിൽ ഇവ അറിയ പ്പെടാറുണ്ട്. മറ്റു പല വിഭാഗങ്ങളും തീണ്ടാപ്പുര എന്നും തീണ്ടാരിപ്പുര എന്നുമെല്ലാം ഇവയെ വിശേഷിപ്പിക്കുന്നു.

പുതിയ ഗ്രാമം രൂപപ്പെടുത്തുമ്പോൾ മിക്ക ആദിവാസി വിഭാഗങ്ങളും അവിടെയൊരു പൊതുവീടും നിർമ്മിക്കും. ആദ്യകാലങ്ങളിൽ ഓരോ വീടിനോടു ചേർന്നും ഇത്തരം ചെറുകുടിലുകൾ ഉണ്ടായിരുന്നു. പിന്നീട്, ഒരു ഗ്രാമത്തിലുള്ള മുഴുവൻ സ്ത്രീകൾക്കുമായി ഒരു പൊതുവീട് എന്ന രീതിയായി. അവിടെയുള്ള ഏതു സ്ത്രീ ഋതുവായാലും ഇവിടെ കഴിയണ മെന്നാണ് ചട്ടം. ഇക്കാലത്തു ഗ്രാമത്തിലുള്ള മറ്റാരും ഇവരെ കാണുകയോ സംസാരിക്കുകയോ ചെയ്യാൻ പാടില്ല. അതു കൊണ്ടാണു മാറ്റി പാർപ്പിക്കുന്നത്. ഇവിടെ കഴിയേണ്ട ദിവസങ്ങളുടെ എണ്ണത്തിന്റെ കാര്യത്തിൽ വിവിധ ഗോത്രങ്ങൾ വ്യത്യസ്ത സ്വഭാവം പുലർത്തുന്നു. ഋതുവാകുന്നവർ ഏഴുദിവസം തീണ്ടാരിപ്പുരകളിൽ കഴിയുക എന്നതാണ് കൂടുതൽ സമൂഹങ്ങളും അനുവർത്തിച്ചിട്ടുള്ള രീതിയെങ്കിലും മൂന്നാം ദിവസവും അഞ്ചാം ദിവസവും സ്ത്രീകളെ വീടുകളിലേക്കു തിരികെ വരവേൽക്കുന്ന വിഭാഗങ്ങളുണ്ട്. ആർത്തവകാലം അശുദ്ധമാണെന്ന ചിന്താഗതി ആയിരുന്നിരിക്കാം ഇത്തരത്തിൽ സ്ത്രീകളെ അകറ്റിനിർത്താൻ ഗോത്ര പാരമ്പര്യത്തെ പ്രേരിപ്പിച്ചത്.[6] മാറ്റി നിർത്തപ്പെടുന്ന സ്ത്രീ കൾക്കു ആവശ്യമായ ഭക്ഷണം ഓരോരുത്തരുടെയും വീടു കളിൽനിന്നും തീണ്ടാരി പ്പുരയുടെ പുറത്തു എത്തിച്ചു നൽകും. അതേ സമയം ഏതാനും സമൂഹങ്ങളിൽ ഋതുവാകുന്നവർ ഗ്രാമ ത്തിലെ പൊതുപുരയിൽ താമസിക്കുന്നതിനു പകരം വീടിനുള്ളിലെ പ്രത്യേക മുറിയിൽ കഴിയുകയാണു ചെയ്യുന്നത്. തീണ്ടാരി പ്പുരയിലായാലും വീടിനുള്ളിലെ മുറിയിലായാലും ഇവർ കഴി യുന്നിടത്തേക്കു പുരുഷന്മാർക്കു ഒരുതരത്തിലുള്ള പ്രവേശനവും ഉണ്ടായിരുന്നില്ല.

കാലം മാറുകയും ആദിവാസി സമൂഹങ്ങളിലെ പുതു തലമുറക്കാർ വിദ്യാഭ്യാസത്തിൽ ആകൃഷ്ടരാവുകയും അവർക്കി ടയിൽ നവീന ചിന്താഗതി രൂപപ്പെടാൻ ആരംഭിക്കുകയും ചെയ്ത തോടെ പല ഗോത്രവർഗ്ഗ ഗ്രാമങ്ങളിൽ നിന്നും തീണ്ടാരിപ്പുരകൾ അപ്രത്യക്ഷമായി. ഇതു ഒന്നോ രണ്ടോ വർഷങ്ങൾകൊണ്ടു സംഭവിച്ച മാറ്റം ആയിരുന്നില്ല. തലമുറ കളിലൂടെ ഘട്ടം ഘട്ടമായി സംഭവിച്ച പരിവർത്തനമായിരുന്നു. ഇക്കാര്യത്തിൽ പരമ്പരാഗത മായ വംശീയാ ചാരത്തെ നിരാകരിക്കുക എന്നത് എളുപ്പമായിരു ന്നില്ലെങ്കിലും, സംഭവിച്ച മാറ്റം ഗോത്രസ്ത്രീകളുടെ സ്വത്വ പരിണാമം കൂടുതൽ ഗുണാത്മക മാകാൻ സഹായിച്ചു. അപ്പോഴും, ചില വർഗ്ഗങ്ങളിലും ഗ്രാമങ്ങളിലും ഇന്നും തീണ്ടാരിപ്പുരകൾ നിലനിൽക്കുന്നുണ്ട്. മുതുവാന്മാർക്കിടയിലെ തിണ്ണവീടുകൾ ഇതിനു ഉദാഹരണമാണ്. ഇടുക്കി ജില്ലയിലെ ഇടമലക്കുടി, കാന്തല്ലൂർ, മറയൂർ, വട്ടവട, അടിമാലി പഞ്ചായത്തുകളിലും എറണാകുളം ജില്ലയിലെ കുട്ടമ്പുഴ പഞ്ചായത്തിലുമായാണ് ഇത്തരം വാസകേന്ദ്രങ്ങളിൽ അധികവും. തിണ്ണവീടുകൾ നിർമ്മി ക്കുന്നതിനായി വിവിധ വകുപ്പുകളുടെ സാമ്പത്തിക സഹായവും ലഭിക്കാറുണ്ട്. പലപ്പോഴും പൊതുവീടുകളിൽ ഒരേ ദിവസം ഒന്നിലധികം സ്ത്രീകളുണ്ടാവും. അതേസമയം വീടുകളുടെ എണ്ണം കുറഞ്ഞ ഗ്രാമങ്ങളാണെങ്കിൽ ആരെങ്കിലുമൊക്കെ തനിച്ചാകുന്ന സന്ദർഭങ്ങളും കുറവല്ല. ഇങ്ങനെയുള്ളവർ അനുഭവിക്കേണ്ടി വരുന്ന മാനസിക സമ്മർദ്ദം വലുതാണ്. തിണ്ണവീടുകളിലേക്കു അരികുവത്കരിക്കപ്പെടുന്ന സ്ത്രീകളിൽ പലർക്കും ഈ സമ്പ്രദായത്തോട് പൊതുവെ യോജിപ്പില്ലെങ്കിലും സംഘടിതമായി പ്രതിരോധിക്കാൻ കഴിയാറില്ല. അതുകൊണ്ടുതന്നെ, ആർത്തവ കാലം നീട്ടിവെക്കാൻ സഹായകമാകുന്ന അലോപ്പതി മരുന്നുകൾ വാങ്ങി അവർ സ്വന്തം പ്രശ്നം പരിഹരിക്കുന്നു. എന്നാൽ, അശാസ്ത്രീയമായ മരുന്നുകളുടെ ഉപയോഗം സ്ത്രീകളുടെ പ്രത്യുത്പാദന ശേഷിയെ പ്രതികൂലമായി ബാധിക്കുന്നുവെന്ന വാദങ്ങളും ഗൗരവമായി എടുക്കേണ്ടതുണ്ട്. ഇതുമൂലം മുതു വാന്മാരുടെ സങ്കേതങ്ങളിൽ കുട്ടികളുടെ എണ്ണം വലിയ തോതിൽ കുറയുന്നു. മികച്ച ജീവിതനിലവാരം ആഗ്രഹിക്കുന്ന

ഗോത്ര ങ്ങൾക്കിടയിലെ സ്ത്രീകൾ മുൻപേ തന്നെ കൈവരിച്ച മാറ്റത്തിന്റെ ചില ഘട്ടങ്ങളെയാണ് മുതുവാൻ വിഭാഗത്തിലുള്ളവർ ഇപ്പോൾ അഭിമുഖീകരി ക്കുന്നതെന്നു പറയാം.

മുൻപെല്ലാം ബഹുഭൂരിപക്ഷം ഗോത്രങ്ങൾക്കിടയിലും സ്ത്രീകളുടെ പ്രസവം നടന്നിരുന്ന പേറ്റുപുരകളും ഇതുതന്നെ ആയിരുന്നു. അന്നൊന്നും പ്രസവത്തിനായി ആശുപത്രിയിൽ പോകാറുണ്ടായിരുന്നില്ല. പകരം പേറ്റുപുരകളെ ആശ്രയിക്കും. പ്രസവത്തിനു മുൻപും ശേഷവുമായി ആഴ്ചകളും ചിലപ്പോൾ മാസങ്ങളും ഇവിടെ കഴിയേണ്ടി വരുന്നു. സഹായത്തിനു ഒരു സ്ത്രീ മാത്രമെ ഉണ്ടാവുകയുള്ളൂ. പ്രസവമെടുക്കുന്നതും അവർ തന്നെ. പ്രസവം അടുത്തെത്തുന്നതിനും മുൻപേ ഗർഭിണിയെ പേറ്റുപുരയിലേക്കു മാറ്റും. അതിനുശേഷം ഭർത്താവിനും ബന്ധു ക്കൾക്കു മൊന്നും ഇവിടേക്കു വരാൻ കഴിയില്ല. പ്രസവ ശേഷം അമ്മയും കുഞ്ഞും ഇവിടെ കഴിയേണ്ട ദിവസങ്ങളുടെ എണ്ണം എല്ലാ വിഭാഗങ്ങളിലും ഒരുപോലെയല്ല. പഴയ കാലത്ത്, ഉള്ളാടർക്കിടയിലെ അമ്മയും കുഞ്ഞും മൂന്നു മാസത്തോളം പള്ളമാടത്തിൽ കഴിയണമായിരുന്നു. ഇതിൽ ആദ്യത്തെ പതിനഞ്ചു ദിവസം കഴിയുമ്പോൾ സഹായത്തിനെത്തിയ സ്ത്രീ പള്ളമാട ത്തിൽനിന്നും തിരികെ പോകും. തുടർന്നു അമ്മയും കുഞ്ഞും ഒറ്റയ്ക്കാണ്. തന്റെയും കുഞ്ഞിന്റെയും കാര്യ ങ്ങളെല്ലാം നോക്കേണ്ടതും ഭക്ഷണം പാകം ചെയ്യേണ്ടതു മെല്ലാം അവർ തന്നെ. മലമ്പണ്ടാര സമൂഹത്തിലാണെങ്കിൽ അമ്മയും കുഞ്ഞും ഏഴു മാസം വരെ പ്രത്യേക കുടിലിലാണ് താമസിക്കുന്നത്. മലയർക്കി ടയിൽ ഈ കാലയളവ് ഒരു മാസമായിരുന്നു. മഹാമലസരിൽ പ്രസവശേഷം ഒരാഴ്ച കഴിഞ്ഞാൽ അമ്മയ്ക്കും കുഞ്ഞിനും സ്വന്തം വീട്ടിലേക്കു മടങ്ങാം.

ചില വിഭാഗങ്ങളിൽ ഗ്രാമത്തിലെ പേറ്റുപുരകളിലേക്കു മാറി താമസിക്കുന്നതിനു പകരം വീട്ടിൽ തന്നെ അതിനുള്ള ക്രമീകരണം ഒരുക്കുകയാണു ചെയ്തിരുന്നത്. എന്നാൽ, സാമ്പത്തികശേഷി ഇല്ലാത്ത ജീവിതാന്തരീക്ഷം ആയതിനാൽ ഒറ്റമുറിയും അടുക്കളയും മാത്രമുള്ളതായിരുന്നു മിക്കവാറും കുടിലുകൾ. ഈ സാഹചര്യത്തിൽ പ്രസവകാലം ആയാൽ ുടിലിനോടു ചേർന്നു ചെറിയൊരു ചായ്പുണ്ടാക്കി[7] ഗർഭിണിയെ അവിടേക്കു മാറ്റും. അപ്പോഴും സഹായത്തിനുള്ള സ്ത്രീയല്ലാതെ മറ്റാരും അങ്ങോട്ടു കയറാൻ പാടില്ല. ഇരുളർക്കിടയിൽ ഭർത്താവിന്റെ കുടുംബാംഗങ്ങൾക്കും അത്യാവശ്യ സന്ദർഭങ്ങളിൽ അവിടേക്കു പോകാമായിരുന്നു. അതേസമയം, ഏതു രീതിയിൽ പേറ്റുപുര തയ്യാറാക്കിയാലും അതിനുള്ളിൽ പ്രവേശിപ്പിക്കപ്പെടുന്ന ഗർഭിണി ക്കു മറ്റുള്ളവരെ സന്ദർശിക്കാൻ അനുവാദമില്ല. ഒരുതരം സാമൂഹി കമായ ഒറ്റപ്പെടുത്തലായി ഇതിനെ വ്യാഖ്യാനിച്ചാലും തെറ്റില്ല. പ്രസവം എന്നത് സ്ത്രീയെ മാത്രം ബാധിക്കുന്ന കാര്യമാണെന്നോ അവരുടെ മാത്രം ഉത്തരവാദിത്വമാണെന്നോ പുരുഷാധിപത്യ ഗോത്രസമൂഹം കരുതി. ആർത്തവ കാലത്തിന്റെ കാര്യത്തിൽ എന്നതുപോലെ പ്രസവശേഷമുള്ള നാളുകളിലും സ്ത്രീകൾക്കു അശുദ്ധിയുണ്ടെന്നായിരുന്നു പരമ്പരാഗത വിശ്വാസം. പ്രസവിച്ച സ്ത്രീ മറ്റുള്ളവരെയും അവർ ഉപയോഗിക്കുന്ന വസ്തുക്കളെയും സ്പർശിച്ചാൽ അയിത്തമാകും എന്നുകരുതുന്ന ആദിവാസി വിഭാഗങ്ങളുമുണ്ട്. മലയർക്കിടയിൽ ഒരു മാസം വരെയും മലപ്പുലയർക്കിടയിൽ മൂന്നു മാസം വരെയും ഈ രീതിയിൽ സ്ത്രീകൾക്കു അയിത്തമുണ്ടായിരുന്നു. മാത്രവുമല്ല, അമ്മ യുടെയും ഗർഭാവസ്ഥ യിലുള്ള കുഞ്ഞിന്റെയും രക്ഷയ്ക്കായി വംശീയാ ചാര പ്രകാരമുള്ള മന്ത്രവാദങ്ങൾക്കും സ്ത്രീകൾ വിധേയരായി. ചില ഗോത്രങ്ങളിൽ ഏഴാം മാസം മുതൽ ആരംഭിക്കുന്ന ഇത്തരം കർമ്മങ്ങൾക്കു സ്വകാര്യതയും ഉണ്ടായിരുന്നില്ല. വീട്ടുമുറ്റത്തു വിരിക്കുന്ന പായയിലോ പനമ്പിലോ

ഗർഭിണിയെ ഇരുത്തിയാണ് കർമ്മങ്ങൾ നടത്തുന്നത്. ചിലപ്പോഴെങ്കിലും പ്രസവശേഷവും ഇത്തരം കർമ്മങ്ങൾ തുടരും.

ആധുനിക വൈദ്യശാസ്ത്രം ഗർഭിണികൾക്കു പ്രത്യേക പരിചരണവും പരിരക്ഷയും നിഷ്കർഷിച്ചു തുടങ്ങിയപ്പോഴും, ജീവിതസംബന്ധിയായ ഏതു വിഷയത്തിലും തനതാചാരങ്ങൾ പിന്തുടർന്നുവന്നിരുന്ന ആദിവാസി ഗ്രാമങ്ങളിലെ സ്ഥിതി തികച്ചും വ്യത്യസ്തമായിരുന്നു. ഇതിന്റെ അനാരോഗ്യ വശങ്ങൾ ഏറ്റവുമധികം നേരിട്ടത് സ്ത്രീകളാണ്. തീണ്ടാരിപ്പുരകളിലും പേറ്റുപുരകളിലുമായി അവർക്കു വലിയ തോതിൽ മാനസിക സമ്മർദ്ദവും ഒറ്റപ്പെടലും അനുഭവിക്കേണ്ടി വന്നു. ഇതു അവരുടെ സ്വയംസത്തയെയും നിലനിൽപ്പിനെയും ബാധിച്ചുവെന്നതിലും തർക്കമില്ല. ഇത്തരം ജീവിതസാഹചര്യങ്ങളെ അതിജീവിക്കുക എന്നത് ഗോത്ര സ്ത്രീകളുടെ സ്വത്വപരിണാമത്തിന്റെ നിർണായക ഘട്ടം ആയിരുന്നു. ഒരുപക്ഷേ അവർ പോലും അറിയാതിരുന്ന യാഥാർത്ഥ്യം. എന്തായാലും സ്വാതന്ത്ര്യാനന്തര കാലഘട്ടത്തിൽ ഇതിനു വലിയ മാറ്റം സംഭവിച്ചു. ഹൃസ്വകാലത്തേക്കു ആണെങ്കിലും ആർത്തവപ്പുരയിലും പ്രസവ ക്കുടിലിലുമായി അരികു വത്കരിക്കപ്പെടുന്ന സ്ത്രീകളുടെ മാനിസികവും ശാരീരിക വുമായ അവസ്ഥകൾ ആൺകോയ്മാ സമൂഹത്തിനു ബോധ്യ പ്പെടുകയോ, പരമ്പരാഗതമായ ഗോത്രാചാര ങ്ങളുടെയും വിശ്വാസ ങ്ങളുടെയും കെട്ടുറപ്പു ശിഥിലമാവുകയോ ചെയ്തതിനാലാവണം ആദിവാസി ഗ്രാമങ്ങളും പരിവർത്തന ത്തിനു വിധേയമായത്. ആരോഗ്യ വകുപ്പ് പ്രവർത്തകരുടെ ഉപദേശങ്ങളും പട്ടികജാതി പട്ടികവർഗ്ഗ വികസന വകുപ്പിന്റെയും മറ്റു സന്നദ്ധസംഘടനാ പ്രവർത്തകരുടെയുമെല്ലാം ഇടപെടലുകളും ഇതിനു സഹായ കമായി. പൊതു വിദ്യാഭ്യാസത്തിന്റെ വൈജ്ഞാ നിക തലങ്ങളും തുറവിയും കാടിനുള്ളിലെ ഗ്രാമങ്ങളിൽ സൃഷ്ടിച്ച സ്വാധീനവും ചെറുതല്ല. ഇതിന്റെയെല്ലാം ഫലമായി ആദിവാസി കളുടെ വാസസ്ഥലത്തു നിന്നും പേറ്റുപുരകൾ അപ്ര ത്യക്ഷമായി. പ്രസവ ത്തിനായി അവർ ഇപ്പോൾ കാടിനുപുറത്തുള്ള സർക്കാർ ആശുപത്രികളെ ആശ്രയിക്കുന്നു. ഇതിലൂടെ ആദിവാസി സ്ത്രീകൾ ആർജ്ജിച്ചെടുത്ത വ്യക്തിവികാസവും വളരെ വലുതാണ്.

വർത്തമാനകാല ഗോത്രസംസ്കാരത്തിന്റെ പശ്ചാത്തല ത്തിൽ വിലയിരുത്തുമ്പോൾ സ്വാതന്ത്ര്യപ്രാപ്തിക്കും മുൻപു ണ്ടായിരുന്ന സാമൂഹികാവസ്ഥയല്ല ഇപ്പോഴത്തെ ആദിവാസി സ്ത്രീകളുടെ ജീവിതപരിസരമെന്നു കാണാം. പഠിക്കാനും മികച്ച ജീവിതനിലവാരം നേടിയെടുക്കാനും ആഗ്രഹിച്ചാൽ പോലും അന്നൊന്നും അതിനുള്ള അവസരമുണ്ടായിരുന്നില്ല. ആദിവാസി കളെ പുറന്തള്ളപ്പെട്ട ജനതയായി പൊതുവെ കണക്കാക്കിയിരുന്ന കാലമാണ്. എന്നാൽ ഇപ്പോൾ അവരുടെ സ്വത്വപരിണാമത്തിനും ആത്മാഭിമാന വളർച്ചയ്ക്കും ആവശ്യമായ എല്ലാ ചുറ്റുപാടു കളുമുണ്ട്. കാടിനുള്ളിലെ പ്രാഥമിക പഠനത്തിനുശേഷം പുറത്തുള്ള ചെറുപട്ടണങ്ങളിലെയും നഗരങ്ങളിലെയും ഉന്നത വിദ്യാഭ്യാസ സ്ഥാപനങ്ങളിൽ ഏതുതരത്തിലുള്ള വിദ്യയും ആർജ്ജിക്കാൻ അവസരമൊരുക്കിയിരിക്കുന്നു. വിദ്യാഭ്യാസ ത്തോടൊപ്പം പ്രധാനപ്പെട്ട കേന്ദ്രങ്ങളിലെല്ലാം സൗജന്യ താമസ സൗകര്യവുമുണ്ട്. ഇത്തരത്തിൽ, സർക്കാരിന്റെ വിവിധ വകുപ്പുകൾ നൽകിവരുന്ന സൗകര്യങ്ങളെ കൂടാതെ ഓരോ മാസവും അവർക്കു സാമ്പത്തിക സഹായവും ലഭ്യമാണ്. ഇതിന്റെയെല്ലാം ഫലമായി സാമൂഹികവും സാംസ്കാരിക വുമായി ഉയർന്നുനിൽക്കുന്ന എല്ലാ ശ്രേണിയിലേക്കും ഇവിടുത്തെ ഗോത്രസ്ത്രീകൾക്കു എത്തിച്ചേരാൻ സാധിച്ചു. സമീപകാലത്ത്, ഒട്ടേറെ തദ്ദേശ സ്വയംഭരണ സ്ഥാപനങ്ങളിലേക്കു ജനപ്രതിനിധി കളായി തെരഞ്ഞെടുക്കപ്പെടുകയും പ്രാദേശിക ഭരണം നടത്തുകയും സംസ്ഥാന മന്ത്രിയാവുകയും ഇന്ത്യൻ അഡ്മിനി സ്ട്രേറ്റീവ് സർവീസിന്റെ

ഭാഗമാവുകയും അറിയപ്പെടുന്ന എഴുത്തുകാരാവുകയും ഡോക്യുമെന്ററി-ചലച്ചിത്ര സംവിധാന രംഗത്തു എത്തുകയും ചെയ്ത പല ആദിവാസി വനിതകളുമുണ്ട്.[8] ഇതിനുപുറമെ, നിരവധി പേർ വിവിധ സർക്കാർ വകുപ്പുകളിലും സേവനം അനുഷ്ഠിക്കുന്നു. പരിമിതവും പരിതാപകരവുമായ സാഹചര്യത്തിലാണ് ജനിച്ചതെങ്കിലും വ്യത്യസ്തമായ അതിജീവന ഘട്ടങ്ങളിലൂടെ വ്യക്തിവികാസത്തിന്റെ പുതിയ തലം കണ്ടെത്തിയ ഗോത്രസ്ത്രീകളുടെ മുൻനിരയിലേക്കു കയറ്റി നിർത്താവുന്നവരാണു ഇവരെല്ലാം. കൂടാതെ, തന്റെ അവകാശ ങ്ങളെയും ആത്മാഭിമാനത്തെയും കുറിച്ച് കൃത്യമായ ബോധ്യമുള്ള നിരവധി വിദ്യാർത്ഥിനികളും വീട്ടമ്മമാരും ഇപ്പോഴുണ്ട്.

കേരളത്തിലെ രണ്ടര ലക്ഷത്തോളം വരുന്ന ആദിവാസി വനിതകളെല്ലാം സ്വത്വപരിണാമത്തിന്റെ വിവിധ ഘട്ടങ്ങളിലൂടെ കടന്നുപോകുന്നവരാണ്. ഇതു ആത്മസംബന്ധമായ കാര്യത്തിൽ മാത്രമല്ല. വേഷം, മെയ്യലങ്കാരം, ആഭരണങ്ങൾ തുടങ്ങിയവയെല്ലാം ഇതിൽ ഉൾപ്പെടും. നഗ്നതയിൽനിന്നും മരവുരിയിലേക്കും, അതിനുശേഷം അരക്കെട്ടു മാത്രം മറച്ചുള്ള വേഷങ്ങളിലേക്കും, തുടർന്ന് അരയും മാറും മറയ്ക്കുന്ന ഒറ്റച്ചേലകളിലേക്കും, പിന്നീട് വർത്തമാന കാലത്തേക്കുമുള്ള വസ്ത്രപരിണാമത്തെ ഇതോ ടൊപ്പം ചേർത്തുവായിക്കാം. ഗോത്രാചാരത്തിന്റെയും വിശ്വാസ ത്തിന്റെയും ഭാഗമായി നെറ്റിയിലും കവിളിലും ശരീരഭാഗ ങ്ങളിലുമുള്ള പച്ചകുത്തലും അപൂർവ്വമായി. തലമുറ കൾക്കിടയിലെ ആഭരണശൈലിയിൽ കാണുന്ന അന്തരവും ഇതിന്റെ തന്നെ ഭാഗമാണ്. അങ്ങനെ, ആത്മപരവും ഭൗതിക വുമായ വ്യക്തിവികാസം വിവിധ സമൂഹങ്ങളിലെ സ്ത്രീകൾക്കി ടയിൽ സംഭവിച്ചു കൊണ്ടിരിക്കുന്നു. ജീവിക്കുന്ന ദേശം, ജന്മമെടുത്ത ഗോത്രവർഗ്ഗം, ഇപ്പോഴും നിലനിൽക്കുന്ന പരമ്പരാഗത വിശ്വാസത്തിന്റെ ഏറ്റക്കുറച്ചിൽ, ഇതരസമൂഹങ്ങളുമായുള്ള ഇടപഴകൽ, ലഭിച്ച വിദ്യാഭ്യാസം, ഗുരുക്കന്മാരിലൂടെയും വായന യിലൂടെയും ആർജ്ജിച്ചെടുത്ത വൈജ്ഞാനിക അവബോധം എന്നിവയുടെ അടിസ്ഥാനത്തിൽ അവരുടെ സ്വയംസത്തയും വ്യത്യസ്ത തോതിലായിരിക്കുമെന്നു മാത്രം. സ്വാഭാവികമായും, പ്രാക്തനവർഗ്ഗമായി വിശേഷിപ്പിക്കപ്പെടുകയും പരമാവധി കാടി നുള്ളിൽ മാത്രം ജീവിക്കാൻ ഇഷ്ടപ്പെടുകയും ചെയ്യുന്ന ഗോത്ര വിഭാഗത്തിൽപ്പെട്ട സ്ത്രീകളുടെ വ്യക്തിവികാസമാണ് ഏറെ മെച്ചപ്പെടേണ്ടത്. ചോലനായ്ക്കർ, കാട്ടുനായ്ക്കർ, കാടർ, കുറുമ്പർ എന്നീ ജനവിഭാഗങ്ങൾ[9] ഈ ഗണത്തിൽപ്പെടുന്നു. മുഖ്യധാരാ സമൂഹത്തിൽനിന്നും അകന്നുകഴിയാൻ ആഗ്രഹിക്കുന്ന ഇവരുടെ ആചാരാനുഷ്ഠാനങ്ങളും ഭാഷയും ജീവിതചര്യകളുമെല്ലാം വ്യത്യസ്തമാണ്. ഇവരെ അപേക്ഷിച്ചു ഇതര സമൂഹങ്ങളിൽപ്പെട്ട സ്ത്രീകളുടെ സ്വത്വപരിണാമം കൂടുതൽ മുന്നോട്ടു പോയിട്ടു ണ്ടെങ്കിലും ഇനിയും മാറേണ്ടിയിരിക്കുന്നു. ഇതിനു അനുകൂലമായ അന്തരീക്ഷം നമ്മുടെ നാട്ടിലും കാട്ടിലും നിലനിൽക്കുന്നു എന്നതാണ് ആശാവഹം.

****

കുറിപ്പുകൾ

1. Cochin Cesus Report, Part-1, M. Sankara Menon B.A., 1903, Cochin Government Press, Ernakulam, Pp. 182. അക്കാലത്ത് ഉള്ളാടൻ, പുലയൻ, കാടൻ, നായാടി, വേട്ടുവൻ, പറയൻ എന്നീ ജാതികളിൽപ്പെട്ടവർ മേൽജാതിക്കാരുടെ അടുത്തുനിന്നും 64 അടി ദൂരെ നിൽക്കണ മായിരുന്നു. കണക്കൻ, കൂടൻ എന്നിവരുടെ സ്ഥാനം 48 അടി

ദൂരെയാണ്. ഈഴവൻ, പാണൻ, പുള്ളുവൻ, വേലൻ, കണിയാൻ, അരയൻ, പാണൻ, മുക്കുവൻ, മരയ്ക്കാൻ, പറയൻ തുടങ്ങിയവർ 24 അടി അകന്നുനിൽക്കണം. അവർണരെന്ന് വിശേഷിപ്പിക്കപ്പെട്ട ഇവരുടെ ജീവിതം ദുരിതപൂർണ്ണം ആയിരുന്നു.

2. ുറിച്യരുടെ ജീവിതവും സംസ്കാരവും, ഡോ. കുമാരൻ വയലേരി, കറന്റ് ുക്സ്, കോട്ടയം, 1996, പുറം 23

3. Scheduled Tribes of Kerala, Census 1961-2011, Development Studies Wing, Kirtads (Kerala Institute for Research Training and Development Studies of Scheduled Caste and Scheduled Tribe), 2017, Pp. 25-30. അതേസമയം, ഔദ്യോഗിക പട്ടികയിൽ ഒന്നായി രേഖപ്പെടുത്തിയിട്ടുള്ള മുതുവാനും മുഡുഗരും രണ്ടു വ്യത്യസ്ത വിഭാഗങ്ങളാണെന്നാണ് ഗവേഷകരുടെ അഭി പ്രായം. അതുപോലെ വ്യത്യസ്ത വിഭാഗങ്ങളായി രേഖ പ്പെടുത്തിയിട്ടുള്ള മലയരയരും മലൈ അരയനും ഒരേ വിഭാഗ മാണെന്നും ചൂണ്ടിക്കാണിക്കപ്പെടുന്നു. കൊച്ചുവേലൻ, ഉള്ളാടൻ എന്നീ സമൂഹങ്ങളും ഒന്നാണെന്ന വാദവുമുണ്ട്.

4. Scheduled Tribes of Kerala (Census 1961-2011), Development Studies Wing, Kirtads (Kerala Institute for Research Training and Development Studies for Scheduled Caste and Scheduled Tribe), Calicut, 2017, P.p. 5.

5. ഇടുക്കി: ദേശം ചരിത്രം സംസ്കാരം, മനോജ് മാതിരപ്പള്ളി, ജിയോ ബുക്സ്, ട്ടപ്പന, 2025, പുറം 49

6. അശുദ്ധിയുടെ പേരിൽ കേരളത്തിന്റെ പൊതുസമൂഹത്തിലെ മറ്റു ജാതിവിഭാഗങ്ങൾക്കിടയിലും ഋതുവാകുന്ന സ്ത്രീകളെ പ്രത്യേകം കുടിൽ കെട്ടി മാറ്റിപ്പാർപ്പിക്കുന്ന രീതിയുണ്ടായിരുന്നു. സവർണ സ്ത്രീകളാണെങ്കിൽ ഇക്കാലത്ത് മറ്റുള്ളവരുമായി സമ്പർക്ക മില്ലാതെ വീടിനുള്ളിലെ ഏതെങ്കിലും മുറിയിൽ കഴിയും. എന്നാൽ, നവോത്ഥാന പ്രവർത്തനങ്ങളെ തുടർന്നു ഇതെല്ലാം അവസാനിച്ചു.

7. ുടിലിനോട്/ വീടിനോട് ചേർന്നുതന്നെ ഒരു വശത്തായി നിർമ്മിക്കുന്ന ചെറിയ മുറിയാണ് ചായ്പ് അഥവാ ചാർത്ത്. ഇത്തരമൊരു വാസ്തുവിദ്യാശൈലി കേരളീയ പൊതുസമൂഹ ത്തിലും അടുത്ത കാലം വരെയും പ്രചാരത്തിൽ ഉണ്ടായിരുന്നു.

8. പതിമൂന്നാം കേരള നിയമസഭയിൽ (2011-2016) അംഗമായിരുന്ന വയനാട് സ്വദേശിനിയായ പി.കെ. ജയലക്ഷ്മിയാണ് സംസ്ഥാനത്തു ആദിവാസി വിഭാഗത്തിൽനിന്നുള്ള ആദ്യത്തെ വനിതാമന്ത്രി. കുറിച്യ വിഭാഗത്തിൽപ്പെട്ട ജയലക്ഷ്മി മാനന്തവാടി മണ്ഡല ത്തിൽനിന്നാണ് എംഎൽഎ ആയി തെരഞ്ഞെടുക്കപ്പെട്ടത്. 2019-ൽ സിവിൽ സർവീസ് നേടുകയും 2020-ൽ കോഴിക്കോട് അസിസ്റ്റന്റ് കളക്ടറാവുകയും ചെയ്ത ശ്രീധന്യ സുരേഷും വയനാട്ടിലെ കുറിച്യ സമൂഹത്തിലെ അംഗമാണ്. 'കൊളുക്കൻ' എന്ന നോവലി ലൂടെ കേരളത്തിലെ ആദ്യത്തെ ആദിവാസി വനിതാനോവലിസ്റ്റ് ആയി മാറിയ പുഷ്പമ്മ ഊരാളി സമുദായത്തിൽപ്പെടുന്നു. കൂടാതെ, വിവിധ ഗോത്രവർഗ്ഗങ്ങളിൽ നിന്നായി ധന്യ വേങ്ങച്ചേരി, ബിന്ദു ഇരുളം, ലിജിന കടുമേനി, സീന തച്ചങ്ങാട്, രമ്യ ബാലകൃഷ്ണൻ എന്നിവരെ പോലെയുള്ള നിരവധി കവയിത്രി കളുമുണ്ട്. വയനാട്ടിലെ പണിയ സമുദായ ത്തിൽനിന്നുള്ള ലീല സന്തോഷ് അറിയപ്പെടുന്ന ഡോക്യുമെന്ററി സംവിധായികയാണ്.

9. മലപ്പുറം ജില്ലയിലെ നിലമ്പൂർ കാടുകളിലാണ് ചോലനായ്ക്കർ അധിവസിക്കുന്നത്. മറ്റു ജനസമൂഹങ്ങളുമായി അകന്നുകഴിയാൻ ഇവർ താൽപ്പര്യപ്പെടുന്നു. കാട്ടുനായ്ക്കരുടെ ജീവിതസങ്കേത ങ്ങളെല്ലാം വയനാട്, കോഴിക്കോട്, മലപ്പുറം ജില്ലകളിലാണ്. പാലക്കാട് ജില്ലയിലെ അട്ടപ്പാടി മേഖലയിൽ കുറുമ്പരും തൃശ്ശൂർ, പാലക്കാട് ജില്ലകളിലായി കാടരും വസിക്കുന്നു.

ഗ്രന്ഥസൂചി

1. രുണാകരൻ, സി.കെ. ആദിവാസികളുടെ ലോകം: വനവാസികൾ. കേരള ഭാഷാ ഇൻസ്റ്റിറ്റ്യൂട്ട്, 2007
2. തുളസീധരൻ, ശാന്ത. കേരളത്തിലെ ആദിവാസികൾ: ജീവിതവും സംസ്കാരവും. മാതൃഭൂമി ബുക്സ്, 2015
3. ബേബി, സൗമ്യ. (എഡി.) ആദിവാസി ദളിത് ജീവിതവും പ്രതിരോധവും. പൈഡീയ ബുക്സ്, 2020
4. മാതിരപ്പള്ളി, മനോജ്. ഇടുക്കി: ദേശം ചരിത്രം സംസ്കാരം. ജിയോ ബുക്സ്, 2025
5. മാതിരപ്പള്ളി, മനോജ്. കേരളത്തിലെ ആദിവാസികൾ: കലയും സംസ്കാരവും. ഡി.സി. ബുക്സ്, 2013
6. മിനി, പി.വി. ഗോത്രജീവിതം: മായുന്ന വംശീയമുദ്രകൾ. കേരള ഭാഷാ ഇൻസ്റ്റിറ്റ്യൂട്ട്, 2015
7. രാജൻ, കാഞ്ചിയാർ. രാജൻ, വി.ബി. (എഡി.). ഇടുക്കിയിലെ ഗോത്രകലകളും സംസ്കാരവും. ഇടുക്കി ജില്ലാ പഞ്ചായത്ത്, 2000
8. ലോഗൻ, വില്യം. മലബാർ മാന്വൽ. മാതൃഭൂമി ബുക്സ്, 2017
9. വയലേരി, കുമാരൻ. കുറിച്യരുടെ ജീവിതവും സംസ്കാരവും. കറന്റ് ബുക്സ്, 1996
10. സോമശേഖരൻ നായർ, പി. പണിയർ. നാഷണൽ ബുക്ക് സ്റ്റാൾ, 1976
11. Anantha Krishna Tyer, L.K. The Cochin Tribes and Castes. Vol. I. Higginbotham & Co., 1909.
12. Sankaramenon, M. Cochin Cesus Report Part-1. Cochin Government Press, 1903
13. Thurston, Edgar. Caste and Tribes of Southern India. Asian Education Service, 1985.
14. Scheduled Tribes of Kerala (Census 1961-2011). Development Studies Wing. Kerala Institute for Research Training and Development Studies for Scheduled Caste and Scheduled Tribe, 2017

ഫോൺ നമ്പർ : 9447474688
ഇ-മെയിൽ : babysaumya19@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 66-69
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारत में शिक्षा का अधिकार

डॉ. शक्ति जायसवाल
एसोसिएट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान विभाग),
बुद्ध विद्यापीठ पी0जी0 कॉलेज, नौगढ़–सिद्धार्थनगर

राजनीति विज्ञान के अधिकांश विद्वान अधिकार की धारणा को आधुनिक विचारधारा एवं सिद्धांत के तौर पर देखते हैं। इतना ही नहीं पश्चिमी विद्वान लोकतंत्र से अधिकार की अवधारणा को जोड़कर देखते हैं। इसकी सबसे बड़ी समस्या यह है कि ज्यादातर विद्वान जो राजनीति विज्ञान में प्रभावशाली है , वह पश्चिम या यूरोप से आते हैं , उनका दृष्टिकोण एकांगी और दायरा सीमित है। हम अपने इस लेख में प्राचीन भारत में बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने की अवस्थिति एवं विशेषताओं के साथ अधिकार की धारणा को समझने का प्रयास करेंगे ।

सरल शब्दों में अधिकार मूलतः एक हकदारी या दावा है जिसका औचित्य सिद्ध किया जा सके। अधिकार हमें बताता है कि नागरिक मनुष्य अथवा बालक या बालिकका होने के कारण हम किस चीज का दावा रख सकते हैं ऐसी चीज जिसे हम प्राप्त समझते हैं ऐसी चीज जिससे समाज के द्वारा वैध अनुमोदन प्राप्त हो। किंतु प्रत्येक दवा अधिकार नहीं हो सकता। अभिव्यक्त स्वार्थी इच्छा या व्यक्तिगत सकन को अधिकार की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। अधिकार की कामना करना अपने संदर्भ में श्रेष्ठ होने के साथ विवेकपूर्ण तरीके से जनकल्याण होना चाहिए। उदाहरण के लिए छोटे बच्चों की अनेक इच्छाएं उनके स्वास्थ्य और मानसिकता को ठेस पहुंचा सकती हैं और उनकी अवांछित इच्छाओं की पूर्ति करना किसी भी दशा में अधिकार की श्रेणी में नहीं आएगा । इस तरह हम कह सकते हैं कि अधिकतर वे मांग है ,जिसे समाज मान्यता देता है और राज्य लागू करता है।

प्राचीन भारत में अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य पर जोर देने की प्रथा रही। इसके पीछे मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि भारत में लोकतंत्र आधुनिक काल में आता है, न की प्राचीन भारत में। जो विद्वान भारत के लोकतंत्र की प्राचीन अवधारणा से अवगत नहीं है, वे इस भ्रम का शिकार हो जाते हैं कि भारतीय समाज मूलतः कर्तव्य परायण समाज रहा, जहां राजा का शासन और राजा की आज्ञा पालन ही प्रजा के कर्तव्य में शामिल रहा है। वास्तव में यह एक एकांकी धारणा है। यह सिक्के का केवल एक पहलू है, जिसे हम देखते हैं और इसे ही संपूर्ण भारत से समझने की गलती करते हैं। प्राचीन भारत के राजतंत्र में राजा धर्म से पूर्णतया सीमित रहा है। धर्म का तात्पर्य धृ धातु से है, अर्थात अपने कर्तव्य का पालन करना रहा है, हम अपने कर्तव्य स्वरूप जो कुछ भी धारण करते हैं वह धर्म है। इतना ही नहीं भारत में प्राचीन काल में अनेक जगहों पर गणतंत्र थे, जहां जनता अपनी आपसी सहमति से समाज के महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान करती थी और न्याय निर्णयन के लिए भी एकजुट थी। स्पष्ट है की भारत के राज्य प्राचीन काल में तानाशाही या निरंकुशता का आवरण नहीं ओढ़े थे। शाक्य परंपरा हो या मौर्य परंपरा या हो गुप्त वंश सभी कालों में विद्वान लोगों में इस बात की एकमतता रही है कि किस तरीके से समाज में ज्ञानपरक बौद्धिकता और श्रेष्ठ व्यक्तित्व का विकास किया जाए।

सर्वप्रथम हमें प्राचीन भारत में शिक्षा की अवस्थिति, सुविधा उपलब्धता एवं विद्यार्थियों तक पहुंच की स्थिति को समझना होगा। प्राचीन काल में भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत ज्ञानपरक , सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए

विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। भौतिकता के साथ आध्यात्मिक जीवन के निर्माण एवं अनेकों उत्तरदायित्व को निष्पादित करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता को महत्वपूर्ण माना गया है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि अक्षर को जानने वाला एवं ना जाने वाला दोनों कर्म करते हैं, किंतु विद्या और अविद्या दोनों के फल भिन्न–भिन्न होते हैं, जो कर्म या विद्या श्रद्धा और योग से संयुक्त होकर किया जाता है, वह प्रबलतर होता है [1] अर्थात ज्ञान, मनुष्य के तीसरे नेत्र के समान है, जो समस्त तत्वों को मूल अर्थ में समझाने का लिए सहायता करता है ,अच्छा व्यक्ति के शरीर एवं मन दोनों को परिष्कृत एवं पवित्र करता है। इसीलिए ज्ञान को अप्रितम कहा गया है। ऋग्वेद में वर्णित है कि विद्या या शिक्षा माता की तरह मनुष्य की रक्षा करती है, पिता की तरह शुभ कार्य में सहयोग करती है, पत्नी की तरह दुखों को समाप्त करती है, कल्पलता की तरह प्रसन्नता प्रदान करती है। [2] जीवन के समस्त लौकिक सुखों की प्राप्ति शिक्षा के माध्यम से ही संभव मानी गई है और शिक्षा से ही मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है उसकी बुद्धि एवं प्रज्ञा सुदृढ़ एवं प्रांजल होता है। शिक्षाहीन मनुष्य को पशुवत कहा गया है।

प्राचीन भारत में शिक्षा प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य था कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को योग्यतावान बनाकर उसके सामाजिक दायित्वों का जिम्मेदारी पूर्वक निष्पादन कराया जाए। उसे समाज में अपने सामाजिक उत्तरदायित्व प्रथा का अनुपालन कार्य विभाजन के सिद्धांत पर करना था, जिसमें सभी वर्ण और जातियां अपने–अपने प्रत्येक कर्म करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करती थी। सबके अपने व्यवसाय थे ,अपने उत्तरदायित्व थे और सभी अपने उत्तरदायित्व का मनोनिवेशपूर्ण निष्पादन करते हुए समाज व्यवस्था में शांति और न्याय व्यवस्था को बनाए हुए थे।

जहां तक शिक्षा व्यवस्था की सुव्यवस्थित होने और सुनियोजित होने का प्रश्न है, तो प्राचीन भारत में गुरुकुल में उपनयन संस्कार के पश्चात ही शिक्षा व्यवस्था आरंभ होती थी। [3] जिसमें आचार्य ब्रह्मचारी को एक नए जीवन में दीक्षित करता था। जिसे द्वितीय जन्म कहा गया और ब्रह्मचारी को द्विज कहा गया। उपनिषदों में आचार्य कुल के बारे में कहा गया है कि वहां जाकर शिष्य आचार्य में पिता–बुद्धि और आचार्य पत्नी में मातृ–बुद्धि की भावना करते हुए पारिवारिक वातावरण का आनंद उठाता था। महाभारत में उल्लेखित है कि मार्कंडेय और कण्व ऋषि के आश्रम शिक्षा के प्रधान विद्या स्थल थे, यहां पर बहुसंख्यक छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। [4] दुर्वासा ऋषि जब कुरु नरेश से मिलने गए तो ,उनके साथ 10000 शिष्य थे, यह ऋषि की लोकप्रियता का परिचायक था। चंपा निवासी दिशाप्रमुख आचार्य के आश्रम में 500 छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। [5] बौद्ध–काल और गुप्त काल में भी गुरुकुल की शिक्षा बिना बाधा के चलती रही। गुप्त काल में ज्ञात है कि आचार्य ब्राह्मण को ग्राम दान में दिए जाते थे। कालिदास के ग्रंथो और बाण के हर्ष चरित में अनेक ऐसे गुरुकुलों का उल्लेख है, जहां अपने बौद्धिक विकास के लिए विद्यार्थी जाया करते थे। इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में शिक्षा प्रणाली सुनियोजित और सुव्यवस्थित थी।

जहां तक बात शिक्षा के सर्वज्ञ सर्वसुलभता की है तो अनेक ऐसे उदाहरण वैदिक युगीन और उपनिषद कालीन समाज में है, जहां शिक्षा प्राप्त करने के लिए लोगों में कोई भेदभाव नहीं था। यह बहुत ही रोचक और ध्यान आकर्षण करने वाला बिंदु है ऐसे अनेक उदाहरण है जब शिष्य की जाति या ऊंच–नीच का विचार न करके उसकी योग्यता, विनम्रता और ग्रहण करने की क्षमता का ध्यान रखकर, उसकी शिक्षा के लिए उसे चयनित किया गया। शिष्य के गुण और सत्कर्मों के मूल्यांकन के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता रहा है। उपनिषदों से ज्ञात है सत्यकाम जाबाल अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान और ज्ञानी था उसके कुल में शिक्षा का कार्य नियम पूर्वक संपन्न होता था, अपने बचपन में वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए हरिद्रमुत गौतम के आश्रम में गया। आचार्य ने उसे अपना शिष्य बनाने के लिए गोत्र के विषय में पूछा तो उसने अपने को सत्यकाम जाबाल बताया। जाबाल उसकी मां का नाम था और सत्य काम स्वयं उसका नाम उसे अपने पिता के बारे में ज्ञात नहीं था कि, कौन उसका पिता है, क्योंकि युवा अवस्था में उसकी मां सेविका के रूप में कहीं काम करती थी तभी वह उत्पन्न हो गया था। उसकी मां भी यह नहीं जानती थी कि वह किस गोत्र का था और किससे पैदा हुआ था। इसलिए उसने सत्यकाम से कहा वह अपने नाम के साथ उसका नाम जोड़ ले। आचार्य ने जब इस विषय के तथ्य को जाना तो वह सत्यकाम के वचन से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि "जो अब्राह्मण है,

और ब्राह्मण गुण भाव से रहित है, वह इस तरह नहीं कह सकता। होमार्थ समिधा ले आओ मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करके तुम्हें आचार्य कुलवासी बनाऊंग। तुममें यह बहुत बड़ा गुण है कि तुम सत्य से विचलित नहीं हुए।" [6]

वैदिक युग में गैर आर्यों और निम्न वर्ग से संबंधित लोग भी ज्ञान और विद्या प्राप्त करने का अधिकार रखते थे। अनेक ऐसी निम्न जाति के विद्वान रहे हैं जिन्होंने वैदिक मंत्रों की रचना तक किया है। वह वैरोचन नामक असुर ने 32 वर्ष तक ब्रह्मचारी के रूप में आचार्य प्रजापति के सानिध्य में रहकर शिक्षा लाभ प्राप्त किया था। सभी को यह ज्ञात है कि शुक्राचार्य स्वयं असुरों के गुरु थे। सूत्र युग में द्विजो अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के साथ शूद्रों का भी समावर्तन संस्कार होता था। [7] जो इस बात का प्रमाण था कि उसे युग में शिक्षा समाप्ति के पश्चात अन्य वर्गो के साथ शूद्रो को भी समावर्तन संस्कार आयोजित किया जाता था। जातकों से ज्ञात होता है कि अनेक शूद्र उच्च कोटि के विद्वान थे। मातंग नमक चांडाल विख्यात ज्ञानी था। सुत्तनिपात में विवरण है कि उसके यहां दूर–दूर से उच्च जाति के लोग आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। उपाली जन्म से नापित था। सुनीति जाति का भंगी था। बौद्ध युग में भी इस तरह से महात्मा गौतम बुद्ध के कुछ शिष्य निम्न जाति से जुड़े हुए थे। जैन साहित्य में भी शूद्रो को दर्शन एवं ज्ञान की समान शिक्षा दी जाती थी। हरिकेशबल जाति का तो चांडाल था, किंतु अपने गुणों, ज्ञान के कारण ऋषि के रूप में विख्यात था। [8] इस तरह अनेक ऐसे उदाहरण है जिससे यह प्रमाणित होता है कि गैर आर्यों या निम्न वर्ग के लोग भी न सिर्फ विद्वान थे बल्कि शिक्षा प्राप्त का अधिकार भी रखते थे।

वैदिक युग में समाज व्यवस्था में लिंग के आधार पर पुरुष और स्त्री के बीच भेदभाव नहीं होता था ऐसे अनेक उदाहरण है जिसमें पुत्र के समान पुत्री ने विद्या आरंभ प्रारंभ किया उपनयन संस्कार भी हुआ और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विभिन्न विषयों की शिक्षा अर्जन की। यहां तक की यज्ञ का संपादन और वेद अध्ययन करने का भी उन्हें अधिकार था। [9] सभा और गोष्ठियों में अनेक विदुषी महिलाओं ने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं का गान किया है। ऋग्वेद में उल्लेखित है कि कुछ विद्वान महिलाओं ने ऋग्वेद की ऋचाओं के प्रणयन में योग प्रदान किया था। अपाला, उर्वशी, रोमशा, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, घोषा, लोपामुद्रा आदि विद्वान महिलाएं थी, जो यज्ञ में समान अधिकार के साथ सहयोग करती थी। स्वयं महाभारत से ज्ञात होता है कि पांडवों की मां कुंती अथर्ववेद में पारंगत थी। वस्तुतः वैदिक युग में बालिकाओं के दो वर्ग थे एक सद्योवधू दूसरा ब्रह्मवादिनी सद्योवधू वे छात्राएं थी, जो विवाह के पूर्व तक कुछ वेद मंत्रों और प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थी। ब्रह्मवादिनी वे थी, जो अपना शिक्षा पूर्ण करने में अपना पूरा जीवन लगा देती थी और विवाह तक नहीं करती थी। ऋषि कुशवज की कन्या वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्री थी। [10] बौद्ध युग में भी स्त्रियों की शिक्षा और विद्वता का ज्ञान उपलब्ध होता है। थेरीगाथा की कवयित्रियों में 32 आजीवन ब्राह्मचारणी और 18 विवाहित भिक्षुनिया थी उसमें शुभा, सुमेधा, अनुपमा उच्च वंश की कन्याएं थीं, जिनसे विवाह करने के लिए संपत्तिशाली लोग के पुत्र उत्सुक थे। [11]

आगे चलकर सभ्यता के विकास के साथ–साथ भारतीय समाज व्यवस्था में कमियां भी उजागर होने लगी। संभवतः स्मृति युग से शुद्र छात्रों की शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। गौतम ने यह व्यवस्था दी थी कि वैदिक मंत्रों का चरण करने वाले शूद्रों की जिह्वा काट देनी चाहिए। [12] जैमिनी के अनुसार शुद्र अग्निहोत्र और वैदिक यज्ञ संपादित नहीं कर सकता था। मध्ययुगीन इतिहासकार अलबरूनी लिखता है कि शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। [13] दूसरी सदी ईसा पूर्व से ही समाज में कुरीतियों होना शुरू हो गया था। स्त्रियों के उपनयन संस्कार प्रतिबंधित हो गए थे। स्मृतिकारों ने व्यवस्था कर दी थी की बालिकाओं को उपनयन में वैदिक मंत्र नहीं पढ़ना चाहिए। इस तरह जो अतीत का गौरव था जिसमें गुरुकुल में जाकर मानव जाति की समानता के नाम पर अमीर गरीब छोटे–बड़े बालक बालिकाएं सभी शिक्षा अर्जित करते थे, वह आदर्श युग आगे चलकर विलुप्त हो गया। फिर भारत में तुर्की आक्रमण अनेक विदेशियों का आक्रमण जिसमें यूनानी, शक, पल्लव, कुषाण, हूण आदि थे, जिन्होंने भारत के लोगों के साथ रक्त संबंध स्थापित किया और आर्य अपनी रक्त की शुद्धता को बनाए रखने के लिए अपने नियम को कठोर करते चले गए, जिसका दुष्परिणाम बाल विवाह,

बहु पत्नी प्रथा, बालिका वधू जैसी अनेक कुप्रथाओं का शिकार भारतीय महिलाएं होने लगी। इस तरह जो शिक्षा का अधिकार स्त्रियों को सम्मानपूर्वक मिला था, वह अब गुजरे जमाने की बात हो गई।

इस तरह हम कह सकते हैं कि यदि शिक्षा के अधिकार की धारणा को राज्य के विरुद्ध हक या दावे के तौर पर देखा जाएगा तो यह आधुनिक काल की उत्पत्ति मानी जाएगी, किंतु यदि अधिकार की अवधारणा को प्लेटों के न्याय और सामाजिक कर्तव्य परायणता से जोड़कर देखा जाएगा, तो प्राचीन भारत में भी वैदिक युग के आदर्श सभ्य समाज में इसके बीज मिल जाते हैं।

सन्दर्भ सूची–

1– सु0र0सं0पृ0 194, ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्तत्वार्थ विलोकिदक्षम्
तेजोनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्रयेपित।।

2– सु0र0सं0, 31 · 14, मातेव रक्षिति पितेव हिते नियुक्तो कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्। लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्ति किं कि न साधयति कल्पलतेव विद्या।

3– छां0उ0, 2 · 23 · 1, द्वितीयो ब्रम्हचर्याचार्यकुलवासी,
4 · 9 · 1, प्रापहाचार्यकुलं तमाचार्योम्युवाद,
4 · 10 · 1, सत्यकामे जानाले ब्रम्हचर्यमुवास।
तस्य ह द्वाहशवर्षाण्दग्नीम् परिचचार।

4– महाभारत, 3 · 271 · 48, 1 · 70 · 18 .

5– अंगुत्तर निकाय, पृ0 371

6– छां0 उ0, 4 · 4 2, सा हैनमुवाच नाहयमेतद् वेद तात।
यद्गोवस्त्वमसि
ब्रम्हाहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलमो। साहमेतत्र वेद।।
जबाला तु नामाहमस्मि। सत्यकामों नाम त्वमसि।
स सतयकाम एवं जाबालो बृवीथा इति।
वही, तं होवाच। नैतब्राम्हणोविवक्तुमर्हति।
समिधं साम्याहरोप त्वानेष्ये। न सत्याहगा इति।

7– आ0गृ0सू0, 3 · 8, अनुलेपनेन प्राणी प्रलिप्द मुखमग्रे ब्राम्हणोडनुलिम्पेत,
बाहू राजन्यः, उदरं वैश्यः उरू सरणजजीविनः

8– उत्तराध्यायन, 12 · 1

9– ऋग्वेद, 8 · 31, यादम्पति सुमनसा आ च धावतः देवा सो नित्यया शिरा।

10– रामायण, 7 · 17, कृशध्वजो नाम पिता ब्रम्हर्षिरमितप्रभः।
बृहस्पति सुतः श्रीमान् बुद्धया तुल्यों बृहस्पतेः

11– हार्नर, विमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, दूसरा अध्याय।

12– गौ0 ध0 सू0, 12 · 5

13– जैमिनी, 6 · 1 · 15 · 38

E-Mail: shaktijaiswal59@gmail.com
Mob: 9838606388

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 70-72
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली: गुरुकुल से विश्वविद्यालय तक

डॉ० हरीश कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास,
रामस्वरूप ग्रामोद्योग परास्नातक महाविद्यालय ,पुखरायां कानपूर देहात

(Abstract)

"प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली न केवल ज्ञान के संचरण की विधि थी, बल्कि एक संस्कृति, जीवनशैली और नैतिक मूल्यों का वाहक तंत्र थी। गुरुकुल प्रणाली से प्रारंभ होकर यह शिक्षा प्रणाली तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों तक विस्तृत हुई। इस शोधपत्र में वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्यकालीन भारतीय विश्वविद्यालयों तक की शिक्षा व्यवस्था, उनके उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, पद्धति, सामाजिक योगदान, और पतन के कारणों का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। साथ ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन परंपराओं की प्रासंगिकता पर भी विचार किया गया है।"

भारत में शिक्षा का उद्भव आध्यात्मिक चेतना और आत्मविकास की भावना के साथ हुआ। वैदिक ऋषियों ने शिक्षा को जीवन का साध्य नहीं, बल्कि साधना माना। वैदिक युग में शिक्षा ने समाज को नीतिपरक, ज्ञानशील और सहिष्णु बनाया। समय के साथ यह प्रणाली विकास करती हुई नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों तक पहुँची, जहाँ भारत ही नहीं, विदेशों से भी छात्र अध्ययन हेतु आते थे।

वैदिक काल की शिक्षा प्रणाली भारतीय ज्ञान परंपरा की मूलभूत विशेषताओं में से एक मानी जाती है। यह प्रणाली 'गुरुकुल व्यवस्था' पर आधारित थी, जो प्रकृति के समीप, शांतिपूर्ण और साधनविहीन जीवन शैली में संचालित होती थी। गुरुकुल न केवल एक शैक्षिक केंद्र था, बल्कि वह एक आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक अनुशासन का केंद्र भी था। गुरुकुल की शिक्षा व्यवस्था का लक्ष्य केवल बौद्धिक विकास नहीं था, बल्कि वह चरित्र निर्माण, आत्मनियंत्रण, नैतिक उत्थान और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी उतनी ही महत्ता देती थी।

गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को 'ब्रह्मचारी' कहा जाता था। वे बाल्यकाल में ही गुरुकुल में प्रवेश करते थे और वर्षों तक गुरु के संरक्षण में रहकर अध्ययन करते थे। यह एक पूर्ण आवासीय प्रणाली थी, जहाँ विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहते थे। वे गुरु की सेवा, दैनिक कार्यों में सहयोग और अपने आचरण से ही शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह व्यवहार, सेवा, तप, संयम और कर्तव्यनिष्ठा के गुणों को आत्मसात करने पर आधारित थी।जहा अध्ययन का माध्यम संस्कृत भाषा थी, जो उस काल की विद्वत् भाषा मानी जाती थी। विद्यार्थियों को अध्ययन की तीन विधियों से परिचित कराया जाता था—श्रवण (गुरु के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनना), मनन (सुनी हुई बातों पर विचार करना) और निदिध्यासन (गहन चिंतन और ध्यान द्वारा ज्ञान को आत्मसात करना)। इन विधियों के माध्यम से ज्ञान केवल रटने या स्मरण करने का विषय नहीं था, बल्कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहार में लाने योग्य था।गुरुकुलों में पढ़ाए जाने वाले विषय अत्यंत व्यापक और विविध

थे। इनमें वेद और वेदांगों के साथ-साथ व्याकरण, छंद, निरुक्त, कल्प, शिक्षा, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, युद्धकला, धनुर्विद्या, संगीत, कला, शिल्प, नीति शास्त्र, और दर्शन प्रमुख रूप से शामिल थे। इस प्रकार शिक्षा केवल धर्म और आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह वैज्ञानिक, व्यावहारिक और लोकहितकारी भी थी। विशेष बात यह थी कि शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन नहीं था, अपितु आत्मा की उन्नति, समाज सेवा और जीवन के चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—की प्राप्ति भी था।

गुरुकुल जीवन में अनुशासन और आचार-व्यवहार को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे ब्रह्मचर्य का पालन करें, अपने इंद्रियों पर नियंत्रण रखें, गुरु की आज्ञा का पालन करें और तप तथा सेवा के माध्यम से स्वयं को योग्य बनाएँ। ब्रह्मचर्य न केवल यौन संयम था, बल्कि वह मानसिक, शारीरिक और आत्मिक संयम का भी प्रतीक था। विद्यार्थियों के लिए प्रातःकाल उठना, ध्यान, स्नान, यज्ञ, स्वाध्याय और गुरुसेवा जैसे कार्य दिनचर्या का अनिवार्य भाग होते थे। इन्हीं साधनों से चरित्र निर्माण की नींव रखी जाती थी

इस शिक्षा प्रणाली की आत्मा था—गुरु-शिष्य संबंध। यह संबंध केवल औपचारिक शिक्षक और विद्यार्थी का नहीं था, बल्कि यह अत्यंत आत्मीय, आध्यात्मिक और अनुशासनमय होता था। गुरु को अत्यंत सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उन्हें 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः' के रूप में देखा जाता था, अर्थात वे सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारक के समरूप माने जाते थे। गुरु शिष्य को केवल ज्ञान नहीं देते थे, बल्कि वे शिष्य के जीवन का मार्गदर्शन करते थे, उसकी कमियों को दूर करते थे और उसे आत्मनिर्भर, नैतिक और विवेकशील नागरिक बनने की प्रेरणा देते थे।शिक्षा की पूर्णता के उपरांत 'समावर्तन संस्कार' का आयोजन किया जाता था। यह संस्कार एक प्रकार का दीक्षांत समारोह होता था, जिसमें शिष्य अपने गुरु को गुरु-दक्षिणा अर्पित करता था। यह दक्षिणा केवल भौतिक सामग्री नहीं होती थी, बल्कि उसमें शिष्य की श्रद्धा, आभार और समर्पण की भावना समाहित होती थी। इस प्रकार यह शिक्षा संबंध एक पवित्र बंधन में परिणत होता था, जो आजीवन स्मरणीय और प्रेरणास्पद बना रहता था।

गुरुकुल प्रणाली में समानता और स्वावलंबन पर विशेष बल था। सभी विद्यार्थी गुरु के आश्रम में समान रूप से रहते थे, चाहे उनका सामाजिक या आर्थिक स्तर कुछ भी हो। आश्रम में विद्यार्थी भोजन, वस्त्र, आश्रय की व्यवस्था में भी भाग लेते थे और गुरु के साथ मिलकर वृक्षारोपण, यज्ञ, स्वच्छता आदि कार्यों में सहयोग करते थे। यह सहजीवन की भावना को सुदृढ़ करता था और विद्यार्थी में सेवा, कर्तव्य और विनम्रता जैसे गुणों का विकास होता था।

गुरुकुलों की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी कि शिक्षा निःशुल्क होती थी। विद्यार्थी गुरु के संरक्षण में रहते थे, और समाज द्वारा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। राजा, व्यापारी, कृषक आदि वर्ग गुरुकुलों का पोषण करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा केवल व्यक्ति विशेष का कार्य नहीं थी, बल्कि समाज की सामूहिक जिम्मेदारी मानी जाती थी।अनेक विदुषी नारियाँ जैसे गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि इस प्रणाली की देन थीं। ऋग्वेद में गार्गी और मैत्रेयी के ब्रह्मज्ञान संबंधी संवादों का उल्लेख मिलता है, जो यह प्रमाणित करता है कि वैदिक काल में महिलाओं को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता था।, वैदिक काल की शिक्षा प्रणाली एक संपूर्ण जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करती थी। वह केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं देती थी, बल्कि मनुष्य को जीवन के प्रत्येक पक्ष में योग्य बनाती थी—बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जो व्यक्ति को केवल विद्वान नहीं, बल्कि एक सत्पुरुष, समाजसेवी और आत्मज्ञानी बनाती थी।

उत्तरवैदिक काल में श्रमण परंपरा के अंतर्गत बौद्ध और जैन शिक्षा प्रणालियों का विकास हुआ, जिन्होंने धार्मिक आचरण के साथ-साथ तर्क, नीति, औषधि, ध्वनि और भाषा विज्ञान जैसे विषयों को भी शिक्षा में स्थान दिया। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भिक्षु विहारों में रहकर अध्ययन-अध्यापन करते थे, जहाँ 'संघ' संस्था के माध्यम से शिक्षण कार्य संचालित होता था। त्रिपिटक ग्रंथ—विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक—बौद्ध शिक्षा के

मूल आधार थे। इस प्रणाली में शिक्षा की सुलभता अधिक थी, क्योंकि इसमें जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव अपेक्षाकृत कम था, जिससे सभी वर्गों को ज्ञानार्जन का अवसर प्राप्त हुआ। वहीं, जैन शिक्षा परंपरा में आचार्यों ने तप, अहिंसा और आत्मशुद्धि को केंद्र में रखते हुए शिक्षण संस्थाओं का संचालन किया। महावीर स्वामी द्वारा प्रचारित नैतिक शिक्षाओं ने समाज को संयम, करुणा और नैतिकता की दिशा में प्रेरित किया।

प्राचीन भारत की विश्वविद्यालय व्यवस्था न केवल विद्या-दान का माध्यम थी, बल्कि यह सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास की एक समृद्ध परंपरा भी थी। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और ओदंतपुरी जैसे विश्वविद्यालय न केवल भारत, अपितु समस्त विश्व में विद्या के प्रमुख केंद्र रहे। तक्षशिला, जो संभवतः विश्व का पहला विश्वविद्यालय था, वैदिक काल से मौर्यकाल तक शिक्षा, संस्कृति और राजनीति का केंद्र रहा, जहाँ चाणक्य, चरक, और वात्स्यायन जैसे महान विद्वान अध्यापन करते थे। यहाँ धर्मशास्त्र, राजनीति, सैन्यविद्या, चिकित्सा और ज्योतिष जैसे 68 से अधिक विषयों की पढ़ाई होती थी। वहीं नालंदा, जो गुप्त सम्राट कुमारगुप्त द्वारा स्थापित किया गया था, बौद्ध धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र, गणित और चिकित्सा का एक सुव्यवस्थित और समृद्ध केंद्र था, जहाँ ह्वेनसांग और इत्सिंग जैसे विदेशी विद्वानों ने शिक्षा ग्रहण की और इसकी गरिमा का वर्णन किया। विक्रमशिला विश्वविद्यालय, जो पाल सम्राट धर्मपाल द्वारा स्थापित किया गया, वज्रयान बौद्ध शिक्षा का उत्कृष्ट केंद्र था, जहाँ प्रवेश परीक्षा और विद्वत परिषद जैसे संस्थागत अनुशासन लागू थे, और जहाँ अतीश दीपंकर जैसे विद्वान हुए। ओदंतपुरी भी एक विशिष्ट बौद्ध शिक्षा केंद्र था, जिसकी संरचना और पाठ्यक्रम नालंदा से मिलते-जुलते थे। इन विश्वविद्यालयों में वेद, उपनिषद, न्याय, वैशेषिक, योग, खगोल, औषधि, चित्रकला, नाट्यशास्त्र, और नैतिक शिक्षा का अध्ययन व्याख्यान, संवाद, वाद-विवाद एवं प्रायोगिक शैली में होता था। शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन नहीं, बल्कि आत्मोन्नति, समाजसेवा और मोक्ष था। विद्यार्थी स्वावलंबी होते थे, स्वयं भोजन बनाते, जल लाते और गुरु की सेवा करते। दुर्भाग्यवश, जातिगत संकीर्णता, नवाचार की कमी और मुस्लिम आक्रमणों के कारण ये संस्थान धीरे-धीरे नष्ट हो गए। 1193 ई. में बख्तियार खिलजी द्वारा नालंदा और विक्रमशिला का विध्वंस इस पतन का प्रतीक बन गया। औपनिवेशिक काल में पश्चिमी शिक्षा मॉडल थोपे गए और पारंपरिक केंद्र उपेक्षित हो गए। आज, जब आधुनिक शिक्षा तकनीकी दृष्टि से प्रगतिशील होते हुए भी नैतिक और आध्यात्मिक रूप से रिक्त हो चली है, तब प्राचीन शिक्षा प्रणाली का स्वावलंबन, यम-नियम, मूल्य शिक्षा और समग्र दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास है, जो आधुनिक गुरुकुल और भारत-केंद्रित पाठ्यक्रमों के माध्यम से एक नवीन शैक्षिक चेतना का संचार कर रही है।

10. संदर्भ (References)

1. बाशम, ए.एल. (2001). *द वंडर दैट वाज़ इंडिया*. रूपा पब्लिकेशन।
2. शर्मा, राम शरण. (2002). *प्राचीन भारत का इतिहास*. नेशनल बुक ट्रस्ट।
3. शर्मा, लक्ष्मीनारायण. (1997). *भारतीय शिक्षा का इतिहास*. साहित्य भवन।
4. UNESCO (2020). *Ancient Universities of India: A Historical Perspective.*
5. ह्वेनसांग. *सी-यू-की: ट्रैवल्स इन इंडिया.*
6. Majumdar, R.C. (1951). *Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist.*
7. Altekar, A.S. (1934). *Education in Ancient India*. Banaras Hindu University Press.

harishcsjmu09@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 73-76
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राकेश कुमार सिंह के उपन्यासों में आदिवासी कला और संस्कृति

ऐश्वर्या अनिलकुमार
अतिथि व्याख्याता,
एस एस वी कॉलेज, वलयनचिरंगारा, केरल

संस्कृति और कला का संबंध प्रायः हर मनुष्य के साथ होता है। कला संस्कृति को लेकर चलती है। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि कला संस्कृति की वाहिका है। हर एक देश की असली पहचान उसकी विविध संस्कृति और कलाओं से होती है। विश्व इतिहास में भारतीय संस्कृति विशेष महत्व रखती है। भारत की संस्कृति संसार के प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसलिए ही उसका सम्बन्ध भारत की आदिम जनजातियों से अधिक निकट है। भारत में 200 से अधिक जनजातियां और उपजनजातियां पाई जाती हैं। मुण्डा, खासी, गारो, भील, मीणा, कोल आदि इनमें प्रमुख हैं। प्रत्येक जनजातियों की अपनी संस्कृति और सामाजिक संरचना होती है। इसके अन्तर्गत सहभागिता, भाईचारा, जाति-लिंग समानता, गीत-नृत्य, प्रकृति-प्रेम आदि आते हैं। आदिवासी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति से निकटस्थ संबंध। आदिवासियों की 'अरण्य संस्कृति' में कई सारी विशेषताएं हैं। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति जंगलों से होती है। वे उतना ही जंगल से लेते हैं, जितना उनके जीवन आगे बढ़ने केलिए आवश्यक है। वे अपनी संस्कृति की तरह जंगलों को भी अपने आने वाली पीढ़ी केलिए बचाए रखते हैं। उनकी संस्कृति में पौराणिक-ऐतिहासिक कथाएं और पीढ़ियों के यथार्थ इतिहास उपस्थित हैं। आदिवासियों की कलात्मक अभिव्यक्ति केवल आराम के क्षणों को भरने या मनोरंजन मात्र नहीं है, बल्कि उनके जीवन को प्रेरणा प्रदान करते हैं। इनके नृत्य-गीत, संगीत, कहानी, कला आदि धार्मिक भावनाओं और क्रियाशील सृजनात्मकता से जुड़ी हुई हैं। कला आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक मान्यताओं से एक विशेष रिश्ते या अटूट संबंध रखते हैं। आदिवासी संस्कृति और कला बाहरी दुनिया की कला और संस्कृति से भिन्न है। नई संस्कृति और औद्योगिक विकास ने आदिवासी संस्कृति और कला पर ठोस प्रहार किया है। इसलिए आदिवासी समाज अपने सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की रक्षा केलिए आगे आया। अपनी अभिव्यक्ति साहित्य के द्वारा करने लगे। जल, जंगल और ज़मीन की रक्षा की मांग करने लगे।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिंदी साहित्य में अपना उपस्थिति दर्ज किए रचनाकारों में महत्वपूर्ण है राकेश कुमार सिंह। उनका जन्म 1960 में पलामू जिला, झारखण्ड के गुरहा गाँव में हुआ था। उन्होंने ज़्यादातर रचनाओ में अपनी जन्मभूमि झारखण्ड को आधार बनाया है। अपनी रचनाओं द्वारा पठार के चिर उपेक्षित आदिवासी जीवन, संघर्ष और दुःख को बाहरी दुनिया को दिखाने का प्रयास की है। संस्कृति और कला आदिवासी जीवन से जुड़े रहने के कारण उनके रचनाओं में आदिवासियों के विभिन्न संस्कृति, कला, नृत्य-गीत ,त्योहार, पर्व आदि का बहुमूल्य चित्रण है। राकेश कुमार सिंह के प्रमुख उपन्यासों में 'पठार पर कोहरा', 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश', 'जो इतिहास में नहीं है', 'हुल पहाड़िया', 'महाअरण्य में गिद्ध' और 'ऑपरेशन महिषासुर' शामिल हैं। इन सारे उपन्यासों में झारखण्ड के आदिवासियों की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख इतनी गहराई से है कि उपन्यास हर एक त्योहार-

पर्व, रीति-रिवाज़, नृत्य-गीत के वैशिष्ट्य को अनावृत करते चलते हैं। राकेश कुमार सिंह जी के उपन्यास आदिवासी जीवन, दुःख और संघर्ष को ही नहीं बल्कि उनके बहु-आयामी संस्कृति को पाठकों के सामने रखते हैं।

झारखण्ड के वर्तमान आदिवासी जीवन को आधार बनाकर लिखा गया एक उपन्यास है 'पठार पर कोहरा'। अवसर रहित, अभावग्रस्त और शोषित आदिवासी समाज का दस्तावेज़ है यह उपन्यास। आर्थिक तानाशाही ने झारखण्ड के आदिवासी समूह के संस्कार, रहन-सहन, और परम्पराओं को विकृत किया है। प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में 'मुण्डा' जनजाति है। मुण्डा भारत की एक प्रमुख जनजाति है, जो मुख्य रूप से झारखण्ड के छोटा नागपुर क्षेत्र में निवास करता है। मुंडा संस्कृति की समाजिक व्यवस्था बहुत ही सरल और बुनियादी है। मुण्डा जनजाति मुख्य रुप से सिंगबोंगा देवता पर विश्वास रखते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी चले आये उनके विश्वासों की कथा इससे जुड़े हुए हैं - "सेंगल-दा में कभी भयानक आग बरसी थी, आसमान से आग की बरखा हो रही थी मुंडा लोगों के दादा-परदादाओं पर। तब प्रकट हुए थे सिंगबेंगा। सर्वशक्तिमान देवता, मुंडा लोगों के रक्षक...! सिंगबेंगा ने मुण्डाओं को केंकड़े के छिछले गढ़े में छुपा दिया था। मुण्डा लोगों की जान बचायी थी, नहीं तो आज मुण्डाओं को 'बांस–बिरिख' (वंश-वृक्ष) का नाश हो चूका होता"।[1]

आदिवासियों के बीच पूर्वजों के प्रति श्रद्धा या पूर्वज पूजा की बहुत अधिक महत्त्व है। वे उन्हें ईश्वर के समान मानकर अतीत पर गर्व करते हैं। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में आदिवासियों के वीर नायक बिरसा मुण्डा का उल्लेख करते हुए राकेश जी ने लिखा है – "बिरसाइत... यानी मुण्डाओं के भगवान सामान बिरसा मुंडा के साथी लड़ाके जो बिरसा के विद्रोह, उलगुलान में बिरसा महान के साथ बाँह से बाँह गहकर लड़े थे। फिरंगियों से लोहा लड़ाया था।"[2] झारखण्ड के आदिवासियों के बीच जो पूजा पद्धति या परंपरा विद्यमान है वे है सरना धर्म। सरना धर्म में पेड़, पौधे, पहाड़ आदि प्राकृतिक संपदाओं की पूजा की जाती है। उनके धार्मिक स्थल कोई इमारत या भवन नहीं है बल्कि किसी महावृक्ष या पहाड़ होता है। "जंगल में देवस्थल तो जगह-जगह मिल जाते थे। क्षीण आबादी और जंगल झाड के अबाध सिलसिले के बीच किसी महावृक्ष की जड़ को घेरे मिट्टी के अनगढ़ चबूतरे...। वृक्ष की जड़ को बाँहों में समेटे बैठे माटी के चबूतरे पर पकी मिट्टी की आकृतियाँ... हाथी-धोड़े ...।"[3]

आदिवासी लोग अभावग्रस्त जीवन जीने पर भी त्योहार, उत्सव, पर्व आदि वर्ष भर मनाए जाते हैं। पर्व-त्योहारों से उनके मनोरंजन और विश्वास जुड़े हुए हैं। राकेश कुमार सिंह जी ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में झारखंड के आदिवासियों के विभिन्न त्योहारों को प्रस्तुत की है।करमा मुण्डा, संथाल आदिवासियों का प्रमुख त्योहार है। आदिवासी समाज में करमवृक्ष मर्यादापुरूष के रूप में पूजित है। आदिवासियों का विश्वास है कि करमवृक्ष की पूजा से अच्छी फसल, पशुओं की रक्षा, स्वस्थ सन्तान, किशोरों केलिए सुयोग्य जीवनसाथी, शांति, सुख-समृद्धि आदि कामनाओं की पूर्ति होती है। करमा त्योहार के साथ आदिवासियों की एक लोककथा जुड़ी हुई है। त्योहार के दिन किशोर युवक-युवतियाँ खेतों से गीली मिट्टी उखाड़कर लाते हैं। फिर करम की डाल काटकर लाते हैं। गांव के पहान के नेतृत्व में 'करमा-धरमा' की कथा सुनाई जाती है ; सारी रात नाचते-गाते है। अगले दिन करम की डाली नदी में प्रवाहित कर दी जाएंगी।

उरांव, मुण्डा आदिवासियों के एक प्रमुख पर्व है सरहुल। इसमें सरना देवता की पूजा की जाती है। हर एक गांव में प्रत्येक सरना स्थल होती है। सरना स्थल पर गोबर-मिट्टी से लिपाई-पुताई की जाती है और गांव के प्रधान पूजारी पूजा की जाती है। सारे त्योहार प्रायः एक समान है फिर भी सब का अपना महत्त्व है। सब के पीछे आदिवासी जीवन परंपरा से जुड़े किसी न किसी कारण या विश्वास रहते है। 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में भी सरहुल पर्व का उल्लेख हुआ है। विस्थापन से लुप्त होती आदिवासी संस्कृति को उपन्यास में देख सकते हैं। "परम्पराजीवी और उत्सवधर्मी आदिवासियों की संस्कृति में तभी तो जीवित है यह कहावत की चलना ही नृत्य है, बोलना ही गीत...! सेन से सुसुन, का जी गे दुरंग ...! तभी तो जीवट से भरे वनस्पतियों के जीवन में भात के बाद कोई दूसरी बड़ी चिंता

नहीं होती, क्योंकि वे जानते है की यदि किसी समस्या का हल संभव है तो समस्या के प्रति चिंतित रह कार पर्व-त्योहारों के उल्लेख से क्यों वंचित रहे? क्योंकि वे समझते है की यदि किसी समस्या का हल होना असंभव है तो चिंतित होने से भी क्या होना ? व्यर्थ की चिन्ता में आज के रास-रंग को क्यों व्यर्थ होने दे?"[4] पहाड़िया जनजाति के बीच प्रचलित तीन दिवसीय शिकार-पर्व है बेझा-तुन। गाँव का बूढ़ा पुजारी शगुन विचार कर पूजा योग्य ज़मीन चुनता है। ज़मीन को साफ़ करके गोबर-पानी से लिपाकर सफ़ेद चावल की परत बिछाये जाते है। उसपर सफ़ेद कबूतर, लाल मुर्गे और बकरे की बली दी जाती है। पूजा के बाद अच्छे शिकार उपलब्ध होने की आदिम विश्वास इसके पीछे है।

आदिवासियों के कोई भी त्योहार-पर्व नृत्य-गीत के बिना पूर्ण नहीं होता। इसके साथ विभिन्न प्रकार के वाद्य भी बजाये जाते हैं – मादल, नगाड़ा, ढोल इत्यादि। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में झूमर नाच की चित्रण इस प्रकार की गई है- "बड़ा सा गोल घेरा बनाए नाच रही थी वनजाएँ। हरेक के बाएँ हाथ में दूसरी लड़की का हाथ था और दायें हाथ बगल वाली लड़की की कमर से लिपटा था। पारंपरिक वेश-सज्जा में सजी बालाएँ घेरे में झूमर नाच रहीं थी, गा रही थी।"[5]

'पठार पर कोहर' उपन्यास में "सरना देऊ का गीत गाते नाच रही लड़कियों की उल्लेख है –

"खद्दी चाँदी हिये रे नाद नौर
फागु चाँदी हिये रे नाद नौर
भर चाँदो चाँद रे नाद नौर
मिरिम चाँद हो-साँड़, ले उनाउऽऽऽ।

वनजाएँ कभी सिमट जाती है, कभी उलटे पाँव वापस लौटती हैं। भंवर की तरह सिमटना और फिर पोखर में केकड़ गिरने पर उत्पन्न तरंगों की भांती खुलना...!"[6] आदिवासी संस्कृति और कला का धरोहर है आदिवासी लोककथा और लोकगीत। इसका संबंध विभिन्न विषयों से होता है। जैसे पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि के बारे में भी हो सकता है। पर्व-त्योहार के समय ये गीत और कथाएँ बुजुर्गों द्वारा सुनाई जाती हैं।

आदिवासियों के बीच उनके देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों आदि को लेकर पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं। जिसका उद्देश्य रीति-रिवाजों, विश्वासों और प्रथाओं की पुष्टि करना होता है। ये लिपिबद्ध न होकर कल्पना के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। पशु-पक्षियों की आवाज़ों-ध्वनियों में भी आदिवासी लोग कथाएं ढूँढ़ लेते हैं। ऐसी कथाएं वर्तमान को अतीत के साथ जोड़ती हैं। 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास के ऐसी एक पात्र है बुलाकी मुंडा, जो कथाओं को इतिहास की भाँति उपस्थित कर देते हैं।

आदिवासी गीत-नृत्य, कथा आदि का एक रागात्मक मिलन 'घुमकुडिया' में होता है। घुमकुडिया में देर रात तक चलते है नृत्य - गीत - संगीत। घुमकुडिया यानी कि घोटुल प्रथा। आदिवासी संस्कृति में घोटुल प्रथा प्रमुख है। शाम होने के बाद गीत, नृत्य गाते हुए युवक-युवतियां गांव के बाहर झोंपड़ी में इकट्ठे हो जाते हैं। युवागृह, गितिओरा, रंगबंग, घुमकुडिया आदि नामों से भी घोटुल प्रथा परिचित है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में 'गितिओरा' शब्द का प्रयोग है। अविवाहित युवक-युवतियों के शयनस्थल है - गितिओरा। एक झोपड़ी में जीवन बिताने वाले आदिवासी परिवारों के पति-पत्नी के दैहिक संबंधों का निर्वाह एक समस्या है, जिसका समाधान युवागृह के जरिये होता है।

आदिवासियों के अंतिम संस्कार में भी अपने तौर-तरीके और मान्यताएं होती है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में हम देख सकते हैं कि रंगेनी के पति होकाना की मृत्यु के बाद अलग जगह पर जलाया जाता है। "होकाना को श्मशान में नहीं जलाया गया था। अपनी मौत तो मरा नहीं था, ऐसी देह श्मशान नहीं जाती। अलग दाह करने के बाद फूल (अस्थियां) बीन लिया जाते हैं, फिर उन फूलों को खूब भारी पत्थर के नीचे गाड़ दिया जाता है। नकटी दाई के टीले के पीछे ही कब्रिस्तान है जहां एक चट्टान के नीचे गड़ा है होकाना।"[7] मुण्डाओं के विश्वासों के अनुसार हत्या,

आत्महत्या, अकाल मृत्यु से मरनेवालों के देह श्मशान में नहीं जलाया जाता। अलग जगह जलाकर अस्थियों को पत्थर के नीचे दफन की जाती है।

'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में आदिवासी मृत्यु के एक वर्ष बाद होने वाले 'अम्बल अदेर' और 'थेन-दिरी' के उल्लेख हैं। मृतक का पुत्र या घर का मुखिया हाँडी को फोड़कर मृतात्मा को कम, क्रोध, लोभ, मोह सबसे मुक्ति देते हैं। 'थेन-दिरी' यानी कि मृतक की कब्र पर एक पत्थर की पटिया स्मृति पट्टिका के रूप में गाड़कर उसके चारों ओर भुने अनाज का लावा करने की परंपरा है। आदिवासियों के बीच मृत्यु - पुनर्जन्म के संबंध में ऐसे एक विश्वास है कि वे मृतक के राख की परत घर के चौखट पर छिड़ककर उसपर आए पदचिह्न देखकर अनुमान लगाते है कि मृतक किस रूप में धरती पर पुनर्जन्म लेगा। और 'बिद-दिरी' पहचान कर अपने घर आकर अपने वंशजों को आशीष दे सकता है।

निष्कर्ष :-

चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य जैसी हर एक कला अपनी संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रकृति-पूजा आदिवासी संस्कृति की पहचान है। आदिवासी जीवन पूरी तरह जंगलों पर निर्भर है। इसलिए वे जंगल को भी देवता की तरह मानकर पूजा करते हैं। आदिवासी समाज संस्कृति की दृष्टि से संपन्न रहा है। आदिवासी समाज विकास की गति से दूर, अपनी संस्कृति और परम्परा की रक्षा करने केलिए संघर्ष कर रहा है। विकास के नाम पर आदिवासियों की संस्कृति पर हुए संकट को साहित्य ने वाणी दी है। राकेश कुमार सिंह जी ने उपन्यासों में मुख्य रूप से झारखंड के आदिवासी जन-जीवन को आधार बनाया है। लेकिन इन उपन्यासों में चित्रित संस्कृति, रीति-रिवाज़, त्योहार-पर्व आदि केवल झारखंड आदिवासियों तक सीमित नहीं है। राकेश कुमार सिंह जी के उपन्यासों में मुंडा, उरांव, संथाल, पहाड़िया जन-जातियों के विभिन्न त्योहार-पर्व, मेला, कला, संस्कृति आदि का जीवन्त चित्रण है। यह केवल रचनात्मक संतुष्टि या परिपूर्णता के नज़रिए से नहीं लिखा गया है, बल्कि इस अनोखी संस्कृति को विश्व समाज के सामने उपस्थित करने के उद्देश्य से लिखा गया है। वास्तव में जंगली, बर्बर, पिछड़ा और असभ्य माने जानेवाले आदिवासियों की संस्कृति सभ्य कहने वाले मुख्यधारा समाज से कहीं ज़्यादा बेहतर और सुसंस्कृत है। जिस समाज में सबके बराबरी हो, अपनी सहजीवियों के प्रति प्रेम और भाईचारा हो, समता और सामूहिकता हो, वह समाज जंगली और असभ्य कैसे हो सकते हैं ? व्यवस्था से आक्रांत मुख्यधारा समाज आदिवासियों के बीच जाते हैं और उन्हें सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की चेष्टा करते हैं। राकेश कुमार सिंह जी ने आदिवासी संस्कृति और कला की सभी पहलुओं को अपने उपन्यासों में चित्रित करते हुए आदिवासियों की संस्कृति को सुरक्षित बनाए रखने के सार्थक प्रयासों पर बल दिया है।

संदर्भ सूची :-

1. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, 2005, पृ. 95
2. वही, पृ. 62
3. राकेश कुमार सिंह, महाअरण्य में गिद्ध, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2015, पृ. 103
4. वही, पृ. 104
5. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 77
6. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, 2005, पृ. 200
7. वही, पृ. 74

मोबाइल नं. : 8606585686

ईमेल : aiswarya6612@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 77-80
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पानीपत की तृतीय लड़ाई - भारतीय इतिहास का निर्णायक मोड़

Dr. Rashmi Malik
Assistant Professor of History,
Hindu Kanya Mahavidyalay , Jind

सारांश :-
पानीपत की तीसरी लड़ाई भारतीय इतिहास की निर्णायक लड़ाइयों में से एक मानी जाती है जिसने भारतीय उपमहाद्वीप की सामाजिक व राजनीतिक संरचनाओं को पूरी तरह से प्रभावित किया था। 18 वीं शताब्दी के अंतर्गत मुगल साम्राज्य की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर मराठे उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर अफगान का शासक अहमदशाह अब्दाली भारत में अपनी सत्ता को स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। इन दोनों शक्तियों के बीच ऐसी परिस्थितियों उत्पन्न हुई जो पानीपत के मैदान में युद्ध करने के लिए कारण बनी। पानीपत की इस निर्णायक लड़ाई में मराठा सेना को हार से दो-चार होना पड़ा, जिससे मराठो की उत्तर भारत में स्थिति कमजोर हो गई। पानीपत की तीसरी लड़ाई सिर्फ दो शक्तियों के मध्य की लड़ाई नहीं थी बल्कि भारतीय इतिहास का एक निर्णायक मोड़ भी थी, जिसने देश की राजनीति, शक्ति-संतुलन व समाज को गंभीर रूप से प्रभावित किया

प्रस्तावना :-

पौराणिक परंपरा व कथाओं के अनुसार पांडवों द्वारा स्थापित पांच शहरों में से एक पांडूप्रस्थ शहर था जो पानीपत के नाम से जाना जाता है। भारत के हरियाणा राज्य का यह क्षेत्र भारतीय इतिहास में हुई तीन प्रमुख लड़ाइयां के लिए जाना जाता है। ये लड़ाइयां भारतीय इतिहास के पन्नों पर अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी हैं। पानीपत की पहली लड़ाई 21 अप्रैल 1526 को बाबर और इब्राहिम लोदी के बीच हुई। वही पानीपत की दूसरी लड़ाई 5 नवंबर 1556 को अकबर एंव हेमचंद्र विक्रमादित्य के बीच हुई थी।

पानीपत की तीसरी लड़ाई 18वीं शताब्दी में लड़ी गई सबसे बड़ी और सबसे घटनापूर्ण लड़ाइयों में से एक मानी जाती है, जो 14 जनवरी 1761 को मराठा संघ और दुर्रानी साम्राज्य की हमलावर सेना के बीच हुई थी । यह लड़ाई दिल्ली से लगभग 97 किलोमीटर (60 मील) उत्तर में पानीपत शहर में और उसके आसपास हुई थी। अफगानों को भारत में तीन प्रमुख शक्तियों नजीब-उद- दौला, मुगल साम्राज्य के शासक और अवध नवाब शुजा-उद-दौला आदि का समर्थन प्राप्त था। अफगानी सेना का नेतृत्व अहमदशाह अब्दाली तथा मराठा सेना का नेतृत्व सदाशिवराव भाऊ ने किया था। सैन्य दृष्टि से, इस युद्ध में मराठों की तोपों, बंदूकों और घुड़सवार सेना का मुकाबला अफगानों और रोहिल्लाओं की भारी घुड़सवार सेना, बंदूक (जेज़ाइल) और घुड़सवार तोपखाने (ज़म्बुराक) से था। इस लड़ाई में कई दिनों तक चलने वाले संघर्ष के बाद मराठे पराजित हुए और अफगान सेना ने विजय का मुकुट पहना।

लड़ाई की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

नादिरशाह की मृत्यु के बाद अहमदशाह अब्दाली अफगानिस्तान का शासक बना। लाहौर व मुल्तान में होने वाले उत्तराधिकारी युद्ध ने अब्दाली के भारत पर आक्रमण की पृष्ठभूमि तैयार की। वहीं दूसरी ओर पंजाब के सूबेदार शाहनवाज खान ने अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए भी आमंत्रित किया। वास्तविक रूप से अब्दाली के भारत पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य भारत के धन को लूटना था। उसने भारत पर कुल सात बार आक्रमण किये थे। अब्दाली के पांचवें आक्रमण के दौरान पानीपत की तृतीय लड़ाई हुई थी। अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब के गवर्नर को पराजित करके पंजाब व सिंध के प्रदेशों को हस्तगत कर लिया। इससे भयभीत होकर बादशाह का वजीर गाजीउद्दीन मराठो के संरक्षण में चला गया और 12 अप्रैल 1752 को सिंधिया व होल्कर के साथ समझौता किया जिसके चलते बादशाह ने अपनी सुरक्षा के बदले पेशवा को पंजाब, सिंध और दोआब से चौथ वसूलने का आश्वासन दिया। इस प्रकार इस समझौते ने भविष्य में अफ़गानों एवं पेशवा के बीच संघर्ष को अनिवार्य बना दिया था।

समझौते के अनुसार मराठे उत्तर भारत में अपने वर्चस्व को स्थापित करने का प्रयास करने लगे। उसी समय पंजाब में भी सूबेदार की मृत्यु के बाद अव्यवस्था फैल गई थी। अब्दाली ने 1756 में अपने दूत कलंदर खान को शांति स्थापित करने के लिए भेजा। इस प्रकार धीरे-धीरे अब्दाली ने पंजाब में लाहौर पर अधिकार जमा लिया था। जनवरी 1757 में अब्दाली ने दिल्ली में प्रवेश करके मथुरा व आगरा को खूब लूटा और यहां से जाते समय भारत में आलमगीर द्वितीय को नया सम्राट, इमाद- उल- मुल्क को वजीर और नजीबुदौल्ला को मीर बख्शी नियुक्त किया। इसकी सूचना मिलने पर राघोबा या रघुनाथ राव ने उत्तर भारत की ओर प्रस्थान किया और दिल्ली जाकर नजीबुदौल्ला को मीर बख्शी के पद से हटा दिया और उसके बाद जुलाई 1758 में सरहिंद, लाहौर, अटक और पंजाब पर मराठों ने अधिकार कर लिया। जिसके चलते अब्दाली द्वारा नियुक्त पंजाब का गवर्नर तैमूरशाह पंजाब छोड़कर भाग गया। इस प्रकार नजीबुदौल्ला और तैमूर शाह ने अब्दाली से सहायता मांगी। जिसके फलस्वरुप अब्दाली ने मराठो को सबक सिखाने हेतु भारत पर पांचवा आक्रमण किया।

पानीपत की तृतीय लड़ाई के कारण :-

पानीपत की तीसरी लड़ाई प्रमुख रूप से भारत में राजनीतिक शून्यता, उत्तर मुगल शासको की दुर्बलताएं, सरदारों के आपसी स्वार्थ, मराठो का मुगल बादशाह को सहायता देने का वायदा, उत्तर भारत में मराठा शक्ति के विस्तार की महत्वाकांक्षा, मराठो की दिल्ली पर प्रभाव जमाने की इच्छा के साथ-साथ अहमद शाह अब्दाली द्वारा भारत की राजनीति में हस्तक्षेप, विदेशी मुसलमान को सहायता देने की नीति, अब्दाली की पंजाब व मुल्तान पर अपनी सत्ता स्थापित करने की इच्छा आदि कारण रहे हैं।

14 जनवरी 1761 को पानीपत की तृतीय लड़ाई की घटना :-

नवंबर 1759 में अहमद शाह अब्दाली ने पंजाब पर पुन: आक्रमण करके सिंधिया को पराजित किया और पंजाब पर अधिकार कर लिया। उसके बाद वह दिल्ली की ओर बढ़ा। अब्दाली ने जनवरी 1760 में बरौली घाट के युद्ध में दत्ताजी सिंधिया को पराजित किया और दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया। इस सूचना से पेशवा बालाजी बाजीराव चौकन्ना हुआ और उसने अपने चचेरे भाई सदाशिव राव के नेतृत्व में सेना भेजकर अब्दाली की अनुपस्थिति में दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अब दोनों शक्तियों ने लड़ाई से पूर्व उत्तर भारत के विभिन्न सरदारों को अपने पक्ष में करने के अनेक प्रयत्न किये।

अब्दाली ने कहा कि मैं दिल्ली के मुस्लिम राज्यों को दक्षिण के मराठो की लूटमार से बचाने हेतु भारत में रुका हुआ हूँ। वही सदाशिव राव ने कहा कि मैं विदेशियों को भारत से खदेड़ने में सभी से सहयोग की मांग कर रहा हूं। इस प्रकार अब्दाली का साथ अनेक मुस्लिम शासको, अवध के नवाब, रूहेलखंड के नेता नजीबुदौल्ला और

वहीं मराठों को शुरुआती दौर में सूरजमल का साथ प्राप्त हुआ लेकिन बाद में वह भी पीछे हट गया। लेकिन इससे मराठों का उत्साह किसी भी प्रकार से कम नहीं हुआ। 14 जनवरी 1761 को बुधवार के दिन पानीपत के मैदान में दोनों सेनाओं के बीच लड़ाई शुरू हुई।

इस लड़ाई में इब्राहिम गार्दी मराठो की तरफ से तोपखाने का प्रमुख था। वही मल्हार राव होल्कर युद्ध के बीच में ही मैदान छोड़कर भाग गया। इस लड़ाई में अब्दाली की सेना ने मराठो को बुरी तरह से पराजित किया और मराठों का भीषण नरसंहार किया। इस लड़ाई में पेशवा का जेष्ठ पुत्र विश्वास राय, सदाशिव राव, जसवंत राव, तुकोजी सिंधिया आदि युद्ध में मारे गए। इब्राहिम गार्दी, जानकोजी का भी बाद में कत्ल कर दिया गया। इस लड़ाई का आंखों देखा वर्णन काशीराज पंडित ने किया। इस लड़ाई में मराठो की पराजय की सूचना पेशवा बालाजी बाजीराव को एक व्यापारी ने कूट संदेश के रूप में देते हुए कहा था कि **"दो मोती विलीन हो गए, सत्ताइस सोने की मोहरे लुप्त हो गई और चांदी और तांबे की तो पूरी गणना ही नहीं की जा सकती"**। **जे.एन. सरकार** के अनुसार, **"संपूर्ण महाराष्ट्र में मुश्किल से एक भी परिवार ऐसा नहीं था जिसने अपने किसी न किसी व्यक्ति की मृत्यु पर विलाप न किया हो"।**

मराठों की पराजय के कारण :-

इस लड़ाई में मराठों के पराजित होने के निम्नलिखित कारण इस प्रकार थे-

- मराठा सेनापति सदाशिव राव के व्यवहार से अनेक सरदार इससे असंतुष्ट थे। क्योंकि वह किसी कार्य में अन्य मराठा सरदारों से सलाह लेना आवश्यक नहीं समझता था और प्रत्येक कार्य में अपनी ही मनमानी करता था।
- मराठों के पास शुरुआती दौर से ही धन की कमी थी और उसके पास खाद्य सामग्री भी पर्याप्त नहीं थी जिसका फायदा उठाकर अब्दाली ने उनकी खाद्य आपूर्ति बंद करवा दी थी।
- मराठों की सेना सामंतवादी संगठन से पीड़ित और अनुशासनहीन थी। मराठों में सादगी, कर्मठता और कठोर अनुशासन के गुण नष्ट हो चुके थे। उनकी सेना के साथ स्त्रियां भी जाने लगी थी। इसके विपरीत अब्दाली की सेना अनुशासित थी और उनके नायकों में भी एकता थी। मराठों की अपेक्षा अब्दाली की सेना संख्या में अधिक और अत्यंत वीर व साहसी थी।
- अफगानों का तोपपखाना मराठों से श्रेष्ठ था। मराठों की तोप भारी वजन वाली थी जिनको इधर-उधर घुमाना तथा निशान बांधना बहुत ही मुश्किल था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं की मराठों की असफलता व पराजय के बहुत से कारण रहे हैं जिनके कारण उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा।

पानीपत की तृतीय लड़ाई के परिणाम :-

- **अपार जनशक्ति का विनाश** – इस लड़ाई में मराठों की अपार जनशक्ति नष्ट हो गई थी। महाराष्ट्र में मुश्किल से ही ऐसा कोई घर बचा था जिसने अपने किसी को न खाया हो।
- **पेशवा के प्रभाव का अंत -** पानीपत की इस लड़ाई के कुछ समय बाद पेशवा बालाजी बाजीराव की भी मृत्यु हो गई थी और उसके बाद उसका 17 वर्षीय पुत्र पेशवा बना। इस समय मराठों सरदारों में आपसी संघर्ष व कलह ने मराठों की शक्ति को गहरा आघात पहुंचा। पेशवा इनको अपने अधीन नहीं कर पाया और धीरे-धीरे पेशवा की शक्ति कम होती चली गई।
- **उत्तरी भारत पर प्रभाव की समाप्ति** – पानीपत की हार से उत्तरी भारत में मराठों का प्रभाव सदा के लिए समाप्त हो गया था।

- **मुगलों का पतन** – इस लड़ाई से मुगल शासको की दुर्बलता सबके सामने प्रकट हुई जिसका फायदा आगे चलकर अंग्रेजों ने उठाया।
- **अंग्रेजों का उत्थान** – मराठों की पराजय का एक और परिणाम यह निकला कि अंग्रेज अब बिना संकोच के अपने ध्रुत नीतियों को तेजी से कार्यरूप देने लगे थे। क्यूंकि अजेय कहलाने वाले मराठों के आंतरिक संघर्ष और भारत की आंतरिक स्थिति से अंग्रेज भली-भांति परिचित हो गए थे जिसके फलस्वरूप आगे चलकर 1764 में अंग्रेजों ने अपने राज्य की नींव डाली।

पानीपत की तीसरी लड़ाई के परिणामों को बताते हुए **आर. बी. सरदेसाई** ने लिखा है कि "पानीपत की तृतीय लड़ाई ने यह तय नहीं किया कि भारत पर कौन राज करेगा बल्कि यह तय किया कि भारत पर कौन राज नहीं करेगा अर्थात मराठे शासन नहीं करेंगे"। इस प्रकार इस युद्ध ने भारतीय इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया।

निष्कर्ष :-

भारत के इतिहास की सबसे रक्त रंजित लड़ाईया में से एक लड़ाई पानीपत की तृतीय लड़ाई थी। यह लड़ाई न केवल मराठों की राजनीतिक वर्चस्व की असफलता की प्रतीक थी बल्कि यह भारतीयों के बीच सहयोग हीनता और भविष्य में अंग्रेजों के वर्चस्व की नींव की भी संकेतक थी। इस लड़ाई ने मराठों की आंतरिक कमजोरी, आपसी समन्वय की कमी और सेना के अनुशासन व आपूर्ति व्यवस्था की असफलता को भी उजागर किया। **आर.सी. मजूमदार** ने इस पर नजर डालते हुए लिखा है कि "यह लड़ाई भारतीय शक्तियों के आपसी सहयोग के अभाव का प्रतीक थी, यदि सिख, राजपूत, जाट और अन्य भारतीय शक्तियां साथ होती तो परिणाम अवश्य ही भिन्न हो सकता था"।

संदर्भ ग्रंथ-

1. गर्द्रे, प्रभाकर ,(2025), पानीपत का तीसरा युद्ध 1761 ई., बी. आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन।
2. मांडोत, डॉ दिनेश, (2012), पानीपत के तीन निर्णायक युद्ध, पाइंटर पब्लिशर्स।
3. वर्मा, आभास, (2013), पानीपत की तीसरी लड़ाई, भारतीय कला प्रकाशन।
4. रालिन्सन, एच. जी., (2024), पानीपत के अंतिम युद्ध का लेखा जोखा, लाइफ स्पैन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. यादव, डॉक्टर के. सी., (2013), हरियाणा का इतिहास (आदिकाल से 1966 तक)।
6. अहमद, डॉक्टर अयाज, (2023), हरियाणा का इतिहास (प्राचीन काल से आधुनिक काल तक), कल्पना प्रकाशन दिल्ली।
7. खत्री, कुमार सुरेश, (2013), मराठों का इतिहास, किताब पुस्तक सदन, भोपाल।
8. ग्रोवर, बी.एल., अन्य, (2018), आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, एस चंद प्रकाशन।
9. अहीर, राजीव, (2021), आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स, प्रा. लि.प्रकाशक।
10. सरकार, यदुनाथ, (2007), मुगल साम्राज्य का पतन, ओरिएंट ब्लैक स्वैन पब्लिशर्स।

Contact – 9812532133

Email- rashmiashok4@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 81-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत की राजनीति में जाति समूह का महत्व

कविता यादव
नेट हिंदी साहित्य,
ग्राम-मौसमपुर, पोस्ट-गोठड़ा, तहसील-तिजारा जिला खैरथल- तिजारा राजस्थान

शोध सारांश

जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसमें सदस्य जन्म से ही जाति तय की जाती है, प्रमुख तौर से जातियों का विभाजन स्वर्ण जाति, पिछड़ी जाति, अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति के रूप में किया जाता था. यह भारतीय इसाई तथा मुसलमान वर्ग में भी राजनीति में प्राथमिकता होती है, सभी जातियो को राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया जाता है, भारत में आरक्षण प्रणाली की जानकारी मिलती है जिससे भारत में जातिगत राजनीति प्रणाली के साथ न्यायिक सहायता भी पहुंचने में तथा नियंत्रण स्थापित करती है. प्रत्येक जाति समूह की आवश्यकता के अनुरूप अपनी मांग होती है जो राजनीति को प्रभावित करती है तथा उसमें प्रतिनिधित्व की मांग की जाती है भारत में राजनीति प्रतिनिधित्व निम्न जाति की महिलाओं से अधिक उच्च जाति की महिलाओं से माना जाता है, राजनीति पर जातिगत प्रभाव हमेशा रहता है राजनीतिक दल जन समूह को प्रभावित करने के लिए जातिवाद को सहारा बनाते हैं, पिछड़ी जाति, दलित जाति के स्थान के लिए प्रतिनिधित्व दिलाने की मांग की जाती रही है अब तो राजनीतिक दलों के द्वारा संविधान का भी प्राकृतिक रूप से व्याख्या की जाती है, इसका वास्तविक उद्देश्य केवल कुछ जातियों को संतुष्ट करना होता है जिसके कारण जातियों का विकास राजनीति का प्रमुख विचारधारा को धूमिल करता है I

संकेता अक्षर

क्षेत्रियवाद, जाति व्यवस्था, निर्वाचन, राजनीति संसद की कार्यशाली

प्रस्तावना

हिंदुस्तान में वोट बैंक राजनीति का मुख्य आधारशिला जाति है, राजनीति के पदानुक्रम में जाति सत्ता तक पहुंचाने का आधार है जिससे समाज के सम्बन्धो का समाज तक पहुंचाना होता है मतदाता केवल अपनी जाति विशेष को देखकर ही अपना मत उम्मीदवार को देता है, राजनीति में जाति के आधार राजनीति गतिशील होती रहती है, उदाहरण के लिए वर्तमान राजनीति में महिलाओं की राजनीतिकरण प्रतिनिधित्व में योगदान बहुत ही अधिक दिखाई पड़ता है, भारत के प्रमुख जाति एक महत्वपूर्ण कारक बन चुकी है सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार लागू होने के बाद सभी वर्ग की राजनीति बढ़ चुकी है, संवैधानिक क्रिया के प्रादुर्भाव से यह संभावना हैI कि देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था शुरू होने के बाद जाति व्यवस्था समाप्त हो जाएगीI लेकिन जाति व्यवस्था की पृष्ठभूमि बढ़ती जा रही है जो लोकतंत्र के लिए खतरा हो सकती है भारत की राजनीति में जाति एक भयंकर बीमारी है जो नकारात्मक ऊर्जा देश के

अंदर बढ़ती जा रही है जिससे देश अंदर खोखला होते जा रहा है, यह हमारे आर्य संस्कृति के लिए अच्छा नहीं है हमें उससे बचना चाहिएI भारत का निर्वाचन आयोग समय-समय पर जागरूकता अभियान के द्वारा मतदाता को जातिगत दलगत विचारधारा से ऊपर उठने की कोशिश करता है इस प्रकार मतदाता जातिवाद को लेकर जागरूकता तथा कुप्रभावों की शिक्षा से अवगत निर्वाचन आयोग करवाता हैI

जाति का राजनीति के साथ रिश्ता

भारत की राजनीति में आजादी के पश्चात से ही जाति की भूमिका बहुत अधिक बढ़ गई हैI जातिगत राजनीति भारतीय मतदान का भिन्न अंग है बन गया है और यह सामाजिक बुराई के साथ व्यस्क मत अधिकार लागू होने के बाद भी राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरी है भारत में जाति की राजनीति को इस प्रकार देखा जा सकता है-

1.भारत की व्यवस्था में जाति एक प्रमुख सामाजिक पहलू माना जाता है जो सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित करता है और राजनीतिक स्वरूप को अभिप्रेरित करता है I

2 राजनीति के संगठन भी इस कार्य में अपना पूर्ण सहयोग करते हैं संगठन की आधारशिला भी जाति व्यवस्था पर टिकी हुई है जो प्रत्यक्ष में प्रमुख रूप से जातिवाद का प्रमुख आधार दिखाई पड़ता है I

3 मुख्यतः लोकतंत्र की राजनीति प्रक्रिया में सामाजिक संरचना के आधार पर चलती है तथा यह सामाजिक संरचना समाज में व्याप्त मूल्य से बनती है भारत के सामाजिक मुद्दों में कि जातिवाद व्याप्त है जिससे यह जातिगत राजनीति को प्रेरित करती है I

4 मूल रूप से राजनीतिक दल सिद्धांतों की दिखावे करते हैं तथा जाति व्यवस्था का विरोध करते हैं परंतु चुनाव के समय परोक्ष या अपरोक्ष रूप से जाति के आधार पर उम्मीदवार को टिकट देते हैं तथा बैंक वोट की राजनीति का एक हिस्सा है I

5 भारत में राजनीतिक दल का प्रभुत्व किस प्रकार निश्चित होता है वह राजनीति में दल कितनी जातियों का प्रभाव है तथा उसे जातिगत लोगों की कितनी जनसंख्या भारत निवास करती है उतना ही राजनीतिक दल वोट बैंक का फायदा उठाता है I

6 भारत सरकार जातियां बनाने की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भूमिका में होती है जब जाति विशेष दल किसी राजनीतिक दल को परोक्ष समर्थन करता है तो अब से उनकी मांगों का ध्यान रखा जाता है ताकि सरकार में उनके लोगों की भूमिका अधिक रहे I

7 भारतीय राजनीति का संघर्ष के प्रमुख आधारशिला जाति गद्य व्यवस्था को माना जाता है क्योंकि समाज में विभिन्न जातियों के लोग सामाजिक समन्वय स्थापित न करके जाति दलों का जातिगत प्रतिनिधित्व के प्रलोभनों में आकर अपने मतों का प्रयोग करते हैं जिससे संघर्ष उत्पन्न होता है I

8 भारत के अंदर कार्यपालिका का आधार मंत्रिमंडल प्रतिनिधित्व भी जातिगत वोट बैंक का महत्व स्पष्ट दिखाई देता है I

9 भारत की संसद व्यवस्था में कानून व नियमों का निर्माण संशोधन जाति को देखकर किया जाता है इन बदलाव की वजह से जाति का प्रभाव पड़ता है I

10 राजनीतिक दल प्रत्याशियों को चुनाव योग्यता तथा सेवा के तत्वों को दर किनारे रखते हुए मुख्य जातीय मापदंडों से किया जाता है I

चुनाव की राजनीति में जाति का महत्वपूर्ण भूमिका

जातिगत संगठन के उदय चेतना का उद्भव भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को बदल कर रख दिया है I जिसके कारण अब भारतीय राजनीति का जाति एक अभिन्न अंग बन चुकी है भारत की चुनाव प्रणाली में जाति इस प्रकार से देखा जा सकता है I प्रथम यह की उम्मीदवार को जाति के आधार पर चुनाव किया जाता है अथवा यह प्रमुख रूप से देखा जाता है चुनाव उम्मीदवार को पार्टी टिकट का बंटवारा उम्मीदवार की जाति को देखकर करते हैं I दूसरा पहलू है कि भारत में राजनीतिक दल का बनना मुख्य रूप से जातियों का समर्थन नहीं होता है I उदाहरण के तौर से बहुजन पार्टी, आजाद मोर्चा पार्टी का आधार दलित वर्ग का समर्थन लेना होता है इसके लिए पिछड़ी जाति का समर्थन भी होता है I

पॉल बास के अनुसार "जातियों का महागठबंधन कहा था" किसी रणनीतियों के अनुसार राजनीतिक दल चुनाव लड़ने के कारण जातियों के आधार पर ही टिकट तय करता है I यह भी सही माना जाता है की वोटर अपने मत को जाति के आधार से अपना उम्मीदवार चुनते हैं I

इस संदर्भ विशेष में रजनी कोठारी ने कहा है कि "राजनीति के जातिवाद जाति का राजनीतिकरण से ना कम है ना अधिक है" अन्य विशेष शब्दों में राजनीति का प्रभाव अधिक नहीं पड़ता था I जाति व्यवस्था भारत में सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है I जो सामाजिक संस्था को मजबूती के साथ खड़ी है आधुनिक युग में जाति का वर्चस्व विद्यमान है यहां तक की सरकार बनाई जाती है I इसमें मुख्यमंत्री भी जातिगत समीकरण को ध्यान में रखा जाता है मध्य प्रदेश में मोहन यादव मुख्यमंत्री हैं I राजस्थान में भजनलाल ब्राह्मण इस प्रकार राजनीति में जातिगत निर्णय सरकार की हर पक्ष में थोड़ा बहुत जरूर दिखाई देता है और कोई भी सरकार इससे बच नहीं सकती है तथा राजनीतिक दल इसका अनदेखा नहीं कर सकते हैं I जाति भारत में शासन व्यवस्था को उचित ठहरने की व्यवस्था बन गई है इस प्रकार लोगों में जातिगत झगड़ा भी शुरू हो जाते हैं I आधुनिक भारतीय संविधान 1976 में नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम को समाप्त कर दिया है I भारत में जाति पार्टी कभी नहीं मिट सकती कांग्रेस व अन्य दल ने भी राजनीतिक का मुख्य आधार जाति के वोट बैंक को ध्यान में रखा जाता है जिसके परिणाम स्वरुप निचली जाति के वोट किसी एक पार्टी को चले जाते हैं I

निष्कर्ष

जाति और राजनीति एक दूसरे को प्रभावित करें बिना नहीं रह सकती है I राजनीतिक दल का निर्माण से लेकर विघटन के कारकों में जाति का अग्रिम भूमि का होती हैI उत्तर भारत के प्रमुख राज्य जैसे यूपी, बिहार राजस्थान राज्यों में जातिगत समीकरण हावी होते हैं I आरक्षण से पिछड़े समाज में कई नेताओं की भागीदारी होती है भारतीय राजनीति में लाभकारी परिवर्तन होता रहता हैI परन्तु साथ ही साथ समाज विभिन्न जातियों के मध्य हिंसा की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है भारतीय नेता जाति को उनके सफल बनाने में सहयोग दिया जाता हैI भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के बाद भी राजनीति में जाति का महत्व को नकार नहीं जा सकता है I

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मेहता प्रताप भानु -द वर्ल्ड ऑफ़ डेमोक्रेसी नई दिल्ली 2003
2. रजनी कोठारी- कॉस्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स ओरिएंट हैदराबाद 1970
3. गुप्ता दीपंकर- इंटेरोगेटिव कास्ट नई दिल्ली पेंगुइन2000
4. शाह घनश्याम- कास्ट एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया न्यू दिल्ली परमानेंट बैंक 2004

5. भंडारी विजय - राजस्थान की राजनीति में सामंतवाद से जातिवाद के भंवर - नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन 2007
6. पॉल और बॉस -कॉस्ट फंक्शन एंड पार्टी इन इंडियन पॉलिटिक्स 42, 44, 46, 2007
7. शर्मा के एल- भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन -रावत पब्लिकेशन जयपुर 2008 पृष्ठ संख्या 54,56, 58

मोबाइल नंबर 8432691616
Kavitayadav14688@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 85-89
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी दलित कहानियों का कला पक्ष

रूपम कुमारी
शोधार्थी हिन्दी विभाग
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा – 852113

दलित कहानियों को लंबे समय तक केवल विचारधारा और प्रतिरोध के साहित्य के रूप में देखा गया, जिससे उनके कलात्मक पक्ष की उपेक्षा होती रही। जबकि वास्तविकता यह है कि इन कहानियों में न केवल पीड़ा और प्रतिकार की अभिव्यक्ति है, बल्कि वे कथानक संरचना, चरित्र-चित्रण, प्रतीकात्मकता, भाषा-शैली और संवाद की सजीवता जैसे सभी कलात्मक तत्त्वों से भी परिपूर्ण हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, रत्नकुमार सांभरिया, सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, जयप्रकाश कर्दम, रूपनारायण सोनकर जैसे रचनाकारों ने हिन्दी दलित कहानी को एक विशिष्ट कलात्मक ऊँचाई प्रदान की है। उनकी कहानियाँ जातीय उत्पीड़न और सामाजिक बहिष्कार को संवेदनशील ढंग से चित्रित करते हुए न केवल पाठक के हृदय को झकझोरती हैं, बल्कि अपने शिल्प और शैली से भी प्रभावित करती हैं। सुशीला टाकभौरे की कहानियाँ जहाँ स्त्री-दलित अनुभव को भावप्रवण भाषा में बाँधती हैं, वहीं जयप्रकाश कर्दम और रूपनारायण सोनकर वर्गीय संघर्ष को प्रतीकात्मक शिल्प में ढालते हैं। मोहनदास नैमिशराय की कथाएँ वैचारिकता और व्यंग्यात्मक भाषा के माध्यम से सामाजिक सच्चाइयों को उद्घाटित करती हैं, जबकि रत्नकुमार सांभरिया और सूरजपाल चौहान अपने कथ्य में आँचलिकता और स्थानीयता का रंग भरते हैं।

दलित कहानी की कला :

दलित कहानी ही नहीं, समूचे दलित साहित्य की कला चेतना को लेकर समय-समय पर आरोप लगाए जाते रहे हैं। इसकी आलोचना इस आधार पर होती रही है कि यह साहित्य शिल्प, कथ्य और भाषा की दृष्टि से अपेक्षाकृत कमजोर है। कई गैर-दलित साहित्यकार तो इसकी भाषा को 'गाली-ग्लौज की भाषा' कहकर खारिज कर देते हैं। उनका मानना है कि दलित कहानियों में वह लालित्य, वह कलात्मक संरचना नहीं होती जो पाठकों को आकृष्ट कर सके। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि दलित साहित्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित साहित्यिक मानदंडों को अस्वीकार करता है। दरअसल, दलित साहित्य का अपना विशिष्ट सौंदर्यशास्त्र होता है, जो पूँजीवादी, सामंतवादी, ब्राह्मणवादी और वर्चस्ववादी प्रवृत्तियों पर तीव्र प्रहार करता है। इस संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "हिन्दी साहित्य की सामन्ती, ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों ने जिन विषयों को त्याज्य माना, जिन्हें अनदेखा किया, उनपर लिखना मेरी प्रतिबद्धता है।"[1]

भाषा और शैली :

दलित साहित्य में संस्कृतनिष्ठ, क्लिष्ट और चमत्कारी शब्दावली को अनुपयुक्त माना गया है। दलित कहानीकारों ने दलित जन-जीवन की सच्चाइयों को उजागर करने हेतु जटिल और संस्कृतनिष्ठ परंपरा का विरोध करते हुए सरल, सहज और बोधगम्य भाषा को अपनाया है। इस संदर्भ में रजत रानी मीनू की टिप्पणी विशेष रूप से उल्लेखनीय है - "कुछ दलित कथाकारों ने संस्कृत निष्ठ जटिल शब्दावली से युक्त भाषा और परंपरागत हिन्दी साहित्य के सौंदर्य बोधक तत्वों, उपमाओं, रूपकों और अलंकारों इत्यादि का निषेध किया है। दलित कथा साहित्य में अपने परिवेशानुकूल मौलिक सौंदर्य बोधक उपमाओं से युक्त सहज-सरल साहित्यिक भाषा प्रयुक्त हुई है।"[2]

शिल्प :

कहानी की सफलता लेखक के रचनात्मक कौशल और भाषाई दक्षता पर निर्भर करती है। कई दलित कहानीकारों ने अपनी बेजोड़ शिल्प का उदाहरण दिया है। उदाहरणस्वरूप ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' की निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख किया जा सकता है - चायवाला उसके ठीक सामने तनकर खड़ा हो गया। दोनों हाथ कूल्हों पर टिकाकर सीना चौड़ा करते हुए बोला, "यो पैसे सहर में जाके दिखाणा। दो पैसे हो गए जेब में तो सारी दुनिया को सिर पे ठाये घूमो... ये सहर नहीं गाँव है... यहाँ चूहड़े-चमारों को मेरी दुकान में तो चाय ना मिलती... कहीं और जाके पियो।"[3] इस तरह की भाषा को अन्य कई दलित कहानीकारों ने प्रयोग किया है।

संरचना (कथा-विधान)

हिन्दी दलित कहानी का शिल्प पक्ष तब अधिक सशक्त रूप में उभरता है जब हम उसके कथा-विधान की पड़ताल करते हैं। इन कहानियों की संरचना पारंपरिक कथा ढाँचे से भिन्न होती है, क्योंकि इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन या नैतिक शिक्षा देना नहीं, बल्कि समाज की विद्रूपताओं को उजागर करना, चेतना को झकझोरना और हाशिए की आवाज़ को केंद्रीय बनाना होता है। इसलिए दलित कथाकारों ने कथा की पारंपरिक रेखीय संरचना को तोड़ते हुए उसे एक अधिक अनुभवात्मक और प्रयोगधर्मी रूप प्रदान किया है। प्रसिद्ध दलित आलोचक कंवल भारती लिखते हैं - "प्रेमचंद के रचना कर्म में दलित दयनीय स्थिति में तो है पर उसमें विद्रोह बिलकुल नहीं है। वे अपने ऊपर अत्याचार करने वालों से स्वयं ही डरे-सहमे रहते हैं, उनके दलित पात्र धर्म-जाल में जकड़े हुए हैं, उनकी आस्थाएं अंधी और अटूट हैं और वे इस सत्य से पूर्णतः अनजान हैं कि वे अंधी आस्थाएं ही उनकी दीनता तथा गरीबी के मुख्य कारण हैं। वास्तव में प्रेमचंद के साहित्य में यही दलित विमर्श दलितों के कटु सामाजिक यथार्थ का दर्पण है जो क्रांतिकारी है, क्योंकि यह परिवर्तन की समझ विकसित करता है। प्रेमचंद अपने दलित विमर्श में इस तथ्य से भी बेखबर नहीं हैं कि दलित-शिक्षा ही दलित मुक्ति का आधार है।"[4] इस संदर्भ में सुशीला टाकभौरे की 'टूटता वहम', 'दिल की लगी', 'सारंग तेरी याद में', 'भूख', 'मुझे जवाब देना है', 'विचारभूमि', 'मेरा बचपन', 'झरोखे', 'मेरा समाज', सूरजपाल चौहान की 'बहुरूपिया', 'अम्मा', 'विश्वासघात', 'एक भद्दा मजाक', 'झूठ के दो चेहरे', 'उँचे लोगों के बीच', 'धोखा', मोहनदास नैमिशराय की 'गोल्ड' रजनी दिसोदिया की 'छोटी बहू' आदि उल्लेखनीय कहानी है।

संवेदना और सौंदर्यशास्त्र :

डॉ. आंबेडकर की विचारधारा दलित साहित्य के इस सौंदर्यबोध की नींव बनाती है। उन्होंने जीवन को 'स्वाभिमान, समता और न्याय' के मूल्यों पर पुनर्स्थापित करने का जो संकल्प दिया, वह दलित सौंदर्यशास्त्र की धुरी बन जाता है। इस दृष्टिकोण में शील (नैतिकता), संघर्ष (प्रतिरोध) और समता (समानता) केवल वैचारिक आदर्श नहीं, बल्कि सौंदर्य के मापदंड हैं। जिस रचना में ये मूल्य जितने गहरे और सजीव होते हैं, वह उतनी ही कलात्मक और प्रभावकारी मानी जाती है।

पात्रों का चित्रण :

हिन्दी दलित कहानी का एक सशक्त कलात्मक पक्ष उसके पात्रों का चित्रण है, जो केवल कथा को आगे नहीं बढ़ाते, बल्कि दलित जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और अस्मिता को मूर्त रूप देते हैं। ये पात्र जीवन्त, बहुआयामी और यथार्थपरक होते हैं। वे न तो केवल पीड़ित हैं, न ही पूर्णत: क्रांतिकारी; बल्कि दोनों के बीच झूलती हुई एक ऐसी चेतना हैं, जो अनुभवों की आँच में तपकर सामने आती है।

इन पात्रों के माध्यम से दलित कथाकारों ने नायकत्व की परंपरागत अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया है। अब नायक वह नहीं जो समाज को उपदेश देता है या आदर्शवादी भूमिका निभाता है, बल्कि वह है जो व्यवस्था से टकराता है, प्रतिरोध करता है और अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करता है। इस दृष्टि से ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी सलाम का 'हरीश', रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बकरी के दो बच्चे' का 'दलपत', चमरवा कहानी का 'दरपन दास' महत्त्वपूर्ण पात्र है, जो अपमान और बहिष्कार की स्थितियों में भी अपने सम्मान की रक्षा करता है और झुकता नहीं।

प्रतीक, बिंब और रूपक :

दलित कथाकारों ने उन प्रतीकों का सृजन किया है जो दलित समाज की सांस्कृतिक स्मृति, अपमानबोध, प्रतिरोध और अस्मिता से निकले हैं। ये प्रतीक पारंपरिक भारतीय साहित्य के ब्राह्मणवादी प्रतीकों से भिन्न हैं। उदाहरणतः ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'ग्रहण', 'जिनावर', 'ब्रह्मास्त्र', रत्नकुमार सांभरिया की 'डंक', 'हथौड़ा', श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'हाथ तो उग ही आते हैं', जयप्रकाश कर्दम की 'पगड़ी', पूरण सिंह की 'अरथी' आदि इसी तरह की कहानियां हैं। इन कहानियों के प्रतीक दलित जीवन की ज़मीनी हकीकत से निकले हैं, जो उनके बहिष्करण, अभाव और श्रमशील अस्तित्व को गहराई से अभिव्यक्त करते हैं।

संवाद और कथोपकथन :

दलित कहानियों में संवादों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी आंचलिकता और स्वाभाविकता है। ये संवाद शहरी शिक्षित समाज की परिष्कृत भाषा से नहीं, बल्कि दलित, ग्रामीण और श्रमिक वर्ग की बोलचाल की भाषा से जन्म लेते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी संग्रह 'तलाश' में प्रयुक्त भाषा और संवादों में उस सामाजिक वर्ग की अस्मिता और अपमानबोध स्पष्ट झलकता है, जिससे पात्र आते हैं। संवाद पाठक को पात्रों के अनुभव से जोड़ते हैं, और भाषा की अनगढ़ता, दरअसल, अनुभव की प्रामाणिकता को और प्रखर करती है।

आँचलिकता के संदर्भ में रत्नकुमार सांभरिया की एक कहानी 'काल' का उदाहरण लिया जा सकता है – "मल्ली का हल्का सा पक्का रंग था। उमर बाईसेक थी। चेहरे पर चेचक के मीह-मीह कण थे, बाजरे के दाने सरीखे। बाईं आंख में तिल भर फूला था। एक समय वह अंगूर की बेल की तरह गहनों से लदी रहती थी। विश्वामित्र ने राजा हरीश्चंद्र का राजपाट तक छीन, उन्हें खाख छानने छोड़ दिया था। नाक के एक कांटे को छोड़, मल्ली के बदन पर गहने का एक कांटा भी नहीं छोड़ा था दुष्ट काल ने। मुन्नी के पांवों के पॉजेब खोलकर उसने मिनखू को पकड़ा दिए थे और नीचे देखती सुबक-सुबक रोने लगी थी।"[5] इस प्रकार, हिन्दी दलित कहानी का संवाद पक्ष केवल भाषा की संरचना नहीं, बल्कि विचार और संवेदना का जीवंत माध्यम है। यह न केवल कथा के यथार्थ को सघन करता है, बल्कि दलित साहित्य की लोकधर्मी, प्रतिरोधात्मक और आत्मबोधकारी प्रवृत्तियों को भी उजागर करता है।

वाचन शैली और पाठकीय प्रभाव :

दलित कहानी की वाचन शैली में प्रयुक्त भाषा, लय और चित्रात्मकता पाठक को कहानी में डुबो देती है। यह शैली कभी तीव्र, कभी धीमी, कभी गूंजती हुई और कभी पूरी तरह मौन भी हो सकती है। सूरजपाल चौहान की एक कहानी 'शीलू का परमेश्वर' का अंध उद्धृत है, जो दलितों के यथार्थ स्थति का दर्शाता है, जो पाठकों को बांधे रखती है – "शीलू झूठ बोल-बोलकर तंग आ चुकी थी। लेनदारों का उसके घर पर आना और उसके पति से उल्टा-सीधा बोलना उसे अच्छा नहीं लगता था। लेकिन वह करती भी क्या ?"[6] इस प्रकार, दलित कहानी की वाचन शैली

कोई निष्क्रिय माध्यम नहीं, बल्कि वह एक सक्रिय उपकरण है—जो पाठक और कथा के बीच सेतु का कार्य करते हुए सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अंतरात्मा की गूंज बन जाती है।

अनुभव की प्रामाणिकता :

हिन्दी दलित कहानी की सृजनात्मकता का मूल स्रोत उसका अनुभव-आधारित यथार्थबोध है। यह साहित्य उस वर्ग की देन है, जिसने सामाजिक बहिष्कार, अपमान और पीड़ा को केवल देखा नहीं, स्वयं जिया है। इसलिए इस साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है—भुक्तभोगी दृष्टि की प्रामाणिकता, जो इसे केवल संवेदनात्मक या बौद्धिक लेखन नहीं रहने देती, बल्कि उसे एक जीवित सामाजिक दस्तावेज़ बना देती है। यही दृष्टि कहानी को औपचारिकता से ऊपर उठाकर सच्चाई की ऊष्मा से भर देती है। वैसे तो पूरा दलित साहित्य यथार्थ का साहित्य है। आत्मकथा और कहानी में यह प्रवृति अधिक दिखाई देती है। लेकिन यह अनुभव ऐसी कहानियों में अधिक देखी जा सकती है, जो प्राय: मैं शैली में लिखी गयी है। सूरजपाल चौहान और सुशीला टाकभौर की अधिकतर कहानियाँ इसका उदाहरण है। इस संदर्भ में सूरजपाल चौहान की कहानी 'ऊँच-नीच का भूत' में कहानीकार ने अनुभवजन्य यथार्थ की दाहकता को अभिव्यक्त किया है। कहानी के आरंभ में ही कहानी की आत्मकथ्यपरकता के माध्यम से समाज में ऊँच-नीच की भावनाओं को प्रमाणिक बताया है। वे लिखते हैं - ..अब इसे आत्मकथा कहूँ, कहानी या फिर कथा-संस्मरण। दलित लेखक जब भी लिखेगा सच ही लिखेगा। उसे गैर-दलित लेखकों की तरह लेखन में 'गप्प' मारना नहीं आता, वह शब्दों की जुगाली भी नहीं करता और न लिखते समय मिथकीय दुनिया में जीता है। दलित कहानीकार सत्य और संवेदनाओं को अपने कथा प्रसंगों का प्रतिपाद्य बनाकर सामाजिक जीवन की बीभत्सता और विद्रूपता को समाज के सामने रखता है। मैंने आज तक जितनी भी कहानियाँ लिखी हैं, सब की सब सत्य घटनाओं पर आधारित हैं। सच कहूँ, मैं अपने कथा-पात्रों से हमेशा बतियाता रहा हूँ।"[7] अत: अनुभव की प्रामाणिकता न केवल कथ्य की सच्चाई को पुष्ट करती है, बल्कि कथा को एक ऐसे सृजनात्मक आयाम में भी ले जाती है, जहाँ आत्मबोध और साहित्यबोध का अद्वितीय संगम दिखाई देता है।

निष्कर्षत: दलित कहानीकारों की रचनाएँ न केवल सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करती हैं, बल्कि वे कला की दृष्टि से भी समृद्ध और प्रभावशाली हैं। प्रस्तुत अध्याय में विश्लेषित कहानियाँ—ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' और 'घुसपैठिए', मोहनदास नैमिशराय की 'अपना गाँव', जयप्रकाश कर्दम की 'पगड़ी', सूरजपाल चौहान की 'शीलू का परमेश्वर', 'धोखा', 'नया ब्राह्मण', श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'ओल्ड एज होम', 'शोध-प्रबंध', 'भरोसे की बहन', रत्नकुमार सांभरिया की 'बकरी के दो बच्चे' और 'फुलवा', टेकचंद की 'एटीएम', सुशीला टाकभौरे की 'संघर्ष' और 'टूटता वहम', रजत रानी मीनू की 'सेरोगेट मदर' तथा सुमित्रा महरौली की 'प्रतिकार'—सभी कथानक, भाषा, प्रतीक योजना और पात्र-निर्माण की दृष्टि से अपनी कलात्मकता को स्थापित करती हैं।

इस प्रकार, हिन्दी दलित कहानी का सौंदर्यबोध केवल सामाजिक उद्देश्य तक सीमित न होकर एक प्रभावशाली कला-रूप में विकसित हुआ है, जो परंपरागत कथा-शिल्प को एक नई दिशा प्रदान करता है। यह स्पष्ट होता है कि दलित कहानीकारों ने अपनी विशिष्ट जीवनानुभूतियों को एक सशक्त कला-रूप में ढालकर हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध किया है।

संदर्भ :

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, आत्मकथ्य, दूसरी दुनिया का यथार्थ, सं. रमणिका गुप्ता, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, संस्करण -1997
2. रजत रानी मीनू, हिन्दी दलित कथा साहित्य अवधारणाएँ और विधाएँ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण – 2010, पृ. 265

3. सलाम(कहानी संग्रह) ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली, संस्करण – 2023 ई., पृ. 12
4. दलित विमर्श की भूमिका, कंवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2004, पृ. 119
5. दलित समाज की कहानियां, पृ. – 117
6. ब्रह्मराक्षस, सूरजपाल चौहान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2022, पृ. - 74
7. ब्रह्मराक्षस, सूरजपाल चौहान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2022, पृ. - 94

Gmail : rupamkumarivivo@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 90-94
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं मानवीय मूल्य : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

डॉ0 नन्द किशोर शर्मा,
सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय,
भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज0)

सारांश
शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने तथा एक न्यायसंगत समाज और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इक्कीसवीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। इस नीति में भारत की विविधता और संस्कृति के प्रति सम्मान रखते हुए स्थानीय और वैश्विक सन्दर्भ में देश की भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है। कई चुनौतियों के रूप में मानव जीवन का संकट, वैश्विक पर्यावरण मे असंतुलन आदि क्षेत्रों में पर्याप्त चुनौतियाँ पाई गई हैं। इस शोध पत्र में नई शिक्षा नीति के मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा के महत्त्वपूर्ण पहलुओं की संभावनाओं तथा चुनौतियों का अध्ययन तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समाज पर होने वाले सकारात्मक प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानवीय मूल्य, संभावनाएँ और चुनौतियाँ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं मानवीय मूल्य : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

प्रस्तावना : भारत विकास और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रहा एक जनसंख्या बहुल देश है। इसकी जनसंख्या में युवा वर्ग का अनुपात अधिक है और आने वाले समय में यह निरन्तर और भी बढ़ेगा। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का माध्यम होती है और उसी से समाज की चेतना एवं सामर्थ्य विकसित होता है। प्राचीनकाल से भारत के पास ज्ञान और शिक्षा की समृद्ध एवं व्यापक परम्परा रही है किन्तु अंग्रेजी राज में उपनिवेश के दौर में एक भिन्न दृष्टिकोण को लागू करने के लिए उसे प्रश्नांकित करते हुए लॉर्ड मैकाले के मंतव्य के अनुरूप और देश की संस्कृति के प्रतिकूल शिक्षा व्यवस्था थोपी गई। शिक्षा में उत्कृष्टता लाने के लिए विभिन्न आयोगों और शिक्षाविदों द्वारा समय–समय पर सुझाव दिए जाते रहे हैं और इन पर अमल करने के लिए कुछ प्रयास भी हुए किन्तु पर्याप्त मात्रा में ध्यान देने के लिए संसाधन और इच्छाशक्ति के अभाव में गम्भीर प्रयास नहीं हो सके।

शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक हस्तक्षेप की आवश्यकता

यदि आजादी के समय से तुलना की जाए तो आज भारत में साक्षरता, शिक्षण संस्थाओं की संख्या और विद्यालयों में नामांकन भी बढ़ा है। इस पर हम गर्व भी महसूस कर सकते हैं परन्तु जब विद्यार्थियों की उपलब्धि, गुणवत्ता और ज्ञान में वृद्धि की बात करते हैं तो स्थिति बड़ी चिन्ताजनक दिखती है। उच्च शिक्षा पाकर बेरोजगार डिग्रीधारकों की संख्या भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शिक्षा जगत की विभिन्न विडम्बनाओं के चलते शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए कई बार आवाज उठती रही है परन्तु अन्योन्य कारणों से शिक्षा व्यवस्था का प्रश्न टलता गया फलस्वरुप 1986 में नई शिक्षा नीति आने के बाद मात्रात्मक सुधार के अतिरिक्त कोई ठोस सुधार या बदलाव प्राप्त नहीं किया जा सका। वर्तमान सरकार ने बड़ी संजीदगी के साथ समाज मे व्यापक विचार–विमर्श के पश्चात् सन् 2020 में एक नई शिक्षा नीति जारी की।

नई शिक्षा नीति विद्यार्थियों को अध्ययन विषयों के चयन में व्यापक अवसरों का प्रावधान करते हुए विविध संभावनाओं के द्वार खोलती है। आज सभी महसूस कर रहे हैं कि अन्तर–अनुशासनिक अध्ययन के बिना समुचित अध्ययन सम्भव नहीं है। ऐसे में कला, विज्ञान, वाणिज्य और व्यावसायिक विषयों की पारस्परिक निर्भरता का सम्मान करना आवश्यक है। नई शिक्षा नीति में विभिन्न विषयों की पारस्परिक निर्भरता का प्रावधान किया गया है जो निश्चय ही एक स्वागत योग्य कदम है। अंग्रेजी को विश्वभाषा मान लेने से अनुकरण की भावना और पराधीनता की प्रवृत्ति को ही बढ़ावा मिलता है। पूर्वाग्रह और भेदभाव के कारण अंग्रेजी हम लोगों पर हावी होती जा रही है। वैसे सभी देशों में मातृभाषा को ही प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है और इसका महत्व वैज्ञानिक अध्ययनों से भी सिद्ध होता है। नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत मातृभाषा को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जाना एक स्वागत योग्य निर्णय है।

प्राचीनकाल से ही भारत अपने ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करता रहा है क्योंकि भारत की शिक्षा पद्धति हमेशा से ही सर्वश्रेष्ठ रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में शिक्षा जगत की गरिमा को पुनः स्थापित करने के लिए विभिन्न शैक्षिक आयोगों एवं विद्वानों द्वारा अपने विचार प्रस्तुत किए गए और उन्हीं के आधार पर भारत की शिक्षा नीतियाँ बनती रही हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूलभूत भारतीय चिन्तनधारा में विश्वास करने वाले विद्वानों ने कठोर परिश्रम से नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तैयार कर राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत की है जिससे हम पुनः शिखर को प्राप्त करने का आधार तैयार करने की ओर अग्रसर हो सकें।

शिक्षा नीति किसी भी देश के भविष्य को तैयार करने का सबसे अहम पड़ाव होती है। इस नीति में सन् 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन–पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है।राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत एक ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की गई है जहाँ किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध हो।

मूल्यों की अवधारणा एवं अर्थ : भारत एक मूल्य प्रधान देश है तथा भारतीयों ने अपने सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर ही विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बना रखी है। मानवीय मूल्यों के अभाव में हमारा सम्पूर्ण जीवन ही पशुतुल्य है। मानवीय मूल्यों के कारण ही मानव सृष्टि के अन्य प्राणियों से अपनी अलग सत्ता बनाए हुए है। मानव एक विवेकशील प्राणी है तथा उसमें विचारशक्ति है। विचारशीलता के कारण ही मानव आदर्श मूल्यों की आवश्यकता अनुभूत करता है। मानवीयता व्यक्तिगत भावनाओं और सामाजिक मान्यताओं में सामंजस्य और संतुलन बनाती है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मूल्यों का सामान्य प्रत्यय होता है जो मानव जीवन के प्रत्येक पहलू जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक रूप में अभिलक्षित होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मानवीय मूल्यों जैसे सहानुभूति, सम्मान, सत्यता, सहयोग, राष्ट्रीय एकता इत्यादि संभावनाओं एवं चुनौतियों की ओर प्रमुख रुप से ध्यान केन्द्रित किया गया है जो इस लेख का मुख्य विषय है।

शिक्षा की संभावनाएँ और चुनौतियाँ : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत प्रदान का जाने वाली शिक्षा की दिशा, संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित है –

1. भाषायी विविधता को संरक्षण : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कक्षा 5 तक की प्रारम्भिक शिक्षा में मातृभाषा या स्थानीय भाषा को अध्यापन के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है। विद्यालयी और उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों के लिए संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकल्प उपलब्ध होगा परन्तु किसी भी छात्र पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी।

2. पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन सम्बन्धी सुधार : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक विषयों एवं पाठ्यक्रम व पाठ्येत्तर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अन्तर नहीं होगा। कक्षा 6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा और इसमें इन्टर्नशिप की व्यवस्था भी की जाएगी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (**NCERT**) द्वारा विद्यालयी शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम रूपरेखा (National Curriculum Framework For School Education) तैयार किया जाएगा। विद्यार्थियों की प्रगति के मूल्यांकन के लिए मानक–निर्धारक निकाय के रूप में **परख** (**PARAKH**) नामक एक नए राष्ट्रीय आकलन केन्द्र की स्थापना की जाएगी।

3. शिक्षण व्यवस्था से सम्बन्धित सुधार : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षण व्यवस्था सम्बन्धित सुधार भी किए जाएंगे जिनमें शिक्षकों की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन तथा समय–समय पर किए गए कार्य–प्रदर्शन आकलन के आधार पर पदोन्नति किए जाने का प्रावधान है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (**NCTE**) द्वारा 2025 तक शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक (National Professional Standards For Teachers -**NPST**) का विकास किया जाएगा। वर्ष 2030 तक अध्यापन के लिए न्यूनतम योग्यता 4 वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रम की डिग्री का होना अनिवार्य होगा।

4. भारतीय उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत देशभर के उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए एक एकल नियामक अर्थात् भारतीय उच्च शिक्षा परिषद् (Higher Education Commission of India - **HECI**) की परिकल्पना की गई है जिसमें विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करने हेतु कई कार्यक्षेत्र होंगे। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग चिकित्सा एवं कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एकल निकाय के रूप में कार्य करेगा।

5. विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विशेष आवश्यकता वाले बालकों के लिए क्रॉस विकलांगता प्रशिक्षण एवं संसाधन केन्द्र, आवास, उपयुक्त प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारम्भिक से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से शिक्षा प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना आदि प्रक्रियाओं को सक्षम बनाया जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा को नवीन तथा उन्नत तकनीकी के साथ व्यापक रुप से उपयोग करके स्वीकार किया गया है।

6. उच्च शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधान : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उच्च शिक्षा के विकास की बात कही गई है। इसके तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में **सकल नामांकन अनुपात** (Gross Enrollment Ratio - GER) को 26.3 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मल्टीपल एन्ट्री एवं एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है। विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिए एक एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (Academic Bank of Credit - **ABC**) बनाया जाएगा।

7. डिजिटल शिक्षा का विकास : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में डिजिटल शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधान भी किए गए हैं। जिसके अन्तर्गत एक स्वायत्त निकाय के रूप में राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (National Educational Technology Forum-**NETF**) का गठन किया जाना प्रस्तावित है। जिसके द्वारा डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण, मूल्यांकन, कार्ययोजना एवं प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकेगा।

8. सभी वर्गों तक शिक्षा की पहुँच को आसान बनाना : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य शिक्षा को सरल, सतत एवं सभी वर्गों तक पहुँचने वाली बनाना हैं। इस दिशा में शिक्षा के अवसरों को सुलभ एवं समयगत बनाने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की सामाजिक सरोकारिता को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्राथमिकता दी जा रही है जिससे ग्रामीण परिवेश के बच्चे भी बिना किसी बाधा के अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

9. मानवीय मूल्यों को वरीयता : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है – मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करना। यह नीति शिक्षा प्रदान करने के साथ ही मानवीय मूल्यों के प्रति भी विद्यार्थियों को जागरूक करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। इनमें प्रमुख रूप से अहिंसा, सत्यता, आत्मविश्वास, सहयोग तथा राष्ट्रीय एकता आदि सम्मिलित है।

10. विद्यार्थियों में सामाजिक समरसता की शिक्षा का प्रसार : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की संरचना में विभिन्न जातियों, वर्गों, धर्मों और समुदायों के विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक समरसता को बढ़ावा देना प्रमुख है। इसके अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की विविधताओं को समझाने, समरसता को बढ़ावा देने और समाज में समरसता के मानवीय मूल्यों को अभिप्रेरित करने के लिए विभिन्न उपागमों एवं माध्यमों का उपयोग किया जाएगा।

11. मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के अभाव की चुनौती : वर्तमान समय में प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का अभाव देखा गया है। कुशल एवं प्रशिक्षित शिक्षकों के साथ–साथ आवश्यक आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता नगण्य है। तत्कालीन प्रशासनिक

तंत्र भी इन मूलभूत संसाधनों के अभाव में बेबस नजर आता है। ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्याएँ हैं।

12. महँगी शिक्षा प्रणाली : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विदेशी विश्वविद्यालयों/संस्थानों के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया गया है। विद्वानों का अभिमत है कि भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश से भारतीय शिक्षण व्यवस्था महँगी होने की संभावना है। इसके परिणामस्वरूप निम्न वर्ग के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो जाएगा।

13. शिक्षकों के पलायन की चुनौती : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों/संस्थानों के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त होने के बाद दक्ष शिक्षकों की आवश्यकता होगी। इसका परिणाम यह होगा कि भारत के प्रशिक्षित एवं दक्ष शिक्षक भी इन विश्वविद्यालयों या संस्थानों में अध्यापन कार्य हेतु पलायन कर सकते हैं।

14. राज्यों से असहयोग की आशंका : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन में एक बड़ी चुनौती राज्यों से असहयोग की हो सकती है। शिक्षा एक समवर्ती सूची का विषय होने के कारण अधिकांश राज्यों के अपने विद्यालयी बोर्ड हैं। नई शिक्षा नीति को कार्यान्वित करने के लिए राज्यों को सामने आना होगा। इसके साथ ही शीर्ष नियंत्रण संगठन के तौर पर एक राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक परिषद् को लाने सम्बन्धी विचार का राज्यों द्वारा विरोध हो सकता है।

15. मानवीय संसाधनों का अभाव : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सफल क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा या चुनौती मानवीय संसाधनों के अभाव की हो सकती है। वर्तमान के प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षकों का अभाव है। कुशल, प्रशिक्षित एवं सक्षम शिक्षकों के अभाव में नई शिक्षा नीति को वास्तविक रूप से धरातल पर उतारने काफी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

निष्कर्ष : केन्द्र सरकार ने इक्कीसवीं सदी के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु जिस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी है अगर उसका क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले आएगी। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है जिसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व प्राथमिक शिक्षा (3–6 आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना है। स्नातक स्तरीय शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमता (आर्टिफिशियल इन्टेलिजेन्स), थ्री डी मशीन, आँकड़ों का विश्लेषण, जैव–प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समावेशन से अत्याधुनिक क्षेत्रों में भी कुशल पैशेवर व्यक्ति पैदा होंगे जिससे युवाओं की रोजगार क्षमताओं में वृद्धि होगी। यह देखा गया है कि विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में बिजली, स्वच्छ पेयजल, शौचालय, खेल मैदान, पुराना पाठ्यक्रम, पुस्तकालय एवं वाचनालय, मानवीय संसाधनों की कमी, कम्प्यूटर एवं तकनीकी सुविधाओं का अभाव है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली प्रभावित होती है। नई शिक्षा नीति के सामने एक मुख्य चुनौती कुशल, प्रशिक्षित एवं सक्षम शिक्षकों की कमी को दूर करना भी है। मूल्य आधारित शिक्षा को लागू करना हमारी प्रमुख चुनौती है और यह राष्ट्र के हित में प्रबुद्ध नागरिक बनाने के लिए शिक्षा जगत के साथ मिलकर काम करने की क्षमता दिखाने के लिए सभी नागरिकों के लिए यह एक सुअवसर है जिसका सभी को सदुपयोग करना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. Eva, Johanson (2014). Children's Perspectives on Values and Rules in Early Education. *Australian Journal of Early Childhood, AJEC, Vol. 39*, No. 2.
2. Business Standard. (2020). National Education Policy 2020: The major reforms recommended. https://www.business-standard.com/article/education/national-education-policy-2020-the-major-reforms-recommended-120072901437_1.html
3. Hindustan Times. (2020). Explained: What is New Education Policy 2020 and how will it change India's education system. https://www.hindustantimes.com/education/what-is-new-education-policy-2020-and-how-will-it-change-india-s-education-system/story-GS9yrO0PWYNZDk6vsv4jrL
4. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0
5. Press Information Bureau, Government of India. (2020). Cabinet approves National Education Policy 2020. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx ? PRID=1649174

6. The Indian Express. (2020). Explained: What is the NEP and how will it change education in India? https://indianexpress.com/article/education/national-education-policy-explained-6541145 /
7. The Times of India. (2020). Key Highlights of National Education Policy 2020. https://timesofindia.indiatimes.com/home/education/news/new-education-policy-2020 highlights/articleshow/77246682
8. Dainik Bhaskar. (2020). National Education Policy 2020: A New Revolution in Indian Education System https://www.dainikbhaskar.com/article/education/national-education-policy-2020- a new revolution in indian education system.html
9. Verma, J. (2018). Social Values in Psychology in India revisited: *Development in the discipline, Sage Publishers, New Delhi.*

मोबाईल : 94147 – 33480
ई–मेल : sharmank17@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 95-98
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Aligning Yoga with Present-Day Education

Dr. Rajesh Kumar Sinha
29/3 Grasim Staff Colony, Birla Gram Nagda
Academic Administrator, SSVM Khachrod, Ujjain

"Discipline is the bridge between goals and accomplishment. In yoga and education, it is the foundation of all success**"**
- Swami Chinmayananda

Abstract
In today's fast-paced and competitive world, education is often viewed as a means to academic achievement and career success, focusing heavily on intellectual and technical skills. However, this narrow definition overlooks the holistic purpose of an individual's development—especially their physical, emotional, and spiritual well-being. Yoga, an ancient practice rooted in Indian culture, offers a complementary dimension to education by nurturing the mind, body, and soul.
Yoga, derived from the Sanskrit root *'yuj'*, meaning "to unite," is a holistic system that integrates physical postures (asanas), breath control (pranayama), concentration (dharana), and ethical living (yama and niyama). It is much more than physical fitness—it is a lifestyle of discipline, awareness, and inner harmony.
Education, in its true sense, is not only about acquiring information but about forming character, building discipline, and preparing individuals to lead meaningful lives. In Indian philosophy, the goal of education (*vidya*) is self-realization and self-discipline.
Furthermore, integrating yoga into modern educational systems addresses a growing need to counter rising stress levels, poor lifestyle habits, and lack of focus among students. Yoga acts as a bridge between physical health and intellectual growth. Therefore "Aligning yoga with present-day education" is not merely a blend of physical activity and academics; it is an essential step toward creating balanced, mindful, and value-driven individuals.
Key words
Yoga, Education, Prospectus, Discipline, Integration, Values, Life Lessons, Indian Culture, Mental and Physical Wellbeing, Self-Awareness.

Preface

From a cultural perspective, **yoga** embodies the timeless and universal values of **Indian civilization**. At its core, yoga emphasizes **discipline (niyam)**, **self-restraint (yama)**, **respect for nature**, **inner peace**, and **harmony**—values deeply woven into the Indian way of life. Yoga is not merely a set of physical exercises but a profound philosophy aimed at uniting the body, mind, and spirit. This integration reflects the foundation of the **Indian Knowledge System (IKS)**, which views education as a holistic journey toward self-realization rather than just academic achievement.

In ancient India, this philosophy was embedded in the **Gurukul system**, where students lived with their teachers and engaged in a comprehensive learning experience. Alongside traditional subjects like mathematics, grammar, and astronomy, the curriculum included **yoga**, **meditation**, and **moral education**. These practices were not optional add-ons but integral components of the learning process. The goal was not just to create scholars but to nurture **complete human beings**—individuals who were intellectually sound, emotionally mature, morally grounded, and spiritually aware.

Swami Vivekananda famously described this approach as "**man-making education**," emphasizing that education must build character, strengthen the mind, and expand the heart. In alignment with this vision, **Swami Chinmayananda** asserted that "True education is training of the head, heart, and hands." This implies that intellectual development alone is insufficient without emotional intelligence and ethical values.

By revisiting these traditional ideals and incorporating them into modern educational systems, we not only honor our cultural heritage but also address many severe challenges faced by today's learners that is, stress, anxiety, lack of focus, and disconnection from values. Studies show that over **80%** of students experience daily stress, with around **59%** reporting anxiety and **43%** facing depression. Additionally, about **67%** struggle with concentration, often due to academic pressure and lifestyle imbalances. Emotional burnout and a sense of disconnection are also rising, with nearly **1 in 5** college students admitting to suicidal thoughts and **64%** dropping out due to mental health concerns. These alarming statistics highlight the urgent need for holistic interventions in education.

Yoga offers profound benefits that directly enhance the teaching and learning experience in modern educational settings. It significantly improves **concentration**, allowing students to stay focused for longer periods. Research indicates that regular yoga practice strengthens cognitive functions, including **memory retention** and **mental clarity**, which are critical for effective learning.As students face increasing academic pressure, yoga serves as a grounding practice that promotes **emotional regulation**, helping them manage anxiety, frustration, and stress.

Moreover, yoga fosters **physical well-being**, improving posture, stamina, and overall health—factors that influence attendance and energy levels in school. With consistent practice, students begin to experience **heightened self-awareness**, leading to better decision-making, increased **patience**, and a more composed approach to challenges. These inner qualities not only enhance **academic performance** but also improve **classroom behavior**, creating a more focused and respectful learning environment.

Teachers also experience transformative benefits from incorporating yoga into their routines. Teaching is a high-stress profession, often leading to burnout and emotional fatigue. Yoga helps reduce **stress levels**, boosts **emotional resilience**, and enhances **job satisfaction**. When teachers are calm and centered, their interactions with students improve, fostering a more supportive and nurturing classroom culture.

Today, educational institutions across India and around the world are increasingly recognizing the importance of **holistic education**—an approach that nurtures not only the intellectual but also the emotional, physical, and spiritual aspects of a learner. In line with this growing realization, **yoga** has gained significant attention as a transformative practice that aligns perfectly with the objectives of a well-rounded education.

In India, this awareness is reflected in key policy initiatives. The **National Education Policy (NEP 2020)** emphasizes the integration of traditional Indian knowledge systems, including yoga, into mainstream education. It promotes the development of life skills, emotional intelligence, and mental well-being, all of which yoga inherently supports. Additionally, national education boards like **CBSE** and **NCERT** have taken steps to include

yoga in school curricula, not just as physical exercise but as a means to cultivate mindfulness, discipline, and inner stability.

Despite these progressive steps, successful implementation on a wide scale requires overcoming certain challenges. One key requirement is **adequate teacher training**—educators must be well-equipped not only in performing yoga but in understanding its underlying philosophy and benefits. Additionally, **awareness campaigns** are essential to inform parents, students, and school authorities about yoga's role in holistic development.

Importantly, yoga should be presented in a **secular and inclusive** manner, focusing on its universal benefits rather than religious interpretations. This ensures that students from all backgrounds feel comfortable and included. When implemented thoughtfully, the inclusion of yoga can transform classrooms into environments of calm, creativity, and cooperation, helping students become not only better learners but also healthier and more compassionate human beings. Contributing to the greater good of the human race.

Conclusion

In conclusion, **aligning yoga with present-day education is not merely a nostalgic return to traditional practices**, but a progressive step toward creating a more balanced, value-based, and **human-centered** approach to learning. In a world increasingly dominated by competition, technology, and performance pressure, education often becomes limited to academic achievement and job-oriented goals. While these are important, they fall short in nurturing the emotional intelligence, ethical grounding, and inner strength required to thrive in life. Yoga bridges this gap by nurturing the **mind, body, and spirit**, offering tools to build a more holistic and resilient learner.

Integrating yoga into education does not undermine modern pedagogy but **complements it**, creating space for students to develop vital life skills such as **concentration, patience, discipline, empathy, and emotional balance**. These qualities are essential not only for academic success but for leading a fulfilling life. Through practices like asanas, pranayama, meditation, and ethical reflections (yama and niyama), students gain better control over their thoughts and actions, improving focus and reducing stress. In doing so, yoga lays the foundation for **life readiness**, equipping students to navigate challenges with confidence and calm.

Importantly, this integration aligns deeply with the **Indian cultural vision of education**. In ancient India, education (vidya) was always seen as a sacred journey—not just toward knowledge acquisition but toward **self-realization**, inner harmony, and **service to society**.incorporating yoga fosters **inclusivity and universality**. When presented in a secular and culturally sensitive manner, yoga transcends religious boundaries, promoting values of peace, unity, and self-awareness among all students, regardless of background.

Thus, the reintegration of yoga into modern education is a timely and necessary evolution. It ensures that learners are not only better professionals but also **better human beings**—grounded in values, conscious of their responsibilities, and capable of contributing positively to society. In embracing yoga as part of the curriculum, we honor our heritage while building a compassionate, mindful, and enlightened future generation.

Reference

1. https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC11472122/?utm_source=chatgpt.com
2. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf?utm_source=chatgpt.com
3. https://news.ucdenver.edu/the-effects-of-yoga-on-student-mental-health/
4. https://www.parents.com/benefits-of-yoga-for-kids-7406600?utm_source=chatgpt.com
5. https://njppp.com/fulltext/28-1531306776.pdf?utm_source=chatgpt.com
6. https://en.wikipedia.org/wiki/Stress_management?utm_source=chatgpt.com

7. https://transformingeducation.org/student-stress-statistics/?utm_source=chatgpt.com
8. https://en.wikipedia.org/wiki/Mindfulness-based_stress_reduction?utm_source=chatgpt.com

sinha5272@gmail.com
M-7694901201

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 99-103
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

BITCOIN – A DIGITAL ASSET

Dr. Anju Singla
Associate Professor
Department of Commerce Vaish College, Rohtak

ABSTRACT
Over the last few decades, a remarkable development in information and communication technology has been observed. Eventually, a significant growth in online transactions, such as buying, selling, trading, and payments, has been observed in our daily lives. This technological advancement came with a new concept named "Cryptocurrency". Bitcoin is one of the cryptocurrencies that has become very popular and widely used in recent years. In this paper, the focus will be on understanding the basic essence of Cryptocurrencies, then digging deep into the origin and meaning of bitcoin, its basic procedures, ways of dealing in it, applications, upcoming benefits and the risks faced while dealing in bitcoin. Lastly, a little effort will be made to discuss the introduction of cryptocurrency in India and how it will impact our economic society.
KEYWORDS: Cryptocurrency, Bitcoin, Blockchain, Digital currency

INTRODUCTION

Cryptocurrency represents a significant shift of the global financial system from the traditional fiat money governed by central banks to the virtual currency which is operating on a decentralized network powered by Blockchain technology which maintains the ledger of all transactions transparently and permanently. It ensures the integrity, authenticity and uniqueness of transactions. As the world moves towards digitalization, transformation is seen in how the value is stored, exchanged and perceived in today's world, addressing the risk of physical currency. A new era of financial transactions had started with the emergence of Bitcoin, a decentralized digital currency based on the blockchain. Bitcoin (symbolized as BTC) is a cryptocurrency (a virtual currency) designed to act as money and a form of payment outside the control of any one person, group or entity. This removes the need for trusted third party involvement (e.g. a bank) in financial transactions. (Investopedia.com)

EVOLUTION OF BITCOIN [1]

Cryptocurrency can be explained as a digital currency which is independent from central banks based up on blockchain technology and cryptographic protocols ensuring the security of transactions. The basic essence of this innovation and its most impactful outcome was Bitcoin. It was introduced in October 2008, under the pseudonymous figure **Satoshi Nakamoto** which was introduced in response to the Global financial crisis. It is based on blockchain technology, countering the flaws of central banking, inflation issues ensuring the security of transactions. Use of Bitcoin as a currency began in 2009, with the release of its open-source implementation. It

ignites the financials and technological revolution, redefining the trusts, ownership and very concept of digital money.

PROCEDURES AND MODE OF DEALING [2]

Bitcoin operates as an independent network, maintaining the ledger that records cryptocurrency transactions. When any transaction is executed, broadcast to a network and gets verified by participants, we call as **miners.** These miners solve the complex mathematical functions for confirming the transactions and in return, they receive the rewards in the form of Bitcoins. Users need to maintain the digital wallets for storing and dealing which use a pair of cryptographic keys – Public & private.

Today's cryptocurrency is seen more like a digital asset for people to invest in and earn profits from the spread similar to investors in the securities market. From the investor's viewpoint, there are various ways of dealing with cryptocurrencies. Individuals and institutions can deal in cryptocurrencies in various ways involving:

1. **Crypto exchanges** – Platforms such as Binance, Coindcx, WazirX and many more offer easy trading in cryptocurrency on a worldwide basis on 24*7 basis. It uses fiat money or other cryptocurrencies to deal in Bitcoin and hold them as investments.
2. **Digital wallets** – Investors use hot (online, convenient) as well as cold (offline, secure) digital wallets for storing the cryptocurrencies and dealing as per their convenience.
3. **Bitcoin ETF & Funds** – Traditional Investors can earn gains by indirectly holding the share in the regulated investment vehicle indexed to Bitcoin without actually holding any direct ownership and reducing the market exposure.
4. **Peer to Peer Platforms** – It is commonly known as P2P transaction involving the direct exchange between buyer and seller without involving any middlemen and executing the transactions at negotiated prices.
5. **DeFi & Lending** – Various platforms come up with the idea of offering cryptocurrencies on loan basis against stake in assets, providing interest income and security as well. This structure is similar to the financial lending by financial institutions.

Hence, Bitcoin works as a digital currency as well as a digital asset, attracting investors ranging from retail investors to large institutions from all over the world.

APPLICATION [6]

With the introduction of digital currency, people are exploring various applications for the currency. Moving forward with technological advancement, many new uses of digital currency have been explored, and further innovations are being done. Some of the applications of Bitcoin in today's society are as follows:

1. **Financial Inclusion** – In many remote regions deprived of proper banking facilities, Bitcoin can ensure financial inclusion for them without implementing formal banking infrastructure. It can be used for financial growth by introducing virtual currency and other modern-day innovations.
2. **Bitcoin ATM and Physical access –** As of 2025, especially in North America, some regions in Europe and some other areas in the world, Bitcoin ATMs are being installed, providing easy access for buying and withdrawing the cryptocurrency similar to Fiat currency.
3. **E-commerce and Retail payments –** Globally, many regional merchants and payment gateways are directly accepting Bitcoins as a mode of payment. Globally, the trend of using virtual currency for online purchasing of goods and services is growing rapidly.

4. **Cross-border payments and remittances –** Bitcoin allows fast, low-cost money transfer internationally without relying on the traditional and conventional banking infrastructure and intermediaries. Particularly, this is relevant for developing economies with currency instability.
5. **Digital Investment Asset –** Bitcoin has become a popular source among the future generation. Many has started recognizing the it as "Digital Gold". It is widely used by individual investors, hedge funds and corporations as a hedge against economic inflation and fiat currency devaluation, hence addressing the lacuna of conventional currency.
6. **Decentralized Finance (DeFi) Integration –** Bitcoin can be used in the DeFi ecosystem in a way similar basic functioning of financial institutions involving lending, borrowing and interest income generation through the decentralized protocols. The lending and borrowing are done against the stake the assets.

With the modern world's innovation and invention, more creative applications of virtual currency are being explored. Various economies around the world are exploring the possibilities of including cryptocurrency as a formal currency for the nation. It included defining the laws, governance and developing the financial institutions controlling the cryptocurrency.

UPCOMING BENEFITS AND POTENTIAL RISKS [3][5][9]

With the digital advancement and introduction of virtual currency, society has experienced many changes over the period, which have proven to be beneficial for the people. Some of the benefits are as follows:

1. **Financial Sovereignty and Inclusion –** Bitcoin empowers the people from the regions which are economically unstable, remote or experiencing hyperinflation to have control over their actual wealth without involving any centralized financial institutions. It provides easy access to currency, virtually enabling them to execute business transactions without having proper financial infrastructure in place.
2. **Government and Institutional adoption –** Governments from all over the world are exploring the potential opportunities to implement legal infrastructure around Bitcoin for treasury diversification, national blockchain infrastructure and addressing the shortcomings of traditional physical currency.
3. **Hedge against inflation –** Due to demand and supply forces, global economic conditions and various other matters lead to an inflationary effect on physical currency. This is addressed by introducing virtual currency, which is a long-term store of value.
4. **Enhanced Global Transaction –** Bitcoin allows cross-border transactions without involving any intermediaries, conversion fees and delays. It is very crucial for easy international remittance and online transactions.
5. **Technological integrations with new emerging innovations –** The innovative use of Bitcoin in smart contracts, DeFi arrangements, AI platforms utilizing the virtual currency for services and many more creative applications are being explored, ensuring the optimum utilization of resources.

Along with the upcoming benefits, many challenges pose a threat to encouraging the use of cryptocurrency by today's society. These are as follows:

1. **Volatility and regulatory concerns –** Several factors such as speculative trading, global news and regulatory changes, drive the prices of virtual currency. This makes the virtual assets a risky investment for retailers and many end up losing financial resources. Many nations lacking clear legal policies around Bitcoins lead to seasonal bans, heavy tax implications or legal complications. This creates a hurdle to the full acceptance of virtual

currency by society. This is done to safeguard the general public, but it deters institutional adoptions and disrupts the market.

2. **Safety concerns –** Due to a lack of a legal framework governing Bitcoin transactions, many user experiences cyber attacks leading to loss of resources and private information. Due to the decentralized nature of virtual currency, it is not possible to trace the transactions and recover the lost data.
3. **Environment angle –** Virtual currency is based on Blockchain technology, which consumes significant energy resources, making it expensive from an environmental viewpoint. Many miners suggested shifting to renewable sources for energy but the journey to a sustainable environment is a dream far from reality
4. **Scalability and transaction speed factors –** Bitcoin network involves a large number of transactions per second, leading to issues such as slow processing speed and limited scalability, affecting the functioning at times. Innovative and futuristic technologies are being discovered to address these issues.

CRYPTOCURRENCY IN INDIA[14]

Cryptocurrency introduced a revolutionary change in the financial market. In India, retailers as well as institutional investors have shown keen interest despite having discussions regarding regulation evolution, creating future uncertainty. As per the Chainalysis report, India led the global crypto market in 2023 and 2024 by increased participation. The participation has even reached beyond metro cities due to the availability of online crypto trading portals.

Historically, the Indian government considered banning crypto transactions, but after India participated in the G20 summit, the focus has shifted to regulating crypto transactions by introducing guidelines governing the transaction. The Indian government introduced 30% tax on crypto profits and 1% TDS effective from April 2022. Even in 2022, the RBI introduced its own home-made version of cryptocurrency named Central Bank Digital Currency (CBDC) for which it is still in trial phase. Further public as well as the private sector has begun exploring the way to utilize the blockchain technology, paving the way for the crypto acceptance.

Many Indian fintech startups and enterprises have started focusing on the integration of blockchain and crypto-based payment methods taking a step forward towards acceptance. Further, many entities that focus on developing blockchain projects are becoming the hub for new concepts such as DeFi arrangements, NFTs, Metaverse, attracting the global venture capitalists. Lastly tech-savvy youth generation creates a favourable environment for becoming global crypto hub.

CONCLUSION

The future of cryptocurrency in India as well as internationally is very promising yet uncertainty persists. There are various hurdles to be addressed before full utilization of the capabilities of cryptocurrency. With the regulatory development and global acceptance of cryptocurrency is necessary for the safe and secure use. With the growing trends and shift towards modern technology, India will surely play a major role in it.

REFERENCES

- Nakamoto, S. (2008). *Bitcoin: A Peer-to-Peer Electronic Cash System*. Link
- Antonopoulos, A. M. (2017). *Mastering Bitcoin: Programming the Open Blockchain* (2nd ed.). O'Reilly Media.
- Narayanan, A., Bonneau, J., Felten, E., Miller, A., & Goldfeder, S. (2016). *Bitcoin and Cryptocurrency Technologies: A Comprehensive Introduction*. Princeton University Press.
- Böhme, R., Christin, N., Edelman, B., & Moore, T. (2015). Bitcoin: Economics, Technology, and Governance. *Journal of Economic Perspectives*, 29(2), 213–238. Link

- Yermack, D. (2013). Is Bitcoin a Real Currency? An Economic Appraisal. *NBER Working Paper No. 19747*. Link
- Investopedia. (n.d.). *Bitcoin (BTC)* (June 2025) Link
- CoinDesk. (n.d.). *What is Bitcoin?* (June 2025) Link
- Binance Academy. (n.d.). *How Does Bitcoin Work?* Retrieved June 2025 Link
- World Economic Forum. (2021). *Cryptocurrencies: A Guide to Getting Started. Link*
- KPMG. (2022). *Institutionalization of Cryptoassets*. Link
- United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD). (2022). *Policy Brief on Global Crypto Use*. Link
- Cambridge Centre for Alternative Finance. (2022). *Bitcoin Electricity Consumption Index*. Link
- Coin telegraph. (n.d.). *Bitcoin Adoption in Real Estate and Payroll*. (June 2025) Link
- The Future of Cryptocurrency in India : Trends, Regulations and Market Growth (March 2025) Link

Dr. Anju Singla, Associate Professor
Department of Commerce,
Vaish College, Rohtak
Mobile No. 9416836181
Email Id: anjusingla20@gmail.com
House No. 773/23, D.L.F Colony
Rohtak(Haryana) 124001

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 104-106
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बदलते गाँव बदलते रिश्ते -एक मूल्यांकन- 'एम डॉट कॉम' कहानी के विशेष संदर्भ में

डॉ अमलाकुमारी बी ,
असिस्टन्ट प्रोफेसर , हिन्दी विभाग ,
एन एस एस हिन्दू कॉलेज, चंगनाचेरी , कोट्टयम ,केरल .

बदलते समाज को सूक्ष्म दृष्टि से देखने परखनेवाला साहित्यकार है एस.आर. हरनोट | हिमाचल की पर्वतीय परिवेश एवं देहाती वातावरण के साथ साथ समकालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण भी उन्होंने किया है | भूमंडलीकृत भारत में आजकल के गाँव शहर जैसे बदल गए हैं | मानवीय संबंधों में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आ गए है | विश्वग्राम की कल्पना करनेवाली नई संस्कृति में हर व्यक्ति सिर्फ उपभोक्ता है | पुरानी पीढ़ी इन परिवर्तनों के साथ बदल नहीं सकते | अपने ही गाँव के बदले हुए माहौल देखकर लोग घबराने लगते हैं | नई पीढ़ी का जो संस्कार है उसमें मेलजोल करने में वे कभी कभी असफल हो जाते हैं | ऐसी एक बूढ़ी माँ का मार्मिक चित्रण हरनोट की 'एम.डॉट कॉम' कहानी में है |

घर में अकेली फलाणी नामक माँ भैंसों की देखभाल करके जी रही है | जमीन से जुड़ी हुई , खेती और पशु पक्षियों से प्यार करनेवाली निरछल देहाती औरत का प्रतीक है माँ | दोनों बेटे साथ नहीं है | मगर गाय - भैंसों को चारा देकर, बिल्ली को लस्सी पिलाकर , आँगन के पेड़ पर आनेवाली चिड़ियों को देखकर वह सुख शांति से ज़िंदगी गुजारती है | एक दिन सुबह माँ को अपने आसपास एक खामोशी महसूस होने लगी | रोज की तरह वह घर का काम किए बिना सीधे ओसरे में जाकर देखा कि एक भैंस मरी पड़ी है जिसने अभी अभी बच्चा पैदा की है | माँ को बहुत दुख हुआ फिर भी जल्दी ही जल्दी भैंस को बाहर निकालने केलिए चमार को बुलाने का निर्णय लिया | गाँव में पशु मरे तो चमार उसे उढ़ाकर फेंक देते हैं | परसा नामक चमार को माँ जानती भी है | उसे बुलाकर लाने केलिए वे घर से निकलती है |

बस अड्डे पर आकर माँ को सब कुछ नए नए लगी | बस में चढ़कर वे परसे का घर पहुंची तो जान जाती है कि परसा आजकल मरे पशुओं को लेने नहीं जाते | बेटे बड़े होकर कमाने लगे | अब पिता को काम करने की जरूरत नहीं , बेटे उन्हें करने भी नहीं देते | उसने माँ को उसके बेटे के दूकान भेज दिया | महेंद्र की दूकान जाकर माँ हैरान हो गई | उसने एक यंत्र – कंप्यूटर – देखकर कहा कि माँ का नाम और पशुओं का रेजिस्ट्रैशन नहीं हुए है | इसलिए भैंस लेने केलिए नहीं आएंगे | कुछ न समझे बिना चकित होकर माँ वहाँ से निकलती है | उस दूकान का नाम था -एम। डॉट कॉम |

पर्यावरण और समाज दोनों वैश्वीकरण के प्रभाव से ग्रस्त है | देहाती जनता की खासियत यह है कि वे पड़ोसी लोगों के साथ मिलजुलकर आपस में मदद करके आराम की ज़िंदगी जीते है | उनके परिवेश भी ऐसे है जहां प्रकृति , खेती और गाय-भैंस का महत्व है | खेती और उससे संबंधित त्योहार आदि उनकी एकता की निशानें हैं|

आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के दौर में गाँवों की हालत भी बदल गई है | आपसी प्रेम और लगाव नष्ट हो रहे हैं | नई पीढ़ी स्वार्थपूर्ति के अलावा और कुछ में रुचि नहीं रखती| अपने गाँववालों से परिचित हो जाने तक की ज़रूरत उन्हें महसूस नहीं होती | इस यथार्थ का एहसास इस कहानी की संवेदना रही है |

सुई हुई भैंस मरी पड़ी तो माँ खुद चमार को लाने केलिए तय्यार हो जाती है | यदि वह चाहती तो गाँव के किसी लड़के को भेज सकती थी | मगर वे खुद जाना बहतर समझती है | वे जानती है लड़के लोग सामने कुछ न बोलेंगे तो भी मन में गालियां देंगे | माँ समझती है " अब पहले जैसा समय कहाँ रह गया ? गाँव में शरम लिहाज तो नाम की बची है | जो कुछ है भी वह दिखावे भर की है" 1 नई पीढ़ी के बाल बच्चे बड़े बूढ़ों की लिहाज नहीं रखते|

माँ जानती है कि आजकल गाँव में बहुत कम बुजुर्ग लोग ही हैं | भैंस को पालकर , खेतीबारी करके वे दोनों बेटों का देखभाल किया | दोनों शहर में नौकरी करते है, घरबार भी वहाँ बनाए | बहुएं गाँव आना ही पसंद नहीं करती | 'आकर करेगी भी क्या , मिट्टी-गोबर की बास लगती है'2 बेटे साल में एक आध बार माँ से मिलने आते हैं| माँ केलिए सारी आधुनिक सुविधाओं का इंतजाम उन्होंने किया है| रेंगीन टेलीविशन , गैस, टेप रीकॉर्डर , दूध बिलाने की मशीन सब कुछ | माँ कबीर अमृतवाणी सुनकर पशु-पक्षियों में प्यार बँटवाती जी रही है | गाँव की मिट्टी , खेती , भैंसें आदि के प्रति उनके मन में गहरा लगाव है | अपने प्यारे जानवरों को चारा दिए बिना वे खुद खाती भी नहीं |

गाँव का नया वातावरण बस अड्डे में आई माँ को चकित कर देता है | उन्हें ऐसा लगा कि सब कुछ कितना जल्दी बदल गया | जहाँ आज बस अड्डा है वहाँ पहले एक झील थी | माँ और गाँव के कितने लोग पशुओं को चराकर वहाँ पानी पिलाते थे | स्कूल पास ही है , इसलिए सभी बच्चों के कॉपी किताब , कलम आदि झील के पास पड़े रहते थे | खाली जगह पर देवताओं और पितरों की मूर्तियाँ थी जहाँ माँ पूजा करने जाती थी | आज माँ ने देखा " यहाँ सब कुछ नदारद है , जैसे वक्त ने उन्हें लील लिया हो |"3 अब ट्रकों ने इसे धूल का समंदर बनाए हैं | कहानीकार ने विकास के नाम पर पर्यावरण पर होनेवाला अत्याचार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है |

माँ के पति के होते हुए परसा चमार उनके घर में चक्कर लगा लिया करता था | उनके जूते भी वह गांठ कर देता था | पूरे गाँववाले परसे के बनाए जूते , बूट आदि पहनते थे | मगर आजकल कोई जूते नहीं गंठवाते हैं| आज प्लास्टिक का ज़माना है , बीस तीस रुपये में जूते मिल जाते हैं | " इस मशीनी जमाने ने तो आदमी को आदमी से ही दूर कर दिया |"4 भूमंडलीकरण , निजीकरण और मशीनीकरण के दौर में मानवीय संबंधों का मूल्य नष्ट हो रहा है | अपने आसपास के कारोबार , दूकान ,गाँव की खेती आदि सब छोड़कर मॉल संस्कृति को अपनाने केलिए आधुनिक पीढ़ी तरस रही है | आजीविका ढूंढकर विस्थापन करने केलिए विवश होनेवाले युवक संबंधों की आत्मीयता और नैतिकता आदि में विश्वास नहीं रहते | इस विषय को लेकर हिन्दी साहित्य में खूब रचनाएं भी हुई है|

परसा के घर देखकर माँ को लगा कि वह भी बदल गया है | पहले तो उसके घर के पास खेत खलिहानों में चमड़े की बास थी | आज तो वह बास नहीं है | माँ को देखते ही भाभी कहकर परसा खुशी से स्वागत करता है | इस आत्मीयता से माँ आश्वस्त हो जाती है | पुराने संबंधों में हमेशा इसी प्रकार की अनुभूति होती है | गाँव की रीति रिवाज के अनुसार उसने माँ को बिठाकर बीड़ी पिलाया | मरी भैंस की खबर सुनकर वह कोई जवाब नहीं देता | गाँव में आजकल क्यों नहीं आता माँ के इस सवाल का जवाब उसने जोश में दिया | अब जूते बनवानेवाले कोई नहीं है , सब दूकानों से खरीदते हैं | वह कहता है "तू तो जाणती है भाभी , काम के साथ ही आदमी का गरज होती है | फिर मुए को नी पूछता कोई"|5 पुराने समय में दूकानें नहीं थी , सड़कें नहीं थे , तब परसा बडा आदमी था | तब सबको चमार और कहार की जरूरत थी | आज आदमी का कोई कीमत नहीं | समाज में आम आदमी का महत्व नष्ट हो गया है | ये सब कहते हुए परसा उत्तेजित हो जाता है , उसकी आँखें भर गई |

समय के साथ साथ चमारों के घर परिवारों में भी परिवर्तन आया है | परसा अब पशुओं को फेंकेने नहीं जाता जो अपने जाति के पारंपरिक काम था | उसके बेटे चमार के काम को नहीं मानते | बडा बेटा शिमले में

अफसर है , छोटा दूकान चलाता है | वे पिता को बाहर कही भेजते ही नहीं | परसा इस पर दुखी है | गाँव के ब्राह्म-कनैतों का तिरस्कार और बेटों का मान सम्मान का भय उसको अस्वस्थ करते हैं | परसा बताता है ब्राह्मण लोग जिसप्रकार चमार से नफरत करते हैं उतना ही उसके बेटे उसके काम से नफरत करते हैं | पिता के काम करने का सारा सामान उन्होंने फेंक दिए | उसका ठीया भी तोड़ दिया जहां बैठकर वह चमड़े का काम करता था | माँ को याद आई कि गाँव के कितने लोग वहाँ चमार के आसपास बैठे थे | ब्राह्मण , कनैत सभी जाति ..किसी को छुआ छूत का प्रश्न नहीं था | उस समय परसा चमार नहीं था , कारीगर था |

माँ परसे के बेटे के दूकान ढूंढकर पहुंची तो चाय की दूकान , आटा-चावल की दूकान , कपड़े की दूकान , नाई की दूकान सब कुछ नजर आई | एक दो छोटी मशीनोंवाली एक दूकान देखा , वहाँ बैठनेवाले लड़के को माँ जानती भी नहीं थी | नाई बुधराम माँ को पहचानकर बुलाता है तो माँ ने सोचा परसे के बेटे से भैंस फेंकने की बात उससे करवाएगी | बुधराम माँ को लेकर महेंद्र के पास जाता है | माँ ने महेंद्र से कहने लगी कि वे उसके घर जाकर आई है | मगर उसने उनकी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया | मॉडर्न दूकानों में बूढ़े लोगों का अनुभव हमेशा ऐसा ही होता है | उनकी बातों को सुनने तक का अवकाश किसी को नहीं है | महेंद्र ने कंप्यूटर में चेक करके बताया कि माँ की भैंस यहाँ रेजिस्टर्ड नहीं है इसलिए उसे लेने नहीं आएंगे | बुधराम ने माँ को समझाया कि गाँव के सभी पशुओं का नाम यहाँ रजिस्टर किया है , शहर से लोग आकर मरे हुए पशुओं को ले जाते हैं | बुधराम ने इस नई संस्कृति को स्वीकार किया है | उसने माँ से कहा कि शहरवाले लोग भैंस को फेंकते नहीं , न खेतों में गंदगी , न गिद्धों और कुत्तों का हुड़दंग | यह उपाय बुधराम को अच्छा लगता है क्योंकी गाँव साफ रह जाएंगे |

देहाती महिलाओं की मानसिकता फलाणी के हर बर्ताव में देखने को मिलती है | मरी भैंस के बारे में वे पड़ोसियों को नहीं बताती क्योंकी खबर पाते ही औरतें आकर अफसोस करेंगी| उनका भला बुरा सुनना वह नहीं चाहती | इसलिए किसी से कहे बिना चमार को लेने जाती है | उसी प्रकार पैदल जाने का फैसला भी उसने बदल दिया | गाँववाले देखकर समझेंगे कि बेटे उन्हें पैसे नहीं देते | कहानीकार ने आंचलिक भाषा के प्रयोग से कहानी को आकर्षक बनाया है |

पारिस्थितिक चिंतन और सशक्त सामाजिक सरोकार की झलक इस कहानी को श्रेष्ठ रूप प्रदान करते हैं| तेजी से बदलनेवाली दुनिया में असहाय होकर बेचैनी से जीवन गुज़ारनेवालों की प्रतिनिधि है 'एम.डॉट कॉम' कहानी की माँ |

संदर्भ सूची :

1. एम डॉट कॉम , कहानी कलश , हिन्द युग्म. कॉम ,नवम्बर , 2008
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही

9946240338, amalaaardra@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 107-110
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Sociology of Vulgarity: Impact of Vulgar content on children

Dr Punditrao C Dharenavar
Associate Professor
Post Graduate Government College, Sector – 46, Chandigarh -9988351695

Abstract -

Vulgarity is not new to human society. Vulgarity has been in all the time in different ways but in modern time it has reached to young minds to such an extent that it has become part of life through mobile devise. Due to emergence of technology, mobile devises are being easily used by children who watch all kind of contents which they are not supposed to watch.

Vulgar content on social media are being created and uploaded by some individuals who mainly believe in popularity and earning easy money. These vulgar content creators do not even think twice about the impact on children. These vulgar content creators make sexually explicit materials such as images, videos, language that depict sexual activity.

Children are exposed to Vulgar content through streaming services such as Netflix, Hulu, even music streaming channels like Spotify which may play music not suitable for children's age group due to the presence of explicit imagery or language. Social media s one of the most significant sources of concern , social media platforms can expose younger children to all sorts of harmful content including Cyber bulling, explicit imagery and unrealistic life portrayals.

The children who watch vulgar content seem to loose their concentration on studies and loose respect for their parents. The social relationship between young children and senior people in the society may decline. These is significant reason to believe that children who watch vulgar content on social media might lose respect for women.

Although there are legal provisions to prevent such kind of activities, yet these creators keep creating and uploading bad content on social media which has become social issue. The present paper looks into sociological impact of such contents on children and youth. The paper will also look into some of the provisions which governments are trying to implement. The paper will highlight some of the incidents which happened after watching vulgar content and some of the protest to curb vulgar content on social media.

1) **Key words-** Modern Technology. Vulgarity, children. Mobile, Devise, Content, Cyber bulling, reactors, Spotify, Inappropriate behavior, sexuality, Body image

Sociology of Vulgarity: The vulgarity has been in the History of mankind. Vulgarity has been taking different shapes in different time. The Ellora and Elephanta caves, for example , are UNESCO World Heritage sites and are recognized for their historical and cultural significance. These sites have several vulgar caves. The point to note that what one considers vulgar, another may not. Modern sensibilities may differ from those of the past. Even the Historical texts have such a vulgar content. In the modern time, after development of films, adults films have been made and shown even in theaters. Central Board of Film Certification does give them A certification. After all these, present time has witnessed revolution in technology through which mobile devises have reached to every hands of children. Hence, children are easily accessing the vulgar content which they are not supposed to watch . These Vulgar contents bring have several effects on children;

a) Losing concentration on studies
b) Unhealthy attitudes towards sexuality
c) Inappropriate behavior
d) Loosing respect for women / men
e) Body image

Children who are exposed to vulgar contents tend to lose concentration on studies because the vulgar content attracts young mind. This attraction is negative in nature but children do believe it is positive. In this age, children do not even listen to elders and keep watching vulgar content. It is because of this tendency children do not even attend classes regularly and do not do home work. Vulgar content watching habit tends to go up to make children violent words their opposite sex classmate children.

The attitude of children towards sexuality tends to change after continuously watching vulgar content on social media. If the children watch vulgar on social media regularly then, children tend to develop unrealistic expectations and behaviors which may later develop unhealthy, disrespectful romantic relationship as they get older. The imagination of opposite sex may develop in negative way.

The children who watch vulgar content on social media regularly may develop inappropriate behavior such as aggressive behavior, lack of wellbeing of others, abnormal behavior and not sensible towards social norms and values. Aggressive behavior is not nearly beating someone but aggressive behavior may be using bad words others including own siblings. Watching Vulgar content may even make children to attack own classmates. The children who watch vulgar content may lose interest in others wellbeing. The behavior of not taking care of others is the main characteristic of children who watch Vulgar content on social media. The abnormal behavior of children who watch Vulgar content on social media is manifested through their way of behaving with elders and parents. The language they use is also due to continually watching Vulgar content on social media.

The children who watch vulgar content tend to lose respect for women and men, especially their opposite sex. It is because continuous watch of vulgar content on social media, children will Psychologically develop hate behavior. It is human tendency that the thing which used and seen time again is most hated in the world. Therefore, children who watch vulgar content through human body in the form of man and women, may develop habit of losing respect for man and woman. The children who watch Vulgar content may develop unrealistic imagination of body. The confusion between body with cloth and body without cloth may create unrealistic imagination of body image.

In Robert Merton's sociological framework, there are two social patterns namely Manifest function and latent function. Manifest functions are the intended and recognized consequences of social pattern while latent functions are the unintended and often unrecognized consequences.

The vulgar contents on social media have more latent functions than manifest functions. The bad impact of vulgar content on children is not seen but felt. The impact will be forever than for limited time. The latent functions of vulgar contents include social, educational and moral life. These life styles of children will have such bad impact that no medicine is there to treat.

The vulgar songs, vulgar dance, nudity, and abusing words tend to effect children's mind forever. Children tend to believe that using abusing word si common and it is used by all. The Vulgar songs and vulgar dance have such an effect on children that they will start thinking that it is part of social life. Children tend to adopt same dance step with their peer group and dance with vulgar songs even in schools. In the absence of parents, children will watch and adopt the dancing steps and dance on the vulgar songs. It is because of these activities , children develop weak mental ability.

The protest against Vulgar contents on social media: It is not that people of the society are sitting quite even after this technological development. It is not that people are not protesting against vulgar content on social media. The strong protest have been witnessed in the state Panjab. The strong protest emerged n the state of Panjab because Panjab is said to be culturally very rich and people of Panjab are aware of bad impact of vulgar content on social media.

The social media influencer Kanchan Kumari Urf Kamal Kaur was murdered by Nihang Sikh youth on 13 June 2025 in Bathinda, Panjab. The reason for killing Kanachan Kumari was that she was making vulgar content and uploading on her social media sites. In her videos, she used vulgar and abusing words. She also uploaded videos with half naked. These activities of Kanch Kumari irked Nihag Sikh youth. Nihang Sikh you Amritpal Singh Mehro, the master mind behind the killing first tried to convince her with love and affection. He even gave her some money after she said that she was in the need money for the treatment of her father. Even after condensing her for many days, she kept making videos and uploading on internet, this behavior of Kanchan Kumari was intolerable for Nihang Sikh youth and they killed her.

The killing of Kanhcan Kumari brought discussion and debate among Panjabi people. Most of the people opposed the killing of women and other people also argued that the killing is right because vulgar content cannot be tolerated which spoils youth.

The strong protest has also happened in Bihar because so many vulgar contents are made in Bhojpuri language. It is the duty of the government to curb such bad content.

Laws against Vulgar contents

Indian law system has following sections which should be imposed against those who spread obscenity, vulgar cone tom social media. According to Indian Penal Code (IPC): Section 292 " Sale, distribution, public display or publication of obscene material is considered an offence. This includes obscene books, pamphlets, pictures or other material. Section 293, makes it an offence to sell or supply obscene material to a person below the age of 21 years. According to Section 294: it is an offence to sing, play obscene songs, utter obscene words or commit obscene acts in public places. According to Information Technology Act, 2000 (IT Act): Section 67: It is an offence to publish or transmit obscene material in electronic form. This includes obscene videos, pictures or writings. Section 67A: It is an offence to publish or transmit sexually explicit

material in electronic form. Section 67B says Printing or distributing obscene material involving children is a serious offence.

The most important provision of Indian law system is POCSO Act (Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012) according to which Strict provisions have been made to prevent obscene material involving children (child pornography). Sections 14 and 15 make the use, storage, or distribution of such material an offence. Apart from all these provisions, the Cinematograph Act, 1952 The Censor Board (CBFC) enforces rules to prevent obscene material in films: The Cable Television Networks (Regulation) Act, 1995 also prohibits the broadcasting of obscene material on TV.

Punishment-

Punishment under all these sections include fine, imprisonment (3 to 7 years, or more), or both, especially under the IT Act and the POCSO Act, which have strict penalties.

Social punishments-

Although there are laws to prevent vulgar content on social media but there must be also social punishments to prevent vulgar content on social media. The social punishments includes boycotting the people who make and upload vulgar content on social media, social awareness, house visit by writers, singers and teachers **.**

Conclusion - The people of the society need to be aware of the bad impact of vulgar content on social media. The bad impact of these vulgar content on children must be highlighted through TV, News papers and social awareness. The elders from home must keep eye on children for curding access to vulgar contents.

The norms and values must not be decreased in the society, for promoting social values and norms, there should be social reform movements. The role of religious leaders must be increased to make children aware of the bad impact of vulgar content. The New Education Policy 2020 suggest to adopt social outreach program in all educational institutions, therefore each and every teacher must take steps to take part in social outreach program and visit village, colony and urban areas and do counseling for children.

1. Bibliography-

2. Sinha, Lav Kumar, Chamatakari Facebook ke rachayita, 2015 Pustak Mahal, New Delhi
3. Gillespie Tarleton, Custodians of the internet: platforms, content moderation, and the hidden decisions that shape social media : 2018 New Haven Yale University Press.
4. Digital Death: a philosophy of online death: 2021 London Bloomsbury Academic
5. Instragram : visual social media cultures; 2020 Cambridge Polity Press
6. Social Media for academics : 2020 : London Sage Publications
7. Who was Kamal Kaur. Punjabi influencer Found Dead in parked carin Punjab: NDTV online News Dated June 13, 2025 --- https://www.ndtv.com/india-news/who-was-kamal-kaur-punjabi-influencer-found-dead-in-parked-car-in-punjab-8649163

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 111-114
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लिपियों का उद्गम : एक समीक्षात्मक आकलन

डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह
असि. प्रोफेसर हिंदी विभाग,
फीरोज गांधी कॉलेज रायबरेली लखनऊ वि.वि. लखनऊ

शोधसार

लिपियां मनुष्य द्वारा स्पष्ट ऐसे उपकरणों का सर्वोत्तम उदाहरण है जो कालांतर में व्यवहार के फलस्वरूप परिष्कृत सुधारों से अधिक परिमार्जित तथा समृद्ध हो जाते हैं। प्राचीन काल में पत्थर पर दिये चिन्हों से लेकर कागज पर मुद्रित वर्णों की आधुनिक स्थिति तक अत्यधिक प्रगति हुई है और यह प्रगति केवल लिखाई की सामग्री तक ही सीमित नहीं हैं। प्रत्येक सभ्य व्यक्ति के लिए अपार विन्यास भी एक सामाजिक रूढ़ि है उसमें सुधार बहुत सावधानी से और प्रयोग से प्रेरित होकर भी किया जा सकता है। यदि सुधार बहुत विस्तृत भाषा में हुआ तो इसका परिणाम यह होगा कि जिस लिखित भाषा का हमें अभ्यास है उसके स्थान पर एक नई लिखित भाषा आ जायेगी। हम लिपियों के उद्गम और विकास की चर्चा जब करते हैं तो हमें अपनी सभ्य मानसिक विचारधारा से मुक्ति प्राप्त करनी होगी हमारे लिए लिपियों का प्रतिरूपात्मक मूल्य ही स्वाभाविक हो जायेगा। भावों के लिखने के क्रम से होते हुए मार्ग में शाखा छोड़ने, दीवारों पर निशान छोड़ने से लेकर कुइपु (quppe), वामपुम (wampum), ताबीज, ओगामी वर्णमाला, गाढ़ा, चप्पू (पहला ग्रीक लेख), आवचित्रक लिपि, ध्वन्यात्मक लिपि, कीलाक्षर लिपि, गूढ़ाक्षर लिपि, चित्रलिपि, साइप्रस लिपि से होते हुए लिपि की अंतिम सिद्धि वर्णवाद (अल्फेवेटिज्म) तक की यात्रा हमने तय की है।

लिपि और भाषा :

लिपि मनुष्य द्वारा स्पष्ट ऐसे उपकणों का साधन है जो कालांतर में व्यवहार के फलस्वरूप परिष्कृत सुधारों से अधिक खुदे चिन्हों से लेकर कागज पर मुद्रित वर्णों की आधुनिक लिखाई की सामग्री तक ही सीमित नहीं हैं।

भाषा के उद्गम की समस्या का कोई संतोषजनक समाधान नहीं है परंतु लिपि के उद्गम की समस्या के संबंध में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि ज्ञान अर्जित कर लिपि के विस्तार को समझा जा सकता है। असल में लिपि का उद्गम अपेक्षाकृत हमारे अधिक समीप हैं। " लिपि के उद्गम की समस्या को समझने के लिए हमें अपनी सभ्य मानसिक विचार धारा से मुक्ति प्राप्त करनी होगी। हमारे लिए लिपि का प्रतिरूपात्मक मूल्य स्वाभाविक हो गया है। थोड़े से मनन व कुछ अभ्यास से, हमारे बच्चे यह समझ जाते हैं कि उनके सामने पुस्तकों में सफेद कागज पर काली लिखाई में उन शब्दों के प्रतिरूप हैं जो उन्हें साधारण जीवन में सुनाई देते हैं। वे शीघ्र ही मनोवैज्ञानिक व्यायाम में अभ्यस्त हो जाते हैं और फिर से लिपि व ध्वनि से समन्वय कर लेते हैं व शब्द के भाव का नेत्रग्राह्य व श्रोतग्राहय संकेतों के साथ समन्वय जोड़ लेते हैं। हमारी शैशवावस्था में बुद्धि को इस अभ्यास में अभ्यस्त करने में काल इतना कम लगता है कि हमें व्यायाम का स्मरण तक नहीं रखता। लिपिबद्ध भाषा का जो भाव हममें है वह बिना प्रयास कुछ अर्द्धप्राकृतिक नीति से, हमें प्राप्त हुआ, परंतु यह निश्चित है कि मनुष्य के लिए यह भाव सहजात

नहीं हैं। हम जानते हैं कि शब्द लिखने से पहले मनुष्यों ने भावों को लिखना आरम्भ किया। सर्वप्रथम चित्र को ही पदार्थ का चिन्ह माना गया, परन्तु यह प्रयोग भी पहली बार में उपलब्ध नहीं हुआ इससे पहले रेखा चिन्ह के तार्किक मूल्य की चेतना मनुष्य में रही होगी।" 1

लिपियों का उद्गग क्रम –

लिपियों के उद्गम के क्रम में यह जानना आवश्यक हो जाता है, कि सभ्य व असभ्य मानव मानव जातियों का स्वरूप क्या है ? जो. वान्द्रियेज का रहता है कि मान लीजिए की एक सभ्य जाति अपने मार्ग पर वृक्ष की एक शाखा से चिन्ह बनाता जाता है या बालू अथवा शिला पर आड़ी रेखा खींचता है। ऐसा करने में उसका कोई परिशुद्ध तार्किक उद्देश्य अवश्य होगा- जैसे अपने मार्ग को फिर खोज सकना या अपने अनुयायियों के लिए कोई चिन्ह छोड़ना परंतु असभ्य व्यक्ति के मन में चिन्ह बनाने का उद्देश्य सर्वथा भिन्न होगा, उसके अनुसार इसका कोई रहस्यमय अर्थ होगा, यथा मार्ग में वृक्ष की शाखा छोड़ने का अर्थ है इस मार्ग पर अधिकार जमाना, कोई जादू टोना करना, भूतप्रेत को बुलाना या दूर करना, शत्रु के मार्ग का अवरोध करना या उसके लिए कोई लाभ प्रद संदेश छोड़ना, संक्षेप में कोई ऐसा काम करना जिसके अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिणामों की प्रतिक्रिया या सम्बन्ध विशाल संसार से हो। इसी प्रकार एक गधे या कुत्ते का चित्र देखकर हमारे सभ्य मस्तिष्क में वस्तुतः गधे या कुत्ते का ही भाव जागृत होगा। और कुछ नहीं पर असभ्य लोग वह गधा या कुत्ता ही है। यदि वह चित्र इन अहिंस पशुओं का न होकर किसी हिंसक पशु अथवा भयंकर शत्रु का हो तो दर्शक का कल्याण नहीं, न जाने उसको क्या कुछ आपत्ति उठानी पड़े अतः चिन्ह भाषा में, बोली के अभिचार सम्बन्धी अर्थ की सम्भावना भी है। जैसे निषेध व मंगलाभाषित किसी सिंह अथवा हिपोटोमस का चित्र बनाना उतना ही हानिकारक है जितना उसके नामों का उच्चारण क्योंकि नाम की तरह चित्र भी, जीव के रहस्यमय अस्तित्व का अंग है।" 2

कुछ असभ्य जातियों के लोभ अपने शास्त्रास्त्रों पर साँप अथवा चीते का चित्र बना लेते हैं। इस प्रकार अलंकृत सरल या फलक में अभिचारी शक्ति आ जाती है, शत्रु के प्रयत्नों को निष्फल करने के लिए चीता या दक्षता के लिए साँप अपनी शक्ति प्रदान करते हैं। परिणामस्वरूप प्रतिरूपात्मक चित्रों द्वारा रहस्यमय भावों की अभिव्यक्ति की सूचक, पूज्य जड़ पदार्थ व ताबीज (रक्षाकरंडको) की एक सूची पद्धति असभ्य जातियों में बन गयी। यह स्पष्ट ै कि असम्य गति के व्यक्तियों के मानसिक व्यापारो को संकुचित परिधियों में सीमित न कर देना अतिशयोक्ति होगी हमें उसे थोड़ी स्वतंत्रता देनी होगी और यह स्वीकार करना होगा कि कभी –कभी उसने अपने रहस्यमय विश्वासो के जुएं को खोल फेका है। अपने अहम को कम करने या अपने स्वत्व की अभिव्यक्ति करने की अबोध आवश्यकता का जो प्रमाण चिन्ह उसके लिए एक प्रकार की अबोध चेष्टा का सूचक रहा होगा ठीक वैसी ही जैसे खिलवाड़ में कोई बालक दीवारों पर चाकू की नोक से छोटी-छोटी शाखाओं या कोपलों को तोड़ता चलता है। यह भी सम्भव ताकि आदिम व्यक्ति को कलात्मक मनोरंजन से सुख होता होगा। और ऐसा क्यो न हो रेडियर की हड्डी पर गुहाकालीन मनुष्य के बनाये परिलेख उसकी सिद्ध कुशलता के ऐसे परिचायक है कि जापानी कलाकारों का स्मरण हो आता है। ऊटामारो व होकसयी के ये सुदूर पूर्वन अपनी कला पर गौरव करते होंगे केवल रसास्वादन के लिए ही उन्होनों इन पर गौरव करते होगें केवला रसास्वादन के लिए ही उन्होने इन परिलेखों की रचना की हो तो इस में आश्चर्य जब कभी आदिम व्यक्ति के मानसिक व्यापार के स्रोत्र का विशुद्ध रूप से विश्लेषण करना हो तो निश्चय हो उसकी अबोध चेष्टाओं व कालात्मक उदेश्यों को ध्यान में रखना होगा। 3

डेन्जेल (Danjel) C . L . I के अनुसार – आदिम जातियों में चिन्हों की इस धारणा के कारण, किसी ऐसी लिपि की सम्भावना नहीं हो सकती जो कि हमारी तर्कात्रिक लिपि के समान हो। लिपि विकास से पहले, रहस्यमय स्वभाव से तार्किक स्वभाव का विच्छेद हुआ होगा और ऐसा एक बार में नहीं हो जाता। कदाचित आरम्भ में चिन्ह को बहुत अर्थो में और कई उदेश्यों से प्रयुक्त किया जाता है ।।4

"शूल की लकड़ी पर खुद चीते की सिर की अभिचारी शक्ति है, यदि किसी अन्य व्यक्ति के शस्त्र पर वही चिन्ह न बना हो, तो खो जाने पर उस शूल को ढूढ़ने में अधिकारी को आसानी भी हो सकती है, अतः वह अधिकार चिन्ह हो जाता है। यदि मार्ग पर छोड़ी शाखा का कोई अभिचारी अर्थ है तो उसमें खोये रास्ते के फिर से मिल जाने में भी सहायता हो सकती है, अतः वह स्मरणोपकारक चिन्ह हो जाता है। इस प्रकार रहस्यमय व्यापार में एक तार्किक अंश भी व्यक्त हो जाता है और फिर उपचित होते-होते यह अंश रहस्यमय अर्थ पर आक्रान्त हो जाता है। अधिकार चिन्ह व स्मरणोपकारी चिन्हों में लिपि की आरम्भिक अवस्था समझना उचित ही है।" 5

परन्तु ध्यान रहे कि स्मरणोपकारी चिन्हों से हम लिपि के आधे मार्ग पर ही पहुंचते हैं। ये चिन्ह विचार के कुछ स्वरूपों के ही बोधक हो सकते हैं, विचार की अभिव्यक्ति कभी नहीं कर सकते। इसका एक सुविख्यात उदाहरण ऑस्ट्रेलिया वासियों के यीस्ट संदेश (stick message) हैं। इन यष्टियों पर काकपद जुले होते हैं और इनके द्वारा सूचना, आदेश और कभी-कभी बहुत ही जटिल आदेश भेजे जाते हैं, परंतु, अनभिज्ञ व्यक्ति उनका कोई अर्थ नहीं लगा सकता। बिना दूत के ये यीष्ट संदेश अग्राहय है। यष्टि एक प्रकार से पथ प्रदर्शक व स्मृति सहायक हैं।

<u>कुइपु (quippo) व वामपुम (wampum)</u>

संदेश यष्टियों की श्रेणी में पेरू वासियों के कुइपु (quippo) व उत्तरी अमेरिका व कैनेडा में वासी इंडियन जातियों के इरोक्का नामक दल द्वारा प्रदुत्त अनुवाद वामपुम (wampum) भी आते हैं। इन शब्दों का अर्थ हम समझते हैं। कुइपु, रंग-बिरंगे ऊनी धागों से बनी डोरियां होती थी। इन डोरियों पर कई जगत पर गांठे बांधी जाती थी। इन डोरियों के रंग व गांठों की मोटाई व ऊँचाई से और फिर डोरियों पर परस्पर रूढ़िगत विधि से लगाने से इस प्रकार के प्रतिरूपों में भावों का अर्थ व उनका पौर्वापर्व सम्बन्ध माना जा सकता था।

मदाम द ग्राफिमी (Madame de Grattigny) के ग्रन्थ Letters qune peruvienne (पेरू की एक नारी के पत्र) में 'कुइपु' का महत्वपूर्ण स्थान है और इसी कारण फ्रांसीसी साहित्य में 'कुइपु' का उल्लेख हुआ है।

वामपुम मिलाकर पिरोयी हुई सीपियों की माला को वामपुम कहते हैं। इन मालाओं को रेखागणित विधि से जोड़ा जाता है। कहते हैं इनमे कुछ में तो छः सात हजार सीपियां लगती हैं। इनमें से सबसे लम्बी उनचास लड़ियों की माला बताई जाती है।

कुइपु व वामपुमों के प्रयोग से एक नया अंश रंग का है, इससे साधनों में विविधता आ जाती है और फिर अभिव्यक्ति की सुविधा भी अधिक हो जाती है पर कुइपु व वामपुम चाहे कितने भी परिशुद्ध होते, वे स्मरणोपकारी साधन ही रहते। यदि यह प्रमाणित भी हो जाता कि वे कुछ भावों के सूचक हैं, तो भी वे लिपि के समान नहीं माने जा सकते क्योंकि लिपि का ध्येय सारे ही भावों की अभिव्यक्ति है।

कुइपु व वामपुमों से लिपि का विकास न होने का कारण उनमें प्रयुक्त सामग्री थी, उसको व्यवहार के लिए निष्पन्न नहीं किया जा सकता था। कुछ लेखकों का कहना है कि कम से कम कुइपु में वर्ण संयोग संभव थे पर वह बाद की बात है कि नव कुइपु को यूरोपीय वर्णमाला के व्यवहानुकूल बनाने का प्रयत्न किया था। इसी प्रकार लैटिन वर्णमाला के स्थान पर 'ओगामी' वर्णमाला की रचना हुई थी। ओगामी में उभरे हुए पत्थरों के किनारों पर रेखाएं खोदी जाती थी। परन्तु इस प्रकार के प्रयत्नों की असफलता अनिवार्य थी।

निष्कर्ष - लिपियों की उद्गम की यही समीक्षा अब तक प्राप्त्य है।

सन्दर्भ सूची

1. जो. वान्द्रियेज़ अनुवादक बलवीर जगवंश किशोरः भाषा इतिहास की भाषा वैज्ञानिक भूमिका, हिंदी समिति सूचना विभाग उ.
2. प्र. लखनऊ के प्रथम संस्करण – 1966 ई. पृ. सं. 364-365
3. Danzel : CLI पू. सं. 67, 72-73
4. जो वान्द्रियेज अनुवाद बलवीर जगवंश किशोर, भाषा इतिहास की भाषा वैज्ञानिक भूमिका प्र. संस्करण – 1966 ई. पृ. सं. –
5. 365-366
6. Dangel : CLI पृ.सं. 48
7. A. Van Gennep, Revue des traditions Populers (1960) पृ सं. 73-78 LXXIV. Le Series Paris (1909)

मोबा नं. 9005678285

ईमेल – singhajendra92@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 115-118
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Exploring Academic Anxiety in Secondary Education: A Conceptual Framework

Swati
Research Scholars (Education),
D.S.N.P.G. College Unnao/CSJMU Kanpur, U.P
Dr. Sudarshan Singh
Assistant Professor (Education),
D.S.N.P.G. College Unnao/CSJMU Kanpur, U.P

Abstract: Secondary school students frequently struggle with academic anxiety, which has a substantial negative influence on their general development, mental health, and academic achievement. This essay examines the causes, consequences, and theoretical foundations of academic anxiety from a conceptual standpoint. The study sheds light on how academic anxiety affects secondary school students' experiences by referencing well-established psychological and educational theories. It also covers methods for reducing its negative impacts and creating a positive learning atmosphere.

INTRODUCTION

A crucial period in students' lives, secondary school is characterized by intellectual difficulties, peer pressure, and personal development. Academic anxiety, which is defined as excessive concern, dread, or tension about academic assignments, is a condition that many students experience as a result of these obligations. Students' emotional and psychological health is impacted by academic anxiety in addition to their academic achievement. With an emphasis on its sources, effects, and theoretical underpinnings, this essay aims to investigate the idea of academic anxiety in secondary school (Zeidner, 1998).

Understanding Academic Anxiety

One way to characterize academic anxiety is as a particular type of anxiety associated with learning environments, assignments, or results. Test anxiety, dread of failing, and overall uneasiness about academic achievement are some of the ways it presents itself. A certain amount of fear can spur pupils to improve their performance, but too much anxiety might impede learning and produce a vicious cycle of negative feedback (Zeidner, 1998).

Causes of Academic Anxiety

Students in secondary school experience academic anxiety due to a variety of circumstances. These consist of:

High standards for academic performance: Feelings of inadequacy and a fear of failing can result from peer, teacher, and parental pressure to attain excellent grades (Lazarus & Folkman, 1984).

- **Academic Anxiety Contributing Factors**

Students frequently experience academic anxiety, which is impacted by a number of interrelated variables. These include stresses from the environment, societal forces, personal traits, performance pressure, and a lack of preparation.

- **Pressure to Perform**
  The emphasis on standardized testing, competitive exams, and grading schemes has increased the desire for academic success. Because they frequently feel pressured to live up to inflated expectations, kids in these performance-driven settings may experience higher levels of stress. According to Zeidner (1998), students who are always under pressure to do well may develop a fear of failing, which increases their susceptibility to anxiety. This is especially noticeable in academic contexts with high stakes, when a single test might determine future possibilities, hence increasing stress levels.
- **Lack of Preparedness**
  Anxiety is frequently increased in students who suffer with poor study habits, insufficient topic knowledge, or ineffective time management. Students who are illprepared feel unprepared and uneasy about their academic ability. Stress is created by this uncertainty, particularly during tests or presentations. Additionally, students become overwhelmed by last-minute preparations due to procrastination and a lack of disciplined learning practices.
- **Individual Factors**
  Academic anxiety is also significantly influenced by an individual's personality. According to Bandura (1986), low self-esteem, perfectionist tendencies, and fear of a negative appraisal are important causes. Low-confidence students frequently question their capacity to do effectively, while perfectionists hold themselves to unreasonably high standards that are hard to achieve.
- **Social Factors**
  A student's emotional health is also influenced by the social milieu in which they function. cademic anxiety can be exacerbated by bullying experiences, peer pressure to perform, and a lack of sufficient social support (Deci & Ryan, 1985). For instance, students may feel inadequate if they are often comparing their performance to that of their peers, and bullying can create a hostile climate that affects motivation and focus. To lessen these consequences, it is essential to have a network of friends, family, and teachers who are supportive.
- **Stressors in the Environment**
  Anxiety-promoting environments are produced by outside variables such as overburdened curriculum, strict schedules, and a lack of leisure time. Students' mental health suffers as a result of these challenges since they have little time to relax.

Effects of Academic Anxiety

Student's cognitive, emotional, behavioral, physical, and social dimensions are all impacted by academic anxiety, which has significant and wide-ranging effects. These impacts create a chain reaction of negative consequences that affect not just academic achievement but also general well-being.

- **Impairment of cognition**
  The negative influence that academic anxiety has on cognitive functioning is among its most obvious consequences. Anxiety impairs focus, memory recall, and problemsolving skills—all of which are essential for academic achievement. Zeidner (1998) emphasizes how elevated anxiety levels affect the brain's capacity to efficiently process and recall information.
- **Mental Anguish**

A common symptom of academic anxiety is severe emotional anguish. Students who suffer from this type of anxiety may feel overwhelmed, irritated, or powerless, which lowers their feeling of value. Emotional difficulties are made worse by persistent anxiety, which encourages negative thought patterns like catastrophizing or presuming failure. Beyond the classroom, this emotional upheaval may also impact a student's capacity to participate in extracurricular activities or preserve a positive work-life balance. If nothing is done, these distressing emotions may worsen and may lead to more serious mental health conditions including depression or long-term stress.

- **Modification in Behavior**
  Students' conduct is greatly impacted by academic anxiety, which frequently results in unhealthy coping strategies. Common reactions to the excessive strain of academic obligations include avoidance behaviors, such as skipping classes, putting off doing assignments, or avoiding difficult work (Lazarus & Folkman, 1984).

Theoretical Perspective on Academic Anxiety

- **Cognitive Behavioral Theory:** According to CBT, students' negative thought patterns, including questioning their skills or catastrophizing, cause and maintain academic anxiety. By changing these unhelpful ideas into constructive, positive ones, students might lessen their worries and boost their academic confidence (Bandura, 1986).
- **Self-Determination Theory**: SDT contends that by encouraging a sense of independence and involvement, intrinsic motivation—fueled by sincere interest and individual objectives—helps lower anxiety. Students feel less pressure and have more emotional stability when they believe that their education is in line with their beliefs and decisions (Deci & Ryan, 1985).
- **Social Cognitive Theory:** According to this theory, self-efficacy—the conviction that one can succeed—is a crucial component of anxiety management. Small victories help students gain confidence in their skills, which makes them less prone to worry and more robust to academic pressures (Bandura, 1986).
  Transactional Modal of Stress and Coping: According to the model, students experience academic anxiety when they believe that stresses (such as deadlines or tests) are greater than their capacity for coping. Students can manage stress and lower their anxiety levels by using effective coping mechanisms like problem-solving or reaching out for social support (Lazarus & Folkman, 1984).

Strategies to Mitigate Academic Anxiety

- **Developing Resilience**
  An essential skill for controlling academic anxiety is resilience, which is the capacity to adjust constructively to stress and adversity. Students who learn stress-reduction strategies like cognitive reframing and emotional control are better prepared to handle difficult academic circumstances. Resilience-building activities, like problem-solving exercises or peer support groups, can help students manage stress in a healthy way, allowing them to bounce back from setbacks and lower their anxiety levels, claim Lazarus and Folkman (1984).
- **Encouraging Self-Effeciousness**
  Reducing academic anxiety requires encouraging students to set realistic goals and grow in confidence in their skills. According to Bandura (1986), kids can develop selfefficacy by receiving positive reinforcement and seeing successful behavior models, such as classmates who have overcome comparable obstacles.
- **Creating a Supportive Environment**
  Academic anxiety can be significantly reduced in a supportive learning environment. Deci and Ryan (1985) contend that students' intrinsic motivation rises and anxiety levels fall when they feel appreciated and encouraged. Students can feel safe and

inspired to participate in their educational path when there is open communication, constructive criticism, and emotional support available.

- **Including Relaxation Methods**
  Stress-reduction methods that have been shown to work include breathing exercises, mindfulness, and meditation. These techniques aid in mental relaxation, enhance concentration, and lessen the physical signs of stress, including tightness or an elevated heart rate. Zeidner (1998) emphasizes that by incorporating these strategies into everyday activities or classroom exercises, children may develop resilience and mental clarity, which makes it simpler for them to handle academic difficulties.

Conclusion

Academic anxiety is a complex problem that necessitates a thorough comprehension of its sources, consequences, and theoretical underpinnings. Stakeholders may lessen the negative effects of academic anxiety on secondary school students by implementing evidence-based practices and creating a positive learning environment. In order to improve students' general well-being and academic performance, future research should investigate novel treatments and evaluate their efficacy in various educational environments (Zeidner, 1998; Lazarus & Folkman, 1984).

References

1. Bandura, A. (1986). *Social Foundations of Thought and Action: A Social Cognitive Theory*. Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
2. Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). *Intrinsic Motivation and Self-Determination in Human Behavior*. New York: Springer.
3. Eccles, J. S., & Wigfield, A. (2002). Motivational beliefs, values, and goals. *Annual Review of Psychology, 53*(1), 109–132.
4. Lazarus, R. S., & Folkman, S. (1984). *Stress, Appraisal, and Coping*. New York: Springer.
5. Pekrun, R. (2006). The control-value theory of achievement emotions: Assumptions, corollaries, and implications for educational research and practice. *Educational Psychology Review, 18*(4), 315–341.
6. Skinner, E. A., & Edge, K. (2002). Self-determination, coping, and achievement: A theoretical overview. *Contemporary Educational Psychology, 27*(4), 449–470.
7. Zeidner, M. (1998). *Test Anxiety: The State of the Art*. New York: Springer.

Swatijangra95@gmail.com Sudsingh48@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 119-122
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राम भक्ति काव्य धारा का सामाजिक प्रभाव एवं विस्तार

अविनाश पाण्डेय
शोध छात्र हिंदी,
डॉ राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या उत्तर प्रदेश,
डॉ अनुराग मिश्रा
शोध निर्देशक,
प्रोफेसर, का० सु० साकेत पी० जी० कालेज अयोध्या उत्तर प्रदेश

सारांश
भक्तिकाव्य दो धाराओं में विभक्त है– निर्गुण भक्त काव्य और सगुण भक्ति काव्य। इनका भी क्रमशः संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य और रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य में विभाजन हुआ है। भक्ति काव्य की विविध धाराओं की विभिन्नता के बावजूद, ऐसी कुछ समान विशेषताएँ हैं जो समूचे भक्ति काव्य में दिखलाई पड़ती हैं यथा–भक्ति, गुरुमहिमा, नाम स्मरण का महत्व, सत्य–शील–सदाचार पर बल, लोकधर्मिता इत्यादि। निर्गुण सगुण भक्ति में मुख्य भेद उपास्य के स्वरुप भक्ति, के आधार को लेकर है। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, इंद्रियातीत माना गया है जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म सविशेष, साकार इंद्रिय गम्य है। अवतारवाद में निर्गुण संतों की कोई आस्था नहीं है, जबकि सगुण भक्त ईश्वर के अवतारों में विश्वास करते हैं। भक्तिकाव्य का उदय एवं विकास भक्ति आंदोलन के दौरान होता है। सिद्ध, नाथ, दक्षिण के आलवार, महाराष्ट्र के नामदेव, वैष्णव आचार्यों, सूफियों इन सभी की प्रेरणा प्रभाव स्वरुप संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति, कृष्ण भक्तिकाव्य का विकास होता है। भक्ति काव्य की इन चारों शाखाओं के क्रमशः प्रतिनिधि रचनाकार कबीर जायसी, तुलसीदास और सूरदास है। भक्तिकाव्य की मूल संवेदना भक्ति है, वह समाज की आध्यात्मिकक तृषा को तृप्ति प्रदान करता है, उसकी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसे ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। भक्ति काव्य का सबसे बड़ा महत्व उसकी मानवीयता और लोकधर्मिता के कारण है।

शब्दावली
आविर्भूत– प्रकट हुआ
विषयासक्ति – विषयों में आसक्ति
सम्प्रदाय – धर्म मत
क्रियाकलाप – विभिन्न प्रकार के कार्य
त्रिताप – तीन प्रकार के ताप (दैहिक दैविक, भौतिक)

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
(क) 1. बीजक 2. तीन 3. गवाह 4. पद 5. दोहा

प्रस्तावना
प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन

परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत, निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय–की विस्तृत विवेचना की जाएगी। दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व–मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। श्भक्तिश शब्द की निष्पत्ति श्भज्श धातु से हुई है जिसका अर्थ है श्भजनाश। अर्थात् ईश्वर का चिंतन–मनन, उसके गुणों का श्रवण–कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर–प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं–कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य–साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व–चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान–समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व–चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा–समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को श्परम प्रेमरूपाश एवं श्अमृतस्वरूपाश कहा गया है– श्सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप च।श तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है।

भक्ति का उदय–

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एका क्रामिचा विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते है विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का देवीकरण, सुख–शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईधर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं. ये बातें हमें वैविक अचाओं में भी मिलती है। परमात्मा की माता–पिता, बंधु–सरवां के रूप में अर्चना की गई है– प्रभा तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्ही हमारी माता हो। है अनंतजानी। आपसे ही हम आनंद–प्राप्ति की अकांक्षा करते है–

''त्व हि नी पिता कारोत्वं माता शतक्रतो वभूतिया अद्या ते सुम्नमीमहे (ऋग्वेद 8/98/11)।' पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मरण की भावना को प्रकट करते हुए, ऋग्वेद का ऋषि कहता है– प्रभी ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्ता के प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन–गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती है। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सीपकर वैसे ही. निचिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चित होकर बैठ जाता है।

में हि ब्रह्मकतः सते सचा मधो न मक्ष आसते।
न्द्रे कार्म जरितारो वस्यको रथे न पादमा तनुः।। (क्र. 7/32/2)

वेदों में ईथर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बज्ञान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं–

यो घृतं च भव्यं च सर्व श्राधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्ये ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद–10/8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त है तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम उपनिषदों में ताव–चिंतन की प्रधानता है– किनु कहीं–कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, चेतावतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, कठोपनिषद में कहा गया है. यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेधा

के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृत्या से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राशि भक्ति चिंतन में ईकर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सुहि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सूजन होता है और उसी में सुष्टि विलीन होता है।

रामभक्ति काव्य–

आदिकाल से ही राम काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। दरअसल उच्चतर मानवीय मूल्यों पर आधारित राम का व्यक्तित्व एवं जीवन हमेशा रचनाकारों को आकृष्ट करता रहा है। भारतीय संस्कृति के वह केन्द्रीय चरित्र हैं। राम एक ऐतिहासिक चरित्र हैं या मिथकीय यह विवाद का मुद्दा भले हो, किन्तु भारतीय समाज–संस्कृति में राम की अत्यंत गहरी और व्यापक उपस्थिति एक यथार्थ है। बहरहाल आदिकवि बाल्मीकि कृत आदिग्रंथ श्रामायणश में सर्वप्रथम रामकथा का निरूपण किया गया है। बाल्मीकि के पूर्व रामकथा की वाचिक और लिखित परम्परा निश्चित तौर पर रही होगी। लेकिन अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। 'रामायण' का रचनाकाल चौथी सदी ई.पू० माना जाता है। रामायण का भिन्न क्षेत्रों–समाजों, भाषाओं में भिन्न– भिन्न रूप में रूपांतर–विकास हुआ है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी रामकथा का खूब प्रचार– प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती, बंग्ला, हिन्दी, काश्मीरी, असमी, नेपाली आदि कई भाषाओं में रामकथा का प्रणयन हुआ। इनमें कालिदास कृत 'रघुवंश' भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', कम्बन कृत 'तमिल रामायण', कृत्तिवास कृत बंग्ला में 'कृतिवासीय रामायण' तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस', माधव कन्दलि कृत 'असमिया रामायण' इत्यादि को विशेष ख्याति मिली। हिन्दी में राम काव्य परम्परा में सर्वोच्च स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है। उन्होंने रामकथा को व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित कर जनता का कंठहार बना दिया। समन्वय का विराट चेष्टा और लोकमंगल के विधान के कारण तुलसी को अपार लोकप्रियता मिली। आचार्य शुक्ल के अनुसार श्जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरुपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं. 1073) ने खड़ा किया।

सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाका बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच–नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, सरनाम सिंह, कबीर, व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली।
2. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, कबीर–साखी और सबद, 2007, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली।
3. दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, (सम्पादक मुकुदं द्विवेदी) 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 123-126
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ನಡುವಿನ ಸಂಬAಧ: ಒಂದೇ ನಾವೆಲ್ಲಾ

-ಪ್ರೊ|| ಪಂಡಿತರಾವ ಚಂದ್ರಶೇಖರ ಧರೆನ್ನವರ

ಸಹಾಯಕ ಪ್ರಾಧ್ಯಾಪಕರು, ಸಮಾಜ ಶಾಸ್ತ್ರ,
ಸರಕಾರಿ ಕಾಲೇಜು, ಸೆಕ್ಟರ್ ನಂ.೪೬, ಚAಡೀಗಢ (ಪಂಜಾಬ್)

ೆObsಣಡಿಚಿಛಿಣ : ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ಭಾರತದಲ್ಲಿ ದಕ್ಷಿಣದ ಉತ್ತರದತ್ತವಿದ್ದರೂ ಸಹಿತ ಸಂಬAಧ ಮಾತ್ರ ಬಹಳ ಸಮೀಪ ಇದೆ. ನಡೆಸುವ ಜೀವನಶೈಲಿ ಬೇರೆ ಇದ್ದರೂ ಸಹಿತ ಸವಿಯುತ್ತಿರುವ ಜೀವನದ ರುಚಿ ಮಾತ್ರ ಒಂದೇ ಆಗಿದೆ. ಪಂಜಾಬಿನಲ್ಲಿ ೧೨ನೆಯ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ನಡೆದ ಸುಫಿವಾದ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದ ಸಂತ ಶಿಶುನಾಳ ಷರೀಫರ ಕೀರ್ತನೆ ಒಂದೇ ನಾದದಲ್ಲಿ ನಡೆಯುತ್ತಿರುವ ದೋಣಿಯಂತೆ ಕಾಣಿಸುತ್ತವೆ.

ಬಾಬಾ ನಾನಕ ಅವರ ಗುರುವಾಣಿಯ ಆನಂದ ಮತ್ತು ವಚನಗಳ ಪರಮಾನಃದ ದೇವರ ದೇಗುಲಿಗೆ ಕರೆದೊಯ್ಯುತ್ತವೆ. ವಚನಗಳನ್ನು ಉಳಿಸಲು ನಡೆದ ಹೋರಾಟ ಮತ್ತು ಮಾನವೀಯತೆಯನ್ನು ಉಳಿಸಲು ಹೋರಾಡಿದ ಶ್ರೀ ಗುರು ಗೋವಿಂದ ಸಿಂಗ್ ಅವರ ಸಾಹಸ ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳ ನಡುವೆ ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಂಬAಧವಿದೆ ಎಂದು ಹೇಳುತ್ತವೆ.

ಆಧುನಿಕ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ನಡೆದ ಸಾಹಿತ್ಯದ ರಚನೆಯೂ ಸಹಿತ ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕವನ್ನು ಸಮೀಪ ತರುತ್ತವೆ. ಸಿದ್ದಲಿಂಗಯ್ಯನವರ ದಲಿತ ಹಕ್ಕುಗಳ ಹಾಡು ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬಿನ ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿಯ ``ಬುಲಂದ ಅವಾಜ್' ' ಗೆ ಧ್ವನಿ ಸೇರಿಸಿ ಇಬ್ಬರೂ ಕವಿಗಳು ಒಂದೇ ತಾಯಿಯ ಮಕ್ಕಳು ಎಂದು ಸಾರಿ ಸಾರಿ ಹೇಳುತ್ತವೆ.

ಭಾರತ ದೇಶದ ಎಲ್ಲಾ ರಾಜ್ಯಗಳು ಒಂದನ್ನೊAದು ಸಂಬAಧ ಹೊಂದಿಕೊAಡಿವೆ. ಕೆಲವೊಂದು ರಾಜ್ಯಗಳು ಒಂದಕ್ಕೊAದು ಅದೆಷ್ಟು ಸಂಬAಧ ಹೊಂದಿವೆ ಎಂದರೆ, ಭಾಷೆ, ಜೀವನಶೈಲಿ, ತಿನ್ನುವ ಆಹಾರ ಎಲ್ಲವೂ ಒಂದಾಗಿವೆ. ೧೯೪೭ರಲ್ಲಿ ಭಾಷೆಗಳ ಆಧಾರದ ಮೇಲೆ ಪ್ರಾಂತಗಳನ್ನು ಬೇರ್ಪಡಿಸಿದರೂ ಸಹಿತ ಒಂದಕ್ಕೊAದು ಹತ್ತಿಕೊಂಡಿರುವ ರಾಜ್ಯಗಳು ಒಂದೇ ಆಗಿವೆ ಎಂಬ ಭಾವನೆ ನೀಡುತ್ತವೆ. ಆದರೆ ಕೆಲವೊಂದು ರಾಜ್ಯಗಳ ನಡುವೆ ಭಿನ್ನಾಭಿಪ್ರಾಯಗಳು ಇದ್ದರೂ ಸಹಿತ ಒಂದಾಗಿ ಶಾಂತಿಯುತವಾಗಿ ಜೀವನ ನಡೆಸುತ್ತವೆ.

ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಂಬAಧ :

ವಿಚಿತ್ರವೆಂದರೆ, ಭಾರತದ ದಕ್ಷಿಣದ ಉತ್ತರದತ್ತ ಇರುವ ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ಒಂದಕ್ಕೊAದು ಹೊಂದಿಕೊAಡಿಲ್ಲವಾದರೂ ಸಹಿತ ಸಾಮಾಜಿಕ ಮತ್ತು ಐತಿಹಾಸಿಕ ರೂಪದಲ್ಲಿ ಹೊಂದಿಕೊAಡಿವೆ.

ಮೊದಲನೆಯದಾಗಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಂಬAಧದ ರೂಪದಲ್ಲಿ ಇವೆರಡೂ ರಾಜ್ಯದ ಜನರು ಧರಿಸುವ ಬಟ್ಟೆಗಳು ಕೆಲವೊಂದು ಒಂದೇ ತರಹ ಇವೆ. ಪಂಜಾಬಿನ ಜನರು `ದಸ್ತಾರ' ಧರಿಸಿದರೆ, ಉತ್ತರ ಕರ್ನಾಟಕದ ಜನರು `ರುಂಬಾಲ' ಧರಿಸಿ ಯಾವದೇ ಸರದಾರಗಿಂತ ಕಡಿಮೆ ಕಾಣಿಸುವದಿಲ್ಲ. ಹೆಣ್ಣುಮಕ್ಕಳು ಉಡುವ `ಗಗ್ಗರಿ' ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ಉಪಯೋಗಿಸಲಾಗುತ್ತದೆ. ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳಲ್ಲಿಯೂ ಇದಕ್ಕೆ ಗಗ್ಗರಿಯೆಂದೇ ಕರೆಯಲಾಗುತ್ತದೆ.

ಉತ್ತರ ದಕ್ಷಿಣದತ್ತ ಇದ್ದರೂ ಸಹಿತ ಇವರು ಆಡುವ ಭಾಷೆಗಳಲ್ಲಿ ಕೆಲವೊಂದು ಪದಗಳು ಮಾತ್ರ ಒಂದೇ ತರಹ ಇವೆ. ಅಡುಗೆ ಮನೆಯಲ್ಲಿ ಬಳಸುವ ಪಾತ್ರೆಗಳಿಗೆ ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ `ಬಾಂಡ್ಯಾ' ಎಂದರೆ, ಪಂಜಾಬಿನ ಜನರೂ ಸಹಿತ `ಬಾಂಡ್ಯಾ' ಎಂದೇ ಕರೆಯುತ್ತಾರೆ. ತಂದೆಗೆ ಕರ್ನಾಟಕದವರು `ಅಪ್ಪಾ' ಎಂದು ಕರೆದರೆ, ಪಂಜಾಬಿ ಜನರು `ನಾವು' ಎಂಬ ಪದಕ್ಕೆ `ಅಪ್ಪಾ' ಎಂದು ಕರೆಯುತ್ತಾರೆ.

ಐತಿಹಾಸಿಕ ಸಂಬAಧ :

ಪಂಜಾಬದಲ್ಲಿ ನಡೆದ ೧೨ನೆಯ ಶತಮಾನದ ಸುಫಿ ಸಂತರ ಸಂದೇಶ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದ ಸಂತ ಶಿಶುನಾಳ ಷರೀಫರು ತನ್ನ ಗಂಡ ದೇವರು ಎಂದು ಆ ನಾರಾಯಣನ ನಾದದಲ್ಲಿ ನೃತ್ಯಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಪಂಜಾಬಿನ ಬುಲ್ಲೇಶಾ ಮಾತ್ರ ಕಾಲಲ್ಲಿ ಗೆಜ್ಜೆ ಕಟ್ಟಿಕೊಂಡು ಬಜಾರಿನಲ್ಲಿ ಆ ದೇವರ ನೆನಪಿನಲ್ಲಿ ನೃತ್ಯಿಸುವ ರೀತಿ ಮತ್ತು ಸಂತ ಶಿಶುನಾಳರ ``ಎಲ್ಲರಂಥವನಲ್ಲ ನನ ಗಂಡ ಬಲ್ಲಿಗನು ತುಂಡಾ' ' ಎಂಬ ದೇವರ ಹಾಡು ಒಂದೇ ಎಂದೇ ಅನುಸರಿಸುತ್ತದೆ.

ಸುಫಿವಾದದ ಪ್ರತಿಯೊಂದು ಸಂದೇಶ ಗುಟ್ಟು ಹೊಂದಿದ ಎರಡು ಅರ್ಥ ವಾಣಿಗಳಾಗಿದ್ದರೆ ಶಿಶುನಾಳ ಷರೀಫರ ``ತರವಲ್ಲ ತಗಿನಿನ್ನ ತಂಬೂರಿ ಬರದೆ ಬಾಲವಿದರೂ ತಂಬೂರಿ' ' ಎಂಬ ಗುಟ್ಟು ಹೊಂದಿದ ಅರ್ಥಗರ್ಭಿತವಾದ ದೇವರ ಹಾಡೂ ಸಹಿತ ಅರ್ಥಗರ್ಭಿತವಾದ ವಾಣಿಯು.

ಪಂಜಾಬಿನ ಬಾಬಾ ಷರೀದರ, ``ಬುಲ್ಲೆ ಷಾ, ಸುಲ್ತಾನ ಬಹು....'' ಹಾಗೂ ಷಾಹಾ ಹುಸೇನ ಅವರ ದೇವರ ವರ್ಣನೆ ಮತ್ತು ಸಂತ ಶಿಶುನಾಳ ಷರೀಫರು ಮಾಡುವ ದೇವರ ವರ್ಣನೆ ನೋಡಿದರೆ, ಇವರೆಲ್ಲರೂ ಒಂದೇ ತಾಯಿಯ ಮಕ್ಕಳು ಎನ್ನುವ ಭಾವನೆ ಹುಟ್ಟುತ್ತದೆ.

ದೇವರನ್ನೇ ಗಂಡನೆAದು ನಂಬಿ ಆ ದೇವರ ಲೀಲೆ ಹಾಡಿಹೊಗಳಿದ ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದ ಸಂತರ ಸಂಬAಧ ಬಹಳ ಅರ್ಥಗರ್ಭಿತವಾಗಿದೆ.

ವಚನ-ಗುರುವಿಗಿರುವ ಸಂಬAಧ :

೧೫ನೆಯ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ಬಾಬಾ ನಾನಕ ಅವರ ಈ ಜಗದಲ್ಲಿ ಆಗಿದ್ದ ಆಗಮನ ಮಾನವ ಕುಲಕ್ಕೆ ವರದಾನವೇ ಸರಿ. ಏಕೆಂದರೆ, ಆ ಕಾಲದ ಸಾಮಾಜಿಕ, ರಾಜಕೀಯ ಜೀವನ ಸಾಮಾನ್ಯ ಜನರಿಗೆ ಒಳ್ಳೇ ಜೀವನ ನಡೆಸುವದಕ್ಕೂ ಬಿಡುತ್ತಿರಲಿಲ್ಲ. ಅನ್ಯಾಯ, ಅತ್ಯಾಚಾರ ಎಲ್ಲಾ

ಸೀಮೆಗಳನ್ನು ದಾಟಿದ್ದವು. ಆ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರು ಆ ಕಾಲದ ರಾಜನಾದ ಬಾಬರನನ್ನು ಜಾಬರ ಎಂದು ಕರೆದು ಅನ್ಯಾಯದ ವಿರುದ್ಧ ಧ್ವನಿಯೆತ್ತಿದ್ದರು. ಹೆಣ್ಣುಮಕ್ಕಳ ಸ್ಥಿತಿಗತಿ ಅಧೋಗತಿ ಇರುವ ಆ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಶ್ರೀ ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರು ``ಸೋಕೆಂಯ ಮುಂದಾ ಆಖ್ಯಿಯೆ ಜಿತ್ತ ಜಮ್ಮಿಯೆ ರಾಜನ್'' ಅಂದರೆ, ರಾಜಮಹಾರಾಜರನ್ನು ಜನ್ಮ ನೀಡುವ ಆ ಹೆಣ್ಣಿಗೆ ಕೀಳಾಗಿ ಕಾಣುವದೇಕೆ ಎಂದರು. ಜಾತೀಯತೆ ತೊಲಗಿಸಲು ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರು ಲಂಗರ ಪ್ರಥಾ ಪ್ರಾರಂಭಿಸಿದರು.

ಬಾಬಾ ನಾನಕ ಅವರು ``ಕಿರತ್ ಕರೋ, ವಂಡ ಶಕೋ ನಾಮ ಜಪೋ'' ಎಂಬ ಸಿದ್ಧಾಂತ ನೀಡಿದರು. ಕಿರತ ಕರೋ ಎಂದರೆ, ಕೆಲಸ ಮಾಡು, ವಂಡ ಶಕೋ ಎಂದರೆ, ಹಂಚಿ ತಿನ್ನು ಮತ್ತು ನಾಮ ಜಪೋ ಅಂದರೆ ದೇವರ ಮನನ ಮಾಡು. ಇವೆಲ್ಲ ರೀತಿಯಿಂದ ಜನರನ್ನು ದೇವರ ಜೊತೆ ಸೇರಿಸಲು ಪ್ರಯತ್ನಿಸಿದ ಬಾಬಾ ನಾನಕ ತಮ್ಮ ಜೀವನದಲ್ಲಿ ನಾಲ್ಕು `ಉದಾಸಿ' ಪ್ರಯಾಣ ನಡೆಸಿದ ಜಗತ್ತಿನಾದ್ಯಂತ ತಿರುಗಿದರು.

ಬಸವಣ್ಣನವರ ಮುಖಾಂತರ ಸಂಬAಧ :

೧೨ನೆಯ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ, ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ ನಡೆದ ವಚನ ಆಂದೋಲನ ಮತ್ತು ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರ ಗುರುವಾಣಿಯ ಆಶೀರ್ವಾದ ಹೊಂದಿರುವ ಸಂಬAಧ ಒಂದೇ ಎಂದು ಎತ್ತಿ ಹಿಡಿಯುತ್ತವೆ. ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರು ಬಾಬರನನ್ನು ಜಾಬರ ಎಂದು ಪ್ರತಿಭಟಿಸಿದ್ದರೆ, ಬಸವಣ್ಣನವರು ಆ ಕಾಲದ ಬಿಜ್ಜಳ ರಾಜನ ಎದುರು ಸಿಡಿದೆದ್ದಿದ್ದರು. ಆ ಕಾಲದ ಅನ್ಯಾಯ, ಅತ್ಯಾಚಾರದ ವಿರುದ್ಧ ಧ್ವನಿಯೆತ್ತಿದ ಬಸವಣ್ಣನವರು ಜಾತಿವಾದವನ್ನು ತೊಲಗಿಸಲು ಅಂತರ್‌ಜಾತಿ ವಿವಾಹ ನಡೆಸಿದ್ದರು. ಎಲ್ಲರೂ ಸಮಾನರು ಎಂಬ ಸಂದೇಶ ಸಾರಲು, ಬಸವಣ್ಣನವರು `ದಾಸೋಹ' ಪ್ರಾರಂಭಿಸಿ ಎಲ್ಲರನ್ನು ಕೆಳಗೆ ಕುಳಿತು ಅನ್ನ ಉಣ್ಣುವ ರೂಢಿ ಪ್ರಾರಂಭಿಸಿದ್ದರು. ಆ ಕಾಲದ ಹೆಣ್ಣುಮಕ್ಕಳ ಪರಿಸ್ಥಿತಿಯನ್ನು ಸುಧಾರಿಸಲು ತಮ್ಮ ವಚನದಲ್ಲಿ ಹೆಣ್ಣಿನ ಮಹತ್ವದ ಬಗ್ಗೆ ಜನರಿಗೆ ತಿಳಿಹೇಳಿದ್ದರು. ಅಕ್ಕಮಹಾದೇವಿ ಅವರಿಗೆ `ಅನುಭವ ಮಂಟಪ' ದಲ್ಲಿ ಪ್ರಮುಖ ಸ್ಥಾನ ನೀಡಿ, ಹೆಣ್ಣಿಗೆ ಅತಿಗೌರವ ನೀಡಿದ ಗೌರವ ಬಸವಣ್ಣನವರಿಗೆ ಸಲ್ಲುತ್ತದೆ.

`ಕಾಯಕವೇ ಕೈಲಾಸ' ಎಂದು ತಿಳಿಹೇಳಿದ ಬಸವಣ್ಣನವರು ದುಡಿದು ತಿನ್ನುವ ಸಂದೇಶ ನೀಡಿದ್ದರು. ದೇವರಲ್ಲಿ ಸಂಪೂರ್ಣ ಧ್ಯಾನ ಮಾಡುವದು ವಚನಗಳ ಮುಖಾಂತರವೇ ಎಂದು ಹೇಳಿದರು. ಬಸವಣ್ಣನವರು ಸಾವಿರಾರು ವಚನಗಳ ರಚನೆ ಮಾಡಿದ್ದರು. ಬಸವಣ್ಣನವರ ದಾರಿ ಪಾಲಿಸಿದ ಅನೇಕ ವಚನಕಾರರು ಸಾವಿರಾರು ವಚನಗಳನ್ನು ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಬರೆದು ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯನ್ನೇ ಶ್ರೀಮಂತಗೊಳಿಸಿದರು.

ಕರ್ನಾಟಕದ ಬಸವಣ್ಣ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬಿನ ಗುರು ನಾನಕ ಅವರ ಸಿದ್ಧಾಂತ ಮತ್ತು ವಿಚಾರಧಾರೆ ಒಂದೇ ತರಹ ಕಾಣುತ್ತದೆ. ಬೇರೆ ಬೇರೆ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ಇವರಿದ್ದರೂ ಸಮಾಜದ ಸುಧಾರಣೆಗೆ ಮಾಡಿದ ಪ್ರಯತ್ನವೆಲ್ಲಾ ಒಂದೇ ತರಹ ಕಾಣಿಸುತ್ತದೆ. ಇಂದು ಇವರ ವಿಚಾರಧಾರೆಗಳನ್ನು ಸಂಶೋಧನೆಯ ದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ನೋಡಿದಾಗ ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದ ನಡುವೆ ಗಾಢವಾದ ಸಂಬAಧವಿದೆ ಎಂದು ಕಾಣುತ್ತದೆ.

ಸಂಶೋಧನೆಯ ವಿಷಯ ಮತ್ತೊಂದು ಏನೆಂದರೆ, ಗುರು ನಾನಕ ದೇವಜೀ ಅವರು ೧೫ನೇ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ಕರ್ನಾಟಕದ ಬೀದರಗೆ ಬಂದಾಗ, ಬೀದರಿನಲ್ಲಿಯೇ ಇದ್ದ ವಚನಗಾರರ ವಚನಗಳನ್ನು ತೆಗೆದುಕೊಂಡು ಅದೇಕೆ ಪಂಜಾಬಿಗೆ ಬರಲಿಲ್ಲ. ಏಕೆಂದರೆ ಗುರು ನಾನಾಕ ದೇವ

ಜೀ ಅವರು ತಮ್ಮ ಉದಾಸಿಯ ಸಮಯದಲ್ಲಿ ದೇಶಾಪ್ರಾಂತ್ಯದಲ್ಲಿದ್ದ ಸಂತ, ಫಕೀರ ಅವರ ವಾಣಿಗಳನ್ನು ತಂದಿದ್ದರು. ಆ ವಾಣಿಗಳೆಲ್ಲಾ ತದನಂತರ ಶ್ರೀ ಗುರು ಗ್ರಂಥ ಸಾಹೇಬದಲ್ಲಿ ಸೇರ್ಪಡೆ ಮಾಡಲಾಗಿತ್ತು. ಹಾಗಾದರೆ, ವಚನಗಳನ್ನು ಅದೇಕೆ ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರು ತರಲಿಲ್ಲ ಎಂಬುದು ಸಂಶೋಧನೆಯ ವಿಷಯವಾಗಿದೆ. ಸಾಧ್ಯವಾದ ಕಾರಣವೇನೆಂದರೆ, ವಚನಗಳನ್ನು ಅನುವಾದ ಮಾಡಿ ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರಿಗೆ ಆ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಯಾರೂ ಹೇಳದೇ ಇದ್ದದ್ದು ಎಂದೆನಿಸುತ್ತದೆ.

ಆಕಸ್ಮಿಕವಾಗಿ ಏನಾದರೂ ವಚನಗಳನ್ನು ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅವರು ತಂದು ಶ್ರೀ ಗುರು ಗ್ರಂಥ ಸಾಹೇಬದಲ್ಲಿ ಸೇರ್ಪಡೆ ಮಾಡಿದ್ದರೆ ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬಿನ ಸಂಬAಧ ಇನ್ನೂ ಸದೃಡವಾಗುತ್ತಿತ್ತು. ಆದರೂ ಸಹಿತ ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬಿನ ಸಂಬAಧ ಇಂದಿಗೂ ಸದೃಢವಾಗಿದೆ ಮತ್ತು ಮುಂದೆಯೂ ಸದೃಢವಾಗಿರುತ್ತದೆ. ಏಕೆಂದರೆ ಶ್ರೀ ಗುರು ಗ್ರಂಥ ಸಾಹೇಬ ಏನಾದರೂ ಕನ್ನಡದಲ್ಲಿ ಅನುವಾದವಾದರೆ ಕನ್ನಡದ ಜನರ ಜೀವನ ಉದ್ಧಾರವಾಗುವದು ಮಾತ್ರ ಖಂಡಿತ. ಏಕೆಂದರೆ ೧೨ನೆಯ ಶತಮಾನದ ವಚನಗಳು ಮತ್ತು ೧೫ನೆಯ ಶತಮಾನದ ಗುರುವಾಣಿ ಒಂದೇ ದೇವರ ವರ್ಣನೆ ಮಾಡಿ ಎಲ್ಲರನ್ನೂ ಒಂದಾಗಿಸುವ ಕೆಲಸ ಮಾಡುತ್ತವೆ.

ಏeಥಿ ತಿoಡಿಜs : ವಚನ, ಗುರುವಾಣಿ, ಬಸವಣ್ಣ, ಗುರು ನಾನಾಕ, ಉದಾಸಿ, ಅನುಭವ ಮಂಟಪ, ಬುಲ್ಲೆ ಷಾ, ಬಾಬಾ ಫರೀದ, ಸಂಶೋಧನೆ, ಸಂತ ಶಿಶುನಾಳ ಷರೀಫ, ಅಕ್ಕಮಹಾದೇವಿ.

ಖeಜಿeಡಿeಟಿಛಿe :

೧) ಸಿಂಗ್ ಸಾಹೇಬ, ಶ್ರೀ ಗುರು ಗ್ರಂಥ ಸಾಹೇಬ ಜೀ

೨) ಮಹಾದೇವಯ್ಯ ಟಿ.ಆರ್. ೨೦೧೨; `ಬಸವಣ್ಣನವರ ಸಮಗ್ರ ವಚನಗಳು' , ಬಸವ ಸಮಿತಿ, ಬೆಂಗಳೂರು

೩) ಲAಗೋಟಿ ಸಿದ್ದಣ್ಣ ೨೦೨೧; ಸಿದ್ಧಕಲ್ಯಾಣ, ಚಿತ್ತರಗಿ. ಶ್ರೀ ವಿಜಯ ಮಹಾಂತೇಶ್ವರ ಧರ್ಮ ಪ್ರಚಾರ ಮಂಡಲ, ಇಳಕಲ್ಲ. ಜಿಲ್ಲಾ ಬಾಗಲಕೋಟ.

೪) ಜಗದ್ಗುರು ಮಾತೆ ಮಹಾದೇವಿ `ತರಂಗಿಣಿ' , ೧೯೬೫; ವಿಶ್ವಕಲ್ಯಾಣ ಮಿಷನ್, ಬಸವ ಮಂಟಪ, ರಾಜಾಜಿನಗರ, ಬೆಂಗಳೂರು.

೫) ಸಿAಗ್ ಖುಶವಂತ್, ೧೯೬೦; ರಿವಿವ್ ಆಫ್ ಗುರು ನಾನಕ ಆ್ಯಂಡ್ ಸಿಖ್ ರಿಲೀಜಿಯನ್

ಮೊ.: ೯೯೪೪೩ ೫೧೬೯೫

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 127-132
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਬਸਵੱਨਾ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ

ਡਾ. ਪੰਡਿਤਰਾਓ ਚੰਦਰਸ਼ੇਖਰ ਧਰੇਨਵਰ
ਐਸੋਸਿਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ
ਪੋਸਟ ਗ੍ਰੈਜੂਏਟ ਗੋਰਮਿੰਟ ਕਾੱਲਜ, ਸੈਕਟਰ-46, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ

ਕੀ ਵਰਡਸ - (ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਸ਼ਬਦ) — ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ, ਬਸਵੱਨਾ, ਵਚਨ ਅੰਦੋਲਨ, ਅੱਲਮ ਪ੍ਰਭੂ, ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, ਸਾਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ, ਕਰਨਾਟਕਾ, ਜੈਦੇਵ ਜੀ, ਨਾਮਦੇਵ ਜੀ, ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ, ਕੂੜਲਸੰਗਮਦੇਵਾ

ਅਬਸਟਰੈਕਟ

ਭਾਰਤ ਦੇ ਦੱਖਣ ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਪੈਂਦੇ ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਦੌਰਾਨ ਬਹੁਤ ਵੱਡੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਆਈ ਸੀ। ਜਿਸਨੂੰ ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਵਿੱਚ ਵਚਨ ਅੰਦੋਲਨ ਦੇ ਨਾਮ ਤੇ ਜਾਣਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਵਚਨ ਅੰਦੋਲਨ ਮਤਲਬ ਕੰਨੜ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਵਿੱਚ ਉਸ ਵੱਕਤ ਦੇ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਸਮਾਜਿਕ ਸੁਧਾਰਕ ਵੱਲੋਂ ਲਿਖਿਆ ਗਿਆ ਸੰਦੇਸ਼ ਜਿਸਨੂੰ ਪੜ੍ਹ ਕੇ ਉਸ ਵੱਕਤ ਦੇ ਲੋਕ ਆਪਣੇ ਨਾਲ ਹੋ ਰਹੀ ਨਾਂ—ਇੰਸਾਫੀ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਉਠਾਈ ਸੀ। ਵਚਨ ਅੰਦੋਲਨ ਦੀ ਲੰਬੀ ਕਤਾਰ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਸਵੱਨਾ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਬੇਸ਼ਕ ਬਸਵੱਨਾ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, ਅੱਲਮ ਪ੍ਰਭੂ ਮੋਜੂਦ ਸਨ ਪਰ ਬਸਵੱਨਾ ਨੂੰ ਵਚਨ ਅੰਦੋਲਨ ਦਾ ਪਿਤਾਮਾਂਹ ਮੰਨਿਆਂ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਹੀ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਸਾਮਾਜਿਕ ਅਸਮਾਨਤਾ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਆਵਾਜ਼ ਉਠਾ ਕੇ ਕੰਨੜ ਦੇ ਵਿੱਚ ਵਚਨ ਲਿਖਿਆ। ਉਹ ਸਾਰੇ ਵਚਨ ਇਨ੍ਹੇ ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਸਨ ਕਿ ਹਜਾਰੋਂ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਵਚਨਕਾਰ ਪੈਦਾ ਹੋ ਗਏ।

ਸਾਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਲਾਉਣ ਲਈ ਬਸੱਵਨਾ ਨੇ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕੀਤੀ। ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਵ ਉਹ ਥਾਂ ਸੀ ਜਿਥੇ ਹਰ ਵਰਗ ਦੇ ਲੋਕ ਬੈਠ ਕੇ ਸਾਮਾਜਿਕ ਮੁੱਦੇ ਤੇ ਖੁੱਲ ਕੇ ਚਰਚਾ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਇਕ ਪਰਮਾਤਮ ਦਾ ਗੁਨਗਾਨ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਵ ਦੇ ਦੇ ਵਿੱਚ ਹੀ ਹੋ ਕਾਰਨ ਉਸ ਵੱਕਤ ਦੇ ਭਗਤ ਲੋਕਾਂ ਲਈ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਵ ਸਵਰਗ ਤੋਂ ਘੱਟ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਇਸ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਵ ਨੇ ਔਰਤ ਦਾ ਸਨਮਾਨ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਵਰਗੇ ਮਹਾਨ ਸਾਧਵੀਂ ਨੂੰ ਅੱਕਾ ਦਾ ਦਰਜਾ ਦਿੱਤਾ। ਅੱਕਾ ਮਤਲਬ ਵੱਡੀ ਭੈਣ।

ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਉਸ ਵੱਕਤ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਛੁਆ—ਛੁੱਤ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰਨ ਲਈ ਅੰਤਰਜਾਤੀ ਵਿਆਹ ਦਾ ਵੀ ਸਫਲ ਆਯੋਜਨ ਕੀਤਾ ਜੋ ਉੱਚ ਜਾਤੀ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਲਈ ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਸੀ। ਪਰ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਸਾਮਾਜਿਕ ਏਕਤਾ ਅਤੇ ਸਾਮਾਜਿਕ ਅੰਤਰਤਾ ਦੂਰ ਕਰਨ ਲਈ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਕਦਮ ਚੁੱਕਿਆ। ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਦਾਸੋਹ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕੀਤੀ ਜਿੱਥੇ ਹਰ ਵਰਗ ਦੇ ਲੋਕ ਥੱਲੇ ਬੈਠ ਕੇ ਖਾ ਸਕਣ।

ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਸਵੱਨਾ ਵੱਲੋਂ ਕੀਤੀ ਗਈ ਸਾਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਕਾਰਜ ਦੀ ਅੱਜ ਕਲ ਦੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਜਰੂਰਤ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਔਰਤ ਦੀ ਬੇਇੱਜਤੀ ਕਰਨਾ, ਸਾਮਾਜਿਕ ਅੰਤਰਤਾਂ ਨੂੰ ਕੋਈ ਹੋਰ ਢੰਗ ਨਾਲ ਕਰਨਾ ਅੱਜ ਕਲ ਦੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਆਮ ਹੋ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ । ਇਸ ਲਈ ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੀ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਸੋਚ ਅੱਜ ਕਲ ਦੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿੱਚ ਸਹੀ ਢੰਗ ਨਾਲ ਅਪਣਾਉਂਣਾ ਸਮੇਂ ਦੀ ਮੰਗ ਵੀ ਹੈ ਅਤੇ ਖੋਜ਼ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਵੀ ਹੈ। ਇਸ ਖੋਜ਼ ਪੱਤਰ ਵਿੱਚ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇਗੀ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਬਸਵੱਨਾ ਦੀ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਅੱਜ ਕਲ ਦੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿੱਚ ਅਪਣਾ ਕੇ ਸਮਾਜਿਕ ਬਦਲਾਵ ਜਾ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲਾ ਸਕਦੇ ਹਨ।

ਭੂਮਿਕਾ

ਅੱਠ ਸੋ ਸਾਲ ਪਹਿਲੇ ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਬੀਜਾਪੁਰ ਜਿਲ੍ਹੇ ਦੇ ਬਾਗੇਵਾੜੀ ਪਿੰਡ ਵਿਚ 'ਮਦਰਸਾ' ਤੇ 'ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ' ਇਕ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸਮਝਦਾਰ ਤੇ ਹਰਮਨ ਪਿਆਰੇ ਪਤੀ-ਪਤਨੀ ਸਨ। ਉਹ ਬਹੁਤ ਭਗਤੀ-ਭਾਵਨਾ ਵਾਲੇ ਅਤੇ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਪੂਜਾ-ਪਾਠ ਵਾਲੇ ਸਨ। 'ਬਾਗੇਵਾੜੀ' ਪਿੰਡ ਦੇ ਵਿਚ 'ਨੰਦੇਸ਼ਵਰਾ' ਮੰਦਰ ਸੀ। ਦੋਨੋਂ ਪਤੀ-ਪਤਨੀ ਭਗਵਾਨ 'ਨੰਦੇਸ਼ਵਰਾ' ਦੇ ਭਗਤ ਸਨ। 'ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ' ਗਰਭਵਤੀ ਸਨ। ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਭਗਵਾਨ ਦੀ ਪ੍ਰਾਰਥਨਾ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਇਕ ਦਿਨ ਜਦੋਂ ਉਹ ਪੂਜਾ ਕਰਨ ਵੇਲੇ ਪ੍ਰਭੂ ਦਾ ਧਿਆਨ ਧਰ ਰਹੀ ਸੀ, ਤਦ ਸ਼ਿਵਲਿੰਗ ਤੇ ਭੇਂਟ ਕੀਤੇ ਹੋਏ ਫੁੱਲ 'ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ' ਦੇ ਪੱਟ ਤੇ ਆ ਡਿੱਗੇ। 'ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ' ਨੇ ਬੜੀ ਸ਼ਰਧਾ ਭਾਵਨਾ ਨਾਲ ਉਸ ਫੁੱਲ ਨੂੰ ਲੈ ਕੇ ਆਪਣੇ ਸਿਰ ਦੇ ਵਾਲਾਂ ਵਿਚ ਸ਼ੋਭਿਤ ਕਰ ਲਿਆ । ਪੂਰਾ ਦਿਨ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਝੂਮਦੀ, ਭਗਵਾਨ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਨੂੰ ਗੁਣ-ਗਣਾਉਂਦੀ ਹੋਈ ਰਾਤ ਨੂੰ ਸੌਂ ਗਈ। ਉਸੇ ਰਾਤ ਨੂੰ ਇਕ ਸਪਨੇ ਵਿਚ ਕੈਲਾਸ਼ ਤੋਂ ਭਗਵਾਨ ਸ਼ਿਵ ਨੇ ਨੰਦੀ ਨੂੰ ਇਸ ਧਰਤੀ ਤੇ ਭੇਜ ਦਿੱਤਾ। ਉਹ ਨੰਦੀ 'ਮਦਰਸਾ' ਤੇ 'ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ' ਦੇ ਘਰ ਪਹੰਚਿਆਂ ਤੇ ਚਾਰੋਂ ਪਾਸੇ ਰੋਸ਼ਨੀ ਹੀ ਰੋਸ਼ਨੀ ਹੋ ਗਈ। ਅਗਲੇ ਦਿਨ ਸਵੇਰੇ ਇਸ ਸੁੰਦਰ ਸਪਨੇ ਨੂੰ ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਮਦਰਸਾ ਨਾਲ ਸਾਂਝਾ ਕੀਤਾ। ਫਿਰ ਦੋਨੇ ਪਤੀ-ਪਤਨੀ ਨੇ ਇਸ ਸਪਨੇ ਨੂੰ ਪਿੰਡ ਦੇ ਧਾਰਮਿਕ ਗੁਰੂ ਨਾਲ ਸਾਂਝਾ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਨੇ ਦੱਸਿਆ ਇਹ ਬਹੁਤ ਸ਼ੁਭ-ਸੰਕੇਤ ਹੈ ਤੇ ਉਹ ਬਹੁਤ ਭਾਗਸ਼ਾਲੀ ਪੁੱਤਰ ਨੂੰ ਪਾਉਣਗੇ।

ਉਹ ਪੁੱਤਰ ਨਾ-ਸਿਰਫ਼ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਨਾਮ ਹੀ ਰੋਸ਼ਨ ਕਰੇਗਾ, ਬਲਕਿ ਪੂਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਪਰਿਵਰਤਨ ਦੀ ਲਹਿਰ ਲਿਆਏਗਾ। ਸੁਣ ਕੇ ਦੋਨੋਂ ਪਤੀ-ਪਤਨੀ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਹੋਏ। ਕੁਝ ਦਿਨਾਂ ਬਾਦ ਮਾਦਲਾਂਬੀਕੇ ਨੇ ਪੁੱਤਰ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੱਤਾ। ਉਹ ਪੁੱਤਰ ਚਮਕਦੇ ਲਕਸ਼ਣ ਵਾਲਾ ਸੀ।

ਪਰ, ਹੋਰ ਬੱਚਿਆਂ ਵਾਂਗ ਉਹ ਰੋ ਨਹੀਂ ਸੀ ਰਿਹਾ। ਉਸ ਦੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਵੀ ਨਹੀਂ ਖੁੱਲੀਆਂ ਸਨ । ਉਸਦੇ ਹੋਂਠ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹਿੱਲ ਰਹੇ ਸਨ। ਉਹ ਖਾਮੋਸ਼ ਤੇ ਸਾਂਤ ਸੀ। ਜਿਵੇਂ ਕੋਈ ਮਹਾਂ-ਪੁਰਸ਼ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਲੀਨ ਹੋ ਗਿਆ ਹੋਵੇ। ਪਰ ਚਿੰਤਤ ਦੋਨੋਂ ਪਤੀ-ਪਤਨੀ ਆਪਣੇ ਬੱਚੇ ਦੀ ਇਸ ਸਥਿੱਤੀ ਨੂੰ ਦੇਖਕੇ ਘੱਬਰਾ ਗਏ ਸਨ । "ਕੂੜਲਸੰਗਮ" ਦੇ ਗੁਰੂ ਨੂੰ ਜਦ ਇਹ ਖਬਰਾਂ ਹੋਈਆਂ ਤਾਂ ਉਸ ਗੁਰੂ ਨੇ ਖੁਦ ਬਾਗੇਵਾੜੀ ਪਿੰਡ ਪਹੁੰਚ ਕੇ ਬੱਚੇ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕੀਤੇ। ਗੁਰੂ ਨੂੰ ਅਹਿਸਾਸ ਹੋਇਆ ਕਿ ਇਹ ਇਕ ਆਮ ਬੱਚਾ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਫਿਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ "ਕੂੜਲਸੰਗਮ" ਤੋਂ ਲਿਆਂਦੀ ਹੋਈ ਭਬੂਤੀ ਨੂੰ ਬੱਚੇ ਦੇ ਸਿਰ ਤੇ ਲਾਇਆ। ਤਦ ਬੱਚੇ ਨੇ ਅੱਖ ਖੋਲ੍ਹ ਲਈ।

ਉਪਰੰਤ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਸ਼ਿਵਲਿੰਗ ਨੂੰ ਬੱਚੇ ਦੇ ਗਲੇ ਵਿਚ ਪਹਿਨਾਇਆ। ਤਦ ਬੱਚੇ ਨੇ ਦੇਖਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ।ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਦੱਸਿਆ ਕਿ ਭਗਵਾਨ ਸ਼ਿਵ ਦੇ ਅਸ਼ੀਰਵਾਦ ਸਦਕਾ 'ਨੰਦੀ' ਖੁਦ ਤੁਹਾਡੇ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਆਏ ਹਨ। ਇਹ ਇਕ ਮਹਾਨ ਅਵਤਾਰੀ-ਪੁਰਸ਼ ਹੈ ਤੇ ਸਾਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਧਰਮ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ ਕਰੇਗਾ। ਪੂਰੀ ਮਾਨਵਤਾ ਦਾ ਕਲਿਆਣ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਬਣੇਗਾ। ਇਹ ਤੁਹਾਡੀ ਖੁਸ਼-ਕਿਸਮਤੀ ਹੈ ਕਿ 'ਨੰਦੀ' ਤੁਹਾਡਾ ਪੁੱਤਰ ਬਣ ਕੇ ਆਇਆ

ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਇਸ ਦਾ ਨਾ “ਬਸਵਾ” ਰੱਖ ਦਿਉ। ਇੱਥੇ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਸ਼ਬਦ “ਬਸਵਾ” ਦਾ ਭਾਵ ਹੈ “ਵੀਸ਼ਭਾ”। 1 ਜਿਸਦਾ ਅਰਥ ਹੈ “ਨੰਦੀ” ਜਾਂ “ਬੈਲ"। ਗੁਰੂ ਦੀ ਸਲਾਹ ਅਨੁਸਾਰ ਬੱਚੇ ਨੂੰ “ਬਸਵਾ” ਦਾ ਨਾਮ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਪਰ ਲੋਕ ਸਨਮਾਨ ਨਾਲ “ਬਸਵੇਸ਼ਵਰ” ਕਹਿਣ ਲੱਗੇ। ਬਾਦ ਵਿਚ ਲੋਕ “ਬਸਵੱਨਾ” ਦੇ ਨਾਂਉ ਨਾਲ ਵੀ ਸੰਬੋਧਨ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਇਥੇ “ਬਸਵੱਨਾ” ਦਾ ਭਾਵ ਹੈ “ਵੱਡੇ ਭਰਾ”। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ 12ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਮਹਾਨ ਕਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਸੋਚ ਵਾਲੇ “ਬਸਵੱਨਾ” ਦਾ ਜਨਮ 1131 ਈਸਵੀ ਵਿਚ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਬਚਪਨ ਤੋਂ ਹੀ ਸਭ ਦਾ ਲਾਡਲਾ ਹੋਣ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਗੁਰੂ ਕੁਲ ਵਿਚ ਵੀ ਬਹੁਤ ਹੁਸ਼ਿਆਰ ਬੱਚਾ ਸੀ। ਹਰ ਵਿਸ਼ੇ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਹੀ ਨਜ਼ਰੀਏ ਨਾਲ ਵੇਖਣ ਵਾਲੇ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਗੁਰੂ ਕੁਲ ਵਿਚ ਹਮੇਸ਼ਾ ਗੁਰੂਆਂ ਨੂੰ ਕਿਉਂ ਤੇ ਕੈਸੇ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਪੁੱਛਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। ਗੁਰੂ ਇਸ ਬੱਚੇ ਦੀ ਸਵਤੰਤਰ ਸੋਚ ਤੇ ਨਿਰਭੈਅ-ਪਨ ਨੂੰ ਦੇਖਕੇ ਅਸ਼-ਅਸ਼ ਕਰ ਉੱਠਦੇ। ਕਈ ਵਾਰ ਗੁਰੂ ਵੀ ਇਸ ਬੱਚੇ ਦੇ ਪ੍ਰਸ਼ਨਾਂ ਦੇ ਉੱਤਰ ਦੇਣ ਵਿਚ ਅਸਫ਼ਲ ਰਹਿ ਜਾਂਦੇ । ਜਦ ਕਦੀ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਧਾਰਮਿਕ ਸਮਾਗਮ ਹੁੰਦੇ ਤਾਂ ਉਸ ਸਮਾਗਮ ਦੇ ਸਾਰੇ ਅਰਥਾਂ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦੇ ਲਈ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਪਰ ਪਿੰਡ ਦੇ ਬਜ਼ੁਰਗ ਲੋਕ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਪ੍ਰਸ਼ਨਾਂ ਦੇ ਤਸੱਲੀ-ਬਖਸ਼ ਉਤੱਰ ਨਹੀਂ ਦਿੰਦੇ ਸਨ। ਉਸ ਵਕਤ ਜਾਤੀਵਾਦ ਬਹੁਤ ਜ਼ੋਰਾਂ ਤੇ ਸੀ। “ਬਸਵੱਨਾ” ਇਸ ਨੂੰ ਸਮਝਦੇ ਹੋਏ ਕਈ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਉਠਾਉਂਦੇ ਸਨ । ਮਾਨਵ ਇਕ ਹੈ ਤੇ ਭਗਵਾਨ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਸਾਰੇ ਮਾਨਵ ਪਵਿੱਤਰ ਤੇ ਬਰਾਬਰ ਹਨ। ਇਸ ਤਰਾਂ ਦੀ ਸੋਚ ਬਚਪਨ ਵਿਚ ਹੀ ਰੱਖਣ ਵਾਲਾ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਸੱਚਮੁੱਚ ਰੱਬੀ ਰੂਪ ਹੀ ਸਨ।

ਜਦ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਅੱਠਵੇਂ ਸਾਲ 'ਚ ਸਨ, ਤਦ ਪਰਿਵਾਰ ਦੇ ਨਿਯਮਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਉਸ ਦੇ “ਉਪਨਯਨ” ਹੋਣ ਦੀ ਲੋੜ ਸੀ। ਇਥੇ “ਉਪਨਯਨ” ਦਾ ਭਾਵ ਹੈ; ਸਰੀਰ ਉਤੇ ਜੰਜੂ ਪਾਉਣ ਦੀ ਰਸਮ ਅਦਾ ਕਰਨਾ। ਜਦੋਂ “ਉਪਨਯਨ” ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਹੋ ਰਹੀ ਸੀ, ਤਦ ਬਾਲ-ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਇਸ ਰਸਮ ਦਾ ਭਾਵ ਤੇ ਇਸਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਉੱਤੇ ਸਵਾਲ ਉਠਾਇਆ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ, ਜਦ ਗੁਰੂ "ਸੰਗਮੇਸ਼ਵਰਾ” ਨੇ ਹੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਰੀਰ ਉੱਤੇ ਸ਼ਿਵ ਲਿੰਗ ਪਹਿਨਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਤਦ ਇਸ ਸੰਪਰਦਾਇਕ ਰਸਮ ਦੀ ਕੀ ਲੋੜ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਣਕੇ ਉਸਦੇ ਪਿਤਾ ਬਹੁਤ ਦੁੱਖੀ ਸਨ, ਪਰ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਆਪਣੀ ਜ਼ਿੱਦ ਤੇ ਅੜੇ ਰਹੇ। ਪਰਿਵਾਰਿਕ-ਸੰਪਰਦਾਇਕ ਰਸਮਾਂ ਨੂੰ ਤੋੜਨ ਵਾਲੀ ਗੱਲ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪਿਤਾ ਨੂੰ ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਨਹੀਂ ਸੀ ਹੋ ਰਹੀ। ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪਿਤਾ ਨੂੰ ਕਿਹਾ, ਪਿਤਾ ਜੀ, ਤੁਸੀਂ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀਆਂ ਰਸਮਾਂ ਦਾ ਪਾਲਣ ਕਰਦੇ ਹੋ ; ਪਰ ਇਹ ਮੇਰੇ ਵਾਸਤੇ ਰਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਹਨ। ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਸੰਕਟ -ਸਥਿੱਤੀ ਵਿਚ ਨਹੀਂ ਰੱਖਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ । ਇਸ ਲਈ ਮੈਂ ਇਹ ਘਰ ਛੱਡਕੇ ਚਲੇ ਜਾਵਾਂਗਾ ਤੇ ਮੈਂ ਆਪਣੀ ਸਿੱਖਿਆ “ਕੂੜਲਸੰਗਮ” ਵਿਚ ਕਰਾਂਗਾ। ਇਹ ਸੁਣਕੇ ਨਾ-ਸਿਰਫ਼ ਮਾਤਾ-ਪਿਤਾ ਹੈਰਾਨ ਰਹਿ ਗਏ, ਬਲਕਿ ਪਿੰਡ ਦੇ ਸਾਰੇ ਲੋਕ, ਬਾਲ ਬਸਵੱਨਾ ਦੀ ਕਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਸਲਾਮ ਕਰਨ ਲੱਗੇ । ਬਸਵੱਨਾ ਦਾ ਇਹ ਕਦਮ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਪਰਿਵਰਤਨ ਦਾ ਇਕ ਸੰਕੇਤ ਸੀ: ਕਿਉਂਕਿ ਉਸ ਵਕਤ ਲੋਕ ਅੰਧ-ਵਿਸਵਾਸ਼, ਜਾਤੀ-ਵਾਦ ਅਤੇ ਧਰਮ ਸਿਰਫ਼ ਪੂਜਾ ਲਈ ਹੀ ਹੈ, ਸਮਝਦੇ ਸਨ। ਪਰ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦਾ ਇਹ ਕਦਮ ਇੰਨ੍ਹਾਂ ਸਭਸਮਾਜਿਕ-ਬੁਰਾਈਆਂ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰਨ ਲਈ ਇਕ ਸੰਕੇਤ ਸੀ। ਘਰ ਛੱਡ ਕੇ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ “ਸੰਗਮ" ਵਿਚ ਪਹੁੰਚੇ ਤਾਂ ਗੁਰੂ “ਸੰਗਮੇਸ਼ਵਰਾ” ਨੇ ਪਿਆਰ ਨਾਲ ਕਿਹਾ, ਮੈਨੂੰ ਪਤਾ ਸੀ ਤੁਸੀਂ ਆਉਗੇ ਇਥੇ। ਤੁਹਾਡੇ ਵਰਗੇ ਹੋਣਹਾਰ ਬੱਚੇ ਸਾਡੇ ਗੁਰੂ-ਕੁੱਲ ਲਈ ਇਕ ਮਾਣ ਵਾਲੀ ਗੱਲ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਤੁਸੀਂ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਇਸ ਭਗਵਾਨ ਸੰਗਮੇਸ਼ਵਰ ਦੇ ਨੇੜੇ ਹੀ ਬੈਠ ਕੇ ਧਾਰਮਿਕ ਸੋਚ ਨੂੰ ਵਧਾਉ। ਮੈਨੂੰ ਪਤਾ ਹੈ ਤੁਸੀਂ ਾਨਵਤਾ ਦੀ ਭਲਾਈ ਵਾਸਤੇ ਕੰਮ ਕਰੋਂਗੇ।

ਸੰਗਮੇਸ਼ਵਰ ਵਿਚ ਬਸੱਵਨਾ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦੱਸੇ ਰਾਹ ਤੇ ਚੱਲਦੇ ਹੋਏ ਸਾਰੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਵਿਚ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਗਿਆਨ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸਰਵ-ਰੂਪੀ ਵਿਅੱਕਤੀਗਤ ਵਿਕਾਸ ਹੋ ਰਿਹਾ ਸੀ।

ਬਸਵੱਨਾ ਦਾ ਇਹ ਮਹਾਨ-ਵਿਅੱਕਤੀਤਵ ਸਾਰੇ ਪਾਸੇ ਚਰਚਾ ਵਿਚ ਸੀ। ਉਸ ਵਕਤ ਚਾਲੁਕਿਆ ਰਾਜ ਘਰਾਣਾ ਦੀ ਰਾਜਧਾਨੀ ਕਲਿਆਣ ਸੀ। ਉਸ ਦਾ ਕਾਲਚੁਕਿਆ ਵੰਸ਼ ਦਾ ਬਿੱਜਲ ਨਾਉਂ ਦਾ ਰਾਜਾ ਸੀ। ਉਸੀ ਘਰਾਣੇ ਵਿਚ ਬਲਦੇਵਾ ਨਾਮ ਦਾ ਇਕ ਮੰਤਰੀ ਸੀ। ਬਲਦੇਵਾ ਨੇ ਵੀ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਬਾਰੇ ਬਹੁਤ ਕੁੱਝ ਸੁਣਿਆ ਸੀ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਉਹ ਖੁਦ ਚੱਲਕੇ ਸੰਗਮੇਸ਼ਵਰ ਪਹੁੰਚ ਗਏ। ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਨਾਲ ਮੁਲਾਕਾਤ ਤੋਂ ਬਾਦ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੋ ਕੇ ਬਲਦੇਵਾ ਨੇ ਗੁਰੂ ਨੂੰ ਕਿਹਾ, ਬਸਵੱਨਾ ਵਰਗੇ ਮਹਾਨ ਗਿਆਨੀ ਦੀ ਕਲਿਆਣ ਦੇ ਵਿਚ ਨੈਕਰੀ ਕਰਨ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ ਤੇ ਇਸ ਦੀ ਸ਼ਾਦੀ ਮੇਰੀ ਬੇਟੀ ਦੇ ਨਾਲ ਹੋਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨੇ ਇਹ ਗੱਲ ਸੁਣ ਕੇ ਬਸਵੱਨਾ ਨੂੰ ਹੁਕਮ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਕਲਿਆਣ ਜਾ-ਕੇ ਰਾਜ-ਸੇਵਾ ਕਰੋ ਤੇ ਬਲਦੇਵਾ ਦੀ ਬੇਟੀ ਨਾਲ ਵਿਆਹ ਕਰੋ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਕਲਿਆਣ ਜਾਣ ਲਈ ਤਾਂ ਤਿਆਰ ਸਨ, ਪਰ ਸ਼ਾਦੀ ਨਹੀਂ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਸਨ: ਕਿਉਂਕਿ ਉਹ ਸੋਚਦੇ ਸਨ ਕਿ ਉਹ ਉਸ ਦੇ ਮਾਨਵ-ਕਲਿਆਣ ਲਈ ਅੜਚਨ ਬਣਨਗੇ।

ਕੁਝ ਦਿਨ ਤੋਂ ਬਾਦ ਬਸਵੱਨਾ, ਗੁਰੂ ਦੇ ਹੁਕਮ ਮੁਤਾਬਿਕ ਕਲਿਆਣ ਪਹੁੰਚ ਗਏ ਤੇ ਕਲਿਆਣ ਦੇ ਮਹਾਰਾਜ ਬਿੱਜਲ ਨੂੰ ਮਿਲੇ। ਰਾਜੇ ਵਲੋਂ ਕਲਿਆਣ ਦੇ ਖਜ਼ਾਨਾ ਦਫ਼ਤਰ ਵਿਚ ਬਸਵੱਨਾ ਨੂੰ ਨੈਕਰੀ ਦਿੱਤੀ ਗਈ। ਖਜ਼ਾਨਾ ਵਿਭਾਗ ਦੀ ਉਸ ਵਕਤ ਹਾਲਤ ਬਹੁਤ ਖਰਾਬ ਸੀ। ਉਸ ਵਿਭਾਗ ਵਿਚ ਸੁਧਾਰ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਬਹੁਤ ਕੰਮ ਕੀਤਾ। ਇਕ ਬਾਰ ਤਾਂਬੇ ਦੀ ਪਤੀਲੀ ਮਿਲੀ। ਜਿਸ ਉਤੇ ਕੁਝ ਕਿਸੇ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਲਿਖਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਕੋਈ ਵੀ ਪੜ੍ਹ ਨਾ ਸਕਿਆ। ਪਰ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਆਪਣੀ ਮਹਾਨ-ਬੁੱਧੀ ਨਾਲ ਉਹ ਪੜ੍ਹ ਲਿਆ। ਉਸ ਵਿਚ ਲਿਖਿਆ ਸੀ ਕਿ ਰਾਜ ਦੀ ਸੰਪਤੀ ਕਿੱਥੇ ਛੁਪਾ ਕੇ ਰੱਖੀ ਹੋਈ ਹੈ । ਸੰਪਤੀ ਦੀ ਇਹ ਸੂਚਨਾ ਸੁਣ ਕੇ ਰਾਜਾ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਹੋਇਆ ਤੇ ਬਸਵੱਨਾ ਨੂੰ ਖਜ਼ਾਨਾ ਵਿਭਾਗ ਦਾ ਮੁੱਖੀ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ। ਕੁੱਝ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਬਾਦ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਬਲਦੇਵਾ ਦੀ ਪੁੱਤਰੀ ਗੰਗਾਮਵੀਕੇ ਤੇ ਬਿੱਜਲ ਮਹਾਰਾਜ ਦੀ ਗੋਦ ਲਈ ਹੋਈ ਭੈਣ ਨਿਲਾਂਬੀਕੇ ਦੇ ਨਾਲ ਸ਼ਾਦੀ ਕਰ ਲਈ। ਇਸ ਤਰਾਂ ਬਸਵੱਨਾ ਦੀਆਂ ਦੋ ਪਤਨੀਆਂ ਸਨ।

ਅਨੁਭਵ-ਮੰਟਪ

ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਕਲਿਆਣ ਆਉਣ ਤੋਂ ਬਾਦ ਵੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਧਰਮ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀ ਰੁੱਚੀ ਤੇ ਭਾਵਨਾ ਘੱਟ ਨਾ ਹੋਈ।

ਉਹ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਮਨ ਵਿਚ ਭਗਤੀ ਦੀ ਭਾਵਨਾ ਭਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ । ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੁੱਖੀ ਵੀ ਸਨ: ਕਿਉਂਕਿ ਉਸ ਵਕਤ ਜਾਤੀਵਾਦ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਬਹੁਤ ਜਿਆਦਾ ਸੀ ਤੇ ਸਾਰੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਮੰਦਰ ਵਿਚ ਜਾ ਕੇ ਪੂਜਾ ਕਰਨ ਦੀ ਖੁੱਲ੍ਹ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਸਾਰੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਸਮਾਨ ਰੂਪ ਵਿਚ ਵੇਖਣ ਵਾਸਤੇ ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਇਕ ਧਾਰਮਿਕ ਲੋਕਤੰਤਰਿਕ ਸੰਸਥਾ ਬਣਾਈ ਜੋ 'ਅਨੁਭਵ-ਮੰਟਪ' ਸੀ। ਇਹ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਵਿਚ ਕਿਸੇ ਵੀ ਜਾਤੀ ਜਾਂ ਧਰਮ ਦੇ ਲੋਕ ਆ ਕੇ ਇਸ ਦਾ ਮੈਂਬਰ ਬਣ ਸਕਦੇ ਸਨ। ਔਰਤ ਲਈ ਵੀ ਇਹ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਭਾਗ ਲੈਣ ਲਈ ਇਜਾਜਤ ਦਿੰਦਾ ਸੀ । ਸਾਰੇ ਲੋਕ ਬੈਠ ਕੇ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਬੁਰਾਈਆਂ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰਨ ਲਈ ਚਰਚਾ ਕਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ । ਖਾਸ ਤੌਰ ਤੇ ਜਾਤੀਵਾਦ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਦਾ ਅਹਿਮ ਚਰਚਾ ਦਾ ਮੁੱਦਾ ਸੀ।

ਕੁਝ ਦਿਨ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਹੀ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ, ਪੂਰੇ ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਦੇ ਵਿਚ ਮਸ਼ਹੂਰ ਹੋ ਗਿਆ । ਹਰ ਥਾਂ ਤੋਂ ਲੋਕ ਆ ਕੇ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਵਿਚ ਹਿੱਸਾ ਲੈਂਦੇ ਸਨ । ਸਾਰੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਖਾਣ-ਪੀਣ ਦੀ ਵਿਵੱਸਥਾ ਖੁਦ ਬਸਵਨਾ ਜੀ ਦੀਆਂ ਪਤਨੀਆਂ, ਬਸਵੱਨਾ ਦੀ ਭੈਣ ਅੱਕਾ ਨਾਗਿਆ ਤੇ ਭਤੀਜਾ ਚੰਨਾ ਬਸਵੱਨਾ ਆਪਣੇ ਹੱਥੀਂ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਦੀ ਇਸ ਪ੍ਰਸਿੱਧੀ ਨੂੰ ਵੇਖ ਕੇ ਰਾਜ ਮੰਡਲ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਨੇ ਜਲ ਕੇ ਬਸਵੱਨਾ ਤੇ ਦੋਸ਼ ਲਾ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਖਜ਼ਾਨੇ ਤੋਂ ਪੈਸਾ ਲੈ ਕੇ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਚਲਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਹ ਸੁਣਕੇ ਰਾਜਾ "ਬਿੱਜਲ" ਨੇ ਬਸਵੱਨਾ ਨੂੰ ਪੁੱਛਿਆ। ਬਸਵੱਨਾ ਨੇ ਕਿਹਾ, ਮੈਂ

ਇੱਕ ਸ਼ਿਵ ਦਾ ਭਗਤ ਹਾਂ; ਜਿੰਨੇ ਵੀ ਪੈਸੇ ਸ਼ਿਵ ਭਗਤ ਤੋਂ ਆਉਂਦੇ ਹਨ, ਉਸੇ ਪੈਸੇ ਨੂੰ ਉਹਨਾਂ ਤੇ ਖਰਚ ਕਰਦਾ ਹਾਂ। ਫਿਰ ਵੀ ਜੇਕਰ ਤੁਹਾਨੂੰ ਕੋਈ ਸ਼ੱਕ ਹੈ ਤਾਂ ਤੁਸੀਂ ਆ ਕੇ ਖਜ਼ਾਨੇ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ੀ ਕਰ ਸਕਦੇ ਹੋ। "ਬਿੱਜਲ" ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਜਦ ਖਜ਼ਾਨੇ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ੀ ਕੀਤੀ, ਤਦ ਪਾਇਆ ਕਿ ਸਾਰੇ ਪੈਸੇ ਤੇ ਗਹਿਣੇ ਮੌਜੂਦ ਸਨ। ਇਹ ਦੇਖ ਕੇ "ਬਿਜਲ" ਮਹਾਂਰਾਜ ਨੇ ਬੱਸਵਨਾ ਜੀ ਪਾਸੋਂ ਮੁਆਫ਼ੀ ਮੰਗੀ। ਕੁੱਝ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਬਾਦ ਜਦੋਂ "ਬਲਦੇਵ" ਦੀ ਮ੍ਰਿਤੂ ਹੋਈ ਤਾਂ "ਬਿੱਜਲ" ਮਹਾਂਰਾਜ ਨੇ ਬੱਸਵਨਾ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਮੰਤਰੀ ਬਣਾ ਲਿਆ ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਇਕ ਬਾਲਕ ਤੋਂ ਰਾਜੇ ਦੇ ਮੰਤਰੀ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚ ਗਈ। ਪਰ "ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ" ਨੇ ਬਸਵੱਨਾ ਨੂੰ "ਜਗਤ ਗੁਰੂ ਬਸਵੱਨਾ" ਦਾ ਦਰਜਾ ਦੇ ਦਿੱਤਾ । ਮੱਧ-ਕਾਲ ਦੀ ਲੋਕ-ਤੰਤਰਿਕ ਸੰਸਥਾ ਚਲਾਉਣ ਵਾਲੇ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਨੇ ਲੋਕ-ਤੰਤਰਿਕ ਚਲਾਉਣ ਦਾ ਤਰੀਕਾ 12ਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿਚ ਹੀ ਸਾਨੂੰ ਦੱਸਿਆ ਹੈ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ "ਅਕਾ ਮਹਾਂ ਦੇਵੀ (ਸਾਧਵੀ)" ਮਾਚੱਈਆ (ਧੋਬੀ), ਹਰਾਲਈਆ (ਚਮਾਰ), ਚਵਡਆ (ਸਪੇਰਾ), ਕਨਈਆ (ਵੈਦ) ਵਰਗੇ ਮਹਾਨ ਕਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਸੋਚ ਰੱਖਣ ਵਾਲੇ "ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ" ਦੀ ਸੋਭਾ ਵਧਾਉਂਦੇ ਸਨ । ਇਹ ਗਿਆਨ ਭਰੀ, ਸੰਤਾਂ ਦੀ ਸਭਾ ਭਾਵੇਂ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਨੇ ਸ਼ੁਰਆਤ ਕੀਤੀ ਸੀ: ਪਰ ਅਲੱਮ ਪ੍ਰਭੂ ਇਸ "ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ" ਦੇ ਮੁੱਖੀ ਸਨ ਤੇ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਅੱਲਮ ਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਮਾਰਗ ਤੇ "ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ" ਨੂੰ ਚਲਾਉਂਦੇ ਸਨ ।

ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਹੈ। ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਵਿਚ ਅਸੀਂ ਸੰਖੇਪ ਰੂਪ ਵਿਚ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਨਾਲ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੇ ਬਚਨ ਵਿਆਖਿਆ ਸਮੇਤ ਦਿੱਤੇ ਹਨ। ਪਰ ਇੱਥੇ ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਦੇ ਮਹਾਨ ਨਾਟਕ "ਤਲੇਦੰਡਾ" ਦਾ ਜਿਕਰ ਕਰਨ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ: ਜਿਹੜਾ "ਬਸਵੱਨਾ" ਤੇ ਬਿਜੱਲ ਮਹਾਂਰਾਜ ਉਪਰ ਲਿਖਿਆ ਗਿਆ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਨੂੰ "ਗਿਆਨ ਪੀਠ ਐਵਾਰਡੀ" ਗਿਰੀਸ਼ ਕਾਰਨਾਡ ਨੇ ਲਿਖਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਅੰਤਰ-ਜਾਤੀ ਵਿਆਹ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੱਮਸਿਆ ਨਾਲ ਜੁੜੀ ਹੈ, ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਤੇ "ਅਨੂਲੋਮਾ ਤੇ ਪ੍ਰਤੀਲੋਮਾ ਦਾ ਗੰਦਾ ਚਿਹਰਾ ਵੀ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ।

ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਨੇ ਨਵੇਂ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ ਲਈ "ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ" ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕੀਤੀ। ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਭਗਵਾਨ ਇਕ ਹੈ ਪਰ ਨਾਂਉ ਅਲੱਗ-ਅਲੱਗ ਹਨ । ਸਾਨੂੰ ਸਾਰੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਇਕ ਨਜ਼ਰ ਨਾਲ ਦੇਖਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਸਰਬੱਤ ਦਾ ਭਲਾ ਮੰਗਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਤੇ ਸੁਆਰਥੀ ਨਹੀਂ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦਾ ਕਹਿਣਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਜਨਮ ਵਿਚ ਜਿਹੜੇ ਵੀ ਸਵੀਕਾਰਿਤ ਹੋ ਚੁੱਕੇ ਹਨ, ਉਹੀ ਅਗਲੇ ਜਨਮ ਵਿਚ ਆਉਣਗੇ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦਾ ਇਕ ਹੋਰ ਵਿਚਾਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਨਾਲ ਮੇਲ ਖਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਨਸਾਨ ਨੂੰ ਗ੍ਰਹਿਸਤੀ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਰਹਿ ਕੇ ਹੀ ਭਗਤੀ ਸਿਮਰਨ ਕਰਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। "ਮੈਂ" ਤੇ "ਮੈਂ ਕੀਤਾ" ਵਰਗੀ ਸੋਚ ਦਿਲ ਵਿਚ ਨਹੀਂ ਹੋਣੀ ਚਾਹੀਦੀ। ਕੋਈ ਵੀ ਕੰਮ ਸਾਨੂੰ ਜਗਤ ਪ੍ਰਸਿਧੀ ਲਈ ਨਹੀਂ ਕਰਨਾ ਚਾਹੀਦਾ। ਅੰਦਰ ਤੇ ਬਾਹਰ ਤੋਂ ਸਾਫ਼-ਸੁਥਰੀ ਜਿੰਦਗੀ ਜਿਊਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਹੈ।

ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਜੋ ਵੀ ਕਹਿੰਦੇ ਸਨ ਉਹ ਕਰ ਦਿਖਾਉਂਦੇ ਸਨ। ਇਕ ਵਾਰ ਅੱਧੀ ਰਾਤ ਨੂੰ ਜਦੋਂ ਉਹ ਸੌ ਰਹੇ ਸਨ, ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਅਵਾਜ ਨੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਨੀਂਦ ਤੋਂ ਜਗਾ ਦਿੱਤਾ। ਜਦੋਂ ਅੱਖ ਖੁੱਲ੍ਹੀ ਤਾਂ ਚੋਰ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੇ ਗਹਿਣੇ ਚੋਰੀ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਨੇ ਖੁੱਦ ਉਠ ਕੇ ਸਾਰੇ ਗਹਿਣੇ ਕੱਢੇ ਤੇ ਚੋਰ ਦੇ ਹੱਥ ਵਿਚ ਦੇ ਦਿੱਤੇ। ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਚੋਰ ਨੂੰ ਭਗਵਾਨ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਆਇਆ ਹੋਇਆ ਮਹਿਮਾਨ ਸਮਝ ਰਹੇ ਸਨ।

ਇਕ ਵਾਰ ਫਿਰ, ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ਦੀਆਂ ਸਾਰੀਆਂ ਗਊਆਂ ਚੋਰੀ ਹੋ ਗਈਆਂ । ਸਿਰਫ਼ ਬੱਛੜੇ ਹੀ ਬਾਕੀ ਰਹਿ ਗਏ ਸਨ। ਉਹ ਸਾਰੇ ਬਛੜੇ ਭੁੱਖ ਨਾਲ ਚਿੱਲਲਾ ਰਹੇ ਸਨ। ਇਹ ਦੇਖ ਕੇ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦਾ

ਦਿਲ ਪਿਘਲ ਗਿਆ। ਤੁਰੰਤ ਹੀ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰੇ ਬੱਛੜੂਆਂ ਨੂੰ ਚੋਰਾਂ ਦੇ ਘਰ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾਉਣ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਤਾਂ ਕਿ ਬੱਛੜੂ ਆਪਣੀਆਂ ਮਾਵਾਂ ਨੂੰ ਮਿਲ ਸਕਣ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਦੇਖ ਕੇ ਰਾਜ ਦੇ ਸਾਰੇ ਚੋਰਾਂ ਦੀਆਂ ਚੋਰੀਆਂ ਛੱਡ ਕੇ ਭਗਤੀ ਵਿਚ ਲੀਨ ਹੋਣ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵੀ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚ ਮਿਲਦੀਆਂ ਹਨ।

ਸਿੱਟਾ

ਬਸਵੱਨਾ ਜੀ ਦੀ ਸੋਚ ਸਭ ਲਈ ਅਤੇ ਸਦਾ ਲਈ ਹੈ। ਅੱਜ ਕਲ ਦੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਸਵੱਨਾ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨੂੰ ਅਪਣਾ ਕੇ ਲੋਕ ਅਪਣੀ ਜਿੰਦਗੀ ਸੁਧਾਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਸ ਗੱਲ ਵਿੱਚ ਕੋਈ ਸ਼ੱਕ ਨਹੀਂ ਹੈ ਕਿ ਕਈ ਲੋਕ ਤਾਂ ਬਸਵੱਨਾ ਦੀ ਸੋਚ ਤੋਂ ਬਹੁਤ ਦੂਰ ਹਨ। ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਲੋਕ ਭਾਵੇਂ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਹੋਵੇ , ਮੁਸਲਿਮ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਹਿੰਦੂ, ਸਾਰੇ ਦੇ ਸਾਰੇ ਬਸਵੱਨਾ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨੂੰ ਮੰਨਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਅਪਣੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਵਿੱਚ ਅਪਣਾਉਂਦੇ ਵੀ ਹਨ। ਆਪਣੇ ਬੱਚੇ ਨੂੰ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਨੂੰ ਸਿਖਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਸਕੂਲ ਕਾਲਜ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਸਿਲੇਬਸ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਵੀ ਬਣ ਚੁੱਕੇ ਹਨ।

ਖੋਜ਼ ਦੇ ਦੌਰਾਨ ਇਹ ਗੱਲ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਨੂੰ ਦੂਜੀ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਵਿੱਚ ਅਨੁਵਾਦ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਦੇਸ਼ ਦੇ ਕਈ ਰਾਜਾਂ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਵੱਡੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲਿਆਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਬਾਨੀ ਏਕ ਪਰਮਾਤਮ ਦੀ ਉਤਸਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਅਤੇ ਨਾਮਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਭਜਨ ਉਸ ਵਿੱਠਲ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦੇ ਹਨ ਜਿਸਦਾ ਨਾ ਰੂਪ ਹੈ ਨਾ ਰੰਗ ਹੈ। ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਅਤੇ ਉਡੀਸਾ ਦੇ ਜੈਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਪਰਮਾਤਮ ਨੂੰ ਵਰਣਨ ਕਰਨ ਦਾ ਤਰੀਕਾ ਇਕੋ ਜਿਹਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਬਸਵੱਨਾ ਦੇ ਵਚਨ ਅਤੇ ਕਸ਼ਮੀਰ ਦੀ ਲਲੇਸ਼ਵਰੀ ਉਰਫ ਲੱਲ ਦੈਦ ਦੀ ਵਾਕ ਇਕ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਭਾਈ ਭੈਣ ਦੀ ਇਕੋ ਜਿਹਾ ਸੁਰ ਲਗਦਾ ਹੈ।

ਬਿਬਓਗ੍ਰਾਫੀ

1. ਹਾਦੇਵੱਯਾ, ਟੀ.ਆਰ. 2012 । ਬਸਵੱਨਾਵਰ ਸਮਗ੍ਰ ਵਚਨਗਲ੍ਲੁ। ਬਸਵਾ ਸਮਿਤੀ, ਬੈਂਗਲੂਰੁ।
2. ਲੰਗੂਟੀ ਸਿੱਦੱਣਾ, 2021। ਸਿੱਦ ਕਲਿਆਣਾ, ਚਿੱਤਰਗੀ, ਸ੍ਰੀ ਵਿਜਿਯ ਮਹਾਂਨਤੇਸ਼ਵਰ ਧਰਮਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਮੰਡਲ, ਇਲਕੱਲ, ਜਿਲ੍ਹਾ—ਬਾਗਲਕੋਟ, ਕਰਨਾਟਕਾ।
3. ਜਗਤ ਗੁਰੂ ਮਾਤੇ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, 1965। ਤਰੰਗੀਣੀ। ਵਿਸ਼ਵਾਕਲਿਆਣਾ ਮਿਸ਼ਨ, ਬਸਵਾ ਮੰਟਪਾ, ਰਾਜਾ ਜੀ ਨਗਰ, ਬੈਂਗਲੂਰੁ, ਕਰਨਾਟਕਾ।
4. ਸਿੰਘ ਸਾਹਿਬ, ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ
5. ਸਿੰਘ ਖੁਸ਼ਵੰਤ, 1960, ਰੀਵਿਊ ਆਫ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਐਂਡ ਸਿੱਖ ਰਿਲਿਜੀਅਨ।

ਮੋਬਾਇਲ : 9988351695

ਈਮੇਲ : raju_herro@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 133-140
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

माता खीवी और सामाजिक सेवा: आधुनिक समाज में समाज सेवा को मजबूत कैसे किया जाए

डा. पंडितराव चन्द्रशेखर धरेनवर
एसोसिऐट प्रोफैसर,
पोस्ट ग्रेजुऐट सरकारी कॉलेज, सेक्टर 46, चंडीगढ़

की-वर्डस - श्री खडूर साहिब, माता खीवी जी, श्री गुरू अंगद देव जी, श्री गुरू नानक देव जी लंगर, देसी घी, खीर, समाज सेवा, बलवंड, श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी, गुरवाणी, अंग, आधुनिक समाज, सामाजिक परिर्वतन, समाजिक बराबरी, जातिवाद, पंजाब।

अबस्ट्रक्ट

आजकल सोशल वर्क एक बहुत बड़ा अध्ययन क्षेत्र है जिसके द्वारा नौजवान लोग सोशल वर्क अध्ययन करके नौकरी हासिल करके समाज में कई मुद्दों पर काम कर रहे है। हिन्दुस्तान में कई कॉलेज, यूनिवर्सिटी में सोशल वर्क पढ़ाया जा रहा है। सारे कॉलेज और यूनिवर्सिटी के सोशल वर्क विभाग के सिलेबस को अगर ध्यान से पढ़ाया जाये तो पता चलता है कि कोई भी सिलेबस में माता खीवी के बारे में जिक्र तक नीं है। सिलेबस बनाने वाले माता खिवी के इतिहास के बारे में जानकारी रखें या नहीं पर करोड़ो रूप्ये कॉलेज और यूनिवर्सिटी को फंड देने वाली सरकार को तो माता खीवी का इतिहास पता होना चाहिए। पंद्रहवीं सद में जब औरतों को कोई आजादी नहीं थी उस समय माता खीवी ने घर से बाहर आकर देसी घी में खाना बनाकर अनजान लोगों को बुला बुला कर खाना खिलाया था और ऊपर से स्वादिष्ट खीर भी खिलाती थी। माता खीवी की यह महान् सेवा जो सदियों तक लगातार चली, जिसका जिक्र न ही कोई कॉलेज, यूनिवर्सिटी के सिलेबस में है न ही कोई रकारी दस्तावेज में। सत्तर साल से जयादा जिन्दा रहकर श्री गुरू नानक देव जी से लेकर पंचम पिता गुरू श्री गुरू अर्जुन देव जी की सेवा करते लंगर प्रथा चलाने वाली माता खीवी ने जातिवाद का कम किया। जब मुगलों के अत्याचार, अन्याय के समय माता खीवी की महान सेवा अगर सोशल वर्क विभागों में नहीं पढ़ाएँगे तो सोशल वर्क विभाग भी अपूर्ण साबित हो सकता है। विदेश से आकर मोहल्ले में सेवा करने वाली मदर टेरेसा को अगर भारत में सम्मान यिा जाता है और प्रत्येक सोशल वर्क विभागों में मदर टेरेसा की सेवा के बारे में रज-रज के पढ़ायाप जाता है तो पंद्रहवीं सदी में जब औरतों को कोई भी आज़ादी नहीं थी उस समय महान् सेवा करने वाली हमारे ही देश की पंजाब की माता खीवी के बारे में क्यें नही पढ़ाया जाता है? माता खीवी की महान् सेवा को एक धर्म या एक क्षेत्र तक सीमत रखने वाले लोग गुरू नानक देव जी की विशाल विचारधारा को अभी तक समझे ही नहीं।

समाज सेवा विभागों में पहला पाठ तो माता खीवी के बारे में होना चाहिए क्योंकि माज सेवा में औरत के प्रभावशाली होने का उदाहरण में माता खीवी की सेवा सबसे महत्वपूर्ण है। माता खीवी ने समाज सेवा और

धार्मिक भावना को मिलाकर जो काम किया है, उसे बारे में सोशल वर्क विभाग के अध्ययन का एक अलग ही विभाग होना चाहिए। सेवा सिमरन का अनोखा मिलाप दुनिया की पहली तनीक होगी जिसके बारे में सोशल वर्क विभागों में खोज होनी चाहिए। सोशल वर्क भी आधुनिक काल का शिकार होने के कारण इस क्षेत्र को प्रोफेशनल कोर्स के तरीके से पढ़ाया जा रहा है जिसमें न ही सेवा की भावा होती है और न ही सिमरन की साधना। इस कारण बहुत सारे सोशल वर्क विभाग विफल साबित हो रहे हैं। यदि सोशल वर्क विभाग माता खीवी के सेवा सिमरन मिलाप को एक तकनीकी रूप में अपनाकर विद्यार्थियों को पढ़ाए तो बहुत सारी समाज सेवा सफल हो सकती है।

भूमिका

युगो-युगो अटल, अक्षर के मालिक श्री गुरु ग्रंथ साहिब में एकमात्र स्त्री का नाम अगर दर्ज है तो वह माता खीवी का है। सेवा और सिमरण को समर्पित माता खीवी के महान योगदान को देखते हुए श्री गुरु अर्जुन देव जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब में माता खीवी का नाम दर्ज करके संपूर्ण स्त्री जाति को मान-सम्मान दिया है। श्री गुरु नानक देव जी की विरासत को आगे बढ़ाते हुए गुरु गद्दी पर सुशोभित होने वाले श्री गुरु अंगद देव जी की जीवनसंगिनी बनकर श्री खडूर साहिब में लंगर प्रथा को मजबूत करने वाले माता खीवी सिख धर्म में एक ऐसी शख्सियत हुए हैं जिनके बारे में सभी पाठ्यक्रम में पढ़ाना चाहिए। लगातार बीस साल तक लंगर प्रथा को अमीर बनाने के लिए माता खीवी का योगदान अतुलनीय है। माता खीवी रसोईघर में हर खानेपीने वाली चीज़ को देसी घी में बनाते और खडूर साहिब में आने वाले हरेक इंसान को इतना प्यार से अन्न ग्रहण करवाते थे कि लोग गद्गद् हो उठते। उनकी सेवा भावना देखकर लोग इतने प्रभावित हुए कि खडूर साहिब से वापिस अपने स्थानों में जाकर माता खीवी सरीखी सेवा की भावना रखते थे। अपने जीवनकाल में पांच गुरुओं का दर्शन करने वाली माता खीवी इतनी भाग्यशाली थीं कि खुद गुरु अर्जुन देव जी ने लंगर प्रथा को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी सत्तर वर्षीय माता को सौंप दी थी। इतनी उम्र होने के बावजूद माता खीवी अति उत्साह से मानवता की सेवा को समर्पित रहे।

सन् 1506 में कर्ण देवी व देवी चंद खत्री के परिवार में जन्मी माता खीवी बहुत ही संपन्न परिवार से संबंध रखती थीं। मात्र 13 वर्ष की आयु में ही भाई लहणा के साथ शादी होने के कारण माता खीवी ने भाई लहणा के साथ भगवान की भक्ति और सेवा करते हुए अपना जीवन शुरू किया था। वही भाई लहणा बाद में गुरु अंगद के नाम से विख्यात हुए। श्री गुरु नानक देव जी ने श्री गुरु अंगद देव जी को अंगद नाम देकर अपनी गद्दी सौंपी थी।

इस महान् विरासत के सिद्धांत को पूरी दुनिया में फैलाने के लिए श्री गुरु अंगद देव जी जब श्री खंडूर साहिब में मेहनत कर रहे थे, ठीक उसी वक्त माता खीवी भी उतना ही मेहनत के साथ धर्म को समर्पित रहीं। गुरमुखी लिपि को बच्चों को सिखाने के साथ-साथ गरुबाणी का प्रचार व प्रसार करने में व्यस्त रहने वाले गुरु अंगद देव जी को संपूर्ण सहयोग देने वाले माता खीवी अपने पति के हरेक हुक्म का पालन करती थी। वह अपनी चार संतानों को संभालने के साथ-साथ कई अन्य बच्चों को जिंदगी चलाने का पाठ सिखाते हुए एकमात्र परमात्मा की राह पर चलने की शिक्षा देती थी।

सिख इतिहास में कई घटनायें हैं जो पूरे इतिहास के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। माता खीवी का योगदान भी उस क्रम में आता है जिसका जिक्र हरेक विश्वविद्यालय में होना चाहिए, परंतु पंजाब को छोड़कर किसी भी प्रांत में उनके सिख धर्म में अहम योगदान की चर्चा नहीं होती। पुरुष प्रधान समाज को प्रतिबिंब करते हुए लिखने वाले लेखकों ने भी माता खीवी के बारे में कभी कुछ लिखने की कोशिश नहीं की। पुरुषों की प्रशंसा करते हुए लिखने वालों ने महिलाओं के योगदान को अनदेखा किया है। पंजाब में माता खीवी का योगदान बहुत कम लोग ही जानते हैं। माता खीवी के योगदान के बारे में यदि सभी जानते होते तो उनके सिख धर्म के प्रति योगदान को समझ पाते।

माता खीवी का और एक महान् योगदान हम सब अभी तक नहीं समझ पाये हैं। वह योगदान है कि जब श्री गुरु अंगद देव जी के बाद श्री गुरु अमरदास जी को गुरुगद्दी पर बैठाया गया तब माता खीवी के बेटे दातू ने गुस्से में आकर गुरु अमरदास जी का अपमान किया था। बाबा नानक की विरासत को बिगाड़ने का साहस करने वाले अपने बेटे दातू की इस करतूत से माता खीवी बहुत दुखी हुई थी। परंतु माता खीवी ने बड़ी समझदारी से बेटे दातू की करतूत पर न सिर्फ नियंत्रण किया बल्कि उसे बाबा नानक के सिद्धांत पर चलना सिखाया। बाद में जब दातू सिरदर्द से पीड़ित हुए तो माता खीवी ने अपने बेटे को गुरु अमरदास जी के पास जाकर माफी मांगने को कहा। उन्होंने दातू को यह भी कहा कि सही गुरु को पहचानकर गुरु चरणों में शरण लो तब सभी मुश्किलें हल हो जायेंगी। अपने बेटे दातू को लेकर माता खीवी जब गुरु अमरदास जी के पास जा रहे थे तब गुरु अमरदास जी को उनके आगमन का पूर्व में ही अहसास हो गया और वह खुद उन्हें लेने आधे रास्ते पहुंच गये। गुरु अमरदास जी को मिलने और आर्शीवाद हासिल करने के बाद दातू जी की सभी मुश्किलें दूर हुईं थी। बाद में वही दातू बाबा नानक के सिद्धांतों को प्रबल करने के लिए जुट गये।

माता खीवी की सेवा भावना देखकर गुरु अमरदास जी ने उन्हें लंगर सेवा की जिम्मेवारी सौंपते हुए कहा कि मानवता की सेवा न सिर्फ एक समुदाय या देश तक सीमित रहे बल्कि उसे हरेक वर्ग, जाति व लिंग तक फैलायें। इसी कारण गुरु अमरदास जी की सेवा भावना उस शिखर तक फैल गई थी, जहां पर कोई भेदभाव नहीं था। यही सिद्धांत बाद में इतना मजबूत हुआ जिसने श्री अमृतसर साहिब में स्थित श्री दरबार साहिब के रूप में खुले हुए चार दरवाज़ों के रूप में हरेक वर्ग, जाति व लिंग का स्वागत किया। इस तरह का स्वागत उस समय के समाज के लिए एक नया मोड़ था क्योंकि 1500वीं शताब्दी में जातिवाद, स्त्री शोषण अपने शिखर पर था। उस शिखर को तोड़कर लोगों को ज़मीन पर लाने वाले श्री गुरु अमरदास जी की सोच को सच्चाई के रूप में लागू करने वाला यदि कोई था तो वह माता खीवी थी। हरेक धर्म, जाति, समुदाय, लिंग के लोगों को एकजुट होकर ज़मीन पर बैठ अन्न ग्रहण करने की उस लंगर प्रथा में भावनात्मक, धार्मिक व श्रद्धा की आत्मा भरने वाली थी माता खीवी। उस समय इस तरह का साहस करना आसान तो बिलकुल भी नहीं रहा होगा। बेशक 12वीं शताबदी के सूफीवाद, बाबा नानक का सिद्धांत लोगों तक पहुंच गया था परंतु फिर भी उस वक्त का जटिल समाज न तो सूफीवाद को समझता था और न ही बाबा नानक के सिद्धांत को। इसी कारण माता खीवी के वक्त में भी सती प्रथा, बाल विवाह व जातिवाद जैसी कुरितियां समाज में व्याप्त थी। इन सभी सामाजिक जटिलताओं को तोड़कर सभी को ज़मीन पर बिठाकर, देसी घी में बना खाना सभी को ग्रहण करवाने वाली माता खीवी पूरे इतिहास में एक ही महिला हुई हैं जिनका नाम श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज हुआ है।

इतिहास में बहुत सी महिलायें हुई हैं जिन्होंने सामाजिक क्रांति लाने के लिए जी-तोड़ मेहनत की है जिसमें जम्मू-कश्मीर की लल्ल दैद, कर्नाटक की आक्का महादेवी, राजस्थान की मीराबाई का नाम शामिल है। कठोर पुरुष प्रधान समाज की सोच को तोड़कर सामाजिक बुराई को उजागर करते हुए एकमात्र परमात्मा में लीन होने का पाठ सिखाने वाली इन तीनों महिलाओं के नाम भी किसी धार्मिक ग्रंथ में दर्ज नहीं हैं। परंतु माता खीवी का नाम श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज होना यह साबित करता है कि उनका योगदान सर्वकालिक, स्वव्यापी सत्य था। गौर करने वाली बात यह भी है कि लल्ल दैद से लेकर आक्का महादेवी और मीराबाई ने अपनी विचारधाराओं को अक्षरों में प्रकट किया है। इनकी वाणी अपने-अपने प्रांतों में लोग सुनकर एकमात्र परमात्मा में लीन हो जाते हैं। अपनी-अपनी भाषा में लिखकर उन्हें समृद्ध बनाने वाली इन क्रांतिकारी महिलाओं में से सबसे क्रांतिकारी तो माता खीवी थीं जिनके खुद के विचार अक्षरों में प्रकट नही हुए थे लेकिन फिर भी वह खुद अक्षर के मालिक श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सुशोभित होने का सम्मान पा सकी। पुरुष प्रधान समाज ने इन तीनों क्रांतिकारी महिलाओं की विचारधाराओं को

उस समय से लेकर आज तक बनता हुआ सम्मान नहीं दिया, परंतु इतिहास माता खीवी को हमेशा सम्मान के साथ याद करेगा क्योंकि युगो-युगो अटल श्री गुरु ग्रंथ साहिब में उनका नाम इस तरह सुशोभित हुआ हैः

बलवंद खीवी नेक जन जिस बहुती चाओ पतराली ।। लंगर दौलत वंडदी-ऐ रस अनमृत खीर घिआली ।।

एसजीजीएस 967.

अर्थात् 'बलवान कहते हैं कि खीवी एक पवित्र पत्नी है जो सबका सम्मान करती है। अपनी रसोई में देसी घी से बनाया हुआ भोजन सबको खिलाती है।'

माता खीवी के बारे में दर्ज हुई यह वाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब को सर्वोत्तम शिखर पर ले जाकर कुछ लोगों की उस शिकायत को भी मिटा देती है जिस शिकायत में बार-बार यह बोला जाता है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब में एक भी महिला की वाणी दर्ज नहीं है। दुनिया के सभी धार्मिक ग्रंथों में से सिर्फ गुरु ग्रंथ साहिब में महिला का नाम दर्ज होने से श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी को पुरुष प्रधान समाज की सोच को तोड़ने का सम्मान भी हासिल हो जाता है।

माता खीवी के योगदान को दुनिया के सभी लोगों को जानने व पहचानने की ज़रुरत है। बेशक लोगों ने कितनी भी आधुनिक तरक्की की होगी परंतु मानसिक शांति एवं संतुष्टि करने वाला अन्न अगर प्राप्त न हो तो मनुष्य हमेशा भटकता रहेगा। जीवित रहने के लिए सबसे महत्वपूर्ण अन्न है। अगर वह अन्न ही हमको प्यार से नहीं मिलता तो हम भोजन के उस स्वाद से वंचित रह जाते हैं। जिंदगी के हर हिस्से में साथ देने वाली आधुनिक महिला अगर माता खीवी का योगदान नहीं जानती है तो वह कितनी भी रोटी पकाये वह मीठी तो हो ही नहीं सकती। दुनिया भर में देसी घी में भोजन तैयार करना दूर की बात रह गई है सूखी रोटी भी खिलाने वाले भी नहीं रह गये। हर रोटी का हिसाब रखने वालों को इस कलयुग में माता खीवी की विचारधारा की बहुत आवश्यकता है। थाली में परोसे जाने वाली भोज्य सामग्री पर अलग-अलग मूल्य लगाकर थाली का वज़न कम करने वाले व्यवसायी लोग अगर माता खीवी की विचारधारा समझ गये होते तो न ही थाली का वज़न कम होता और न ही रसायन से युक्त सब्ज़ियों का वज़न बढ़ता। नानक खेती के सिद्धांत को छोड़कर रासायनिक वस्तुओं का प्रयोग कर सब्ज़ियों का आकार-विकार करने वाले हम लोग आज इतना गिर चुके हैं कि पैसे कमाने के लिए खाने वाले अन्न को भी दूषित करने से नहीं चूके। दूध से लेकर दवा तक दूषित करने वाले हम इंसान इतना गिर चुके हैं कि पैसे के लिए पेट में जाने वाली हरेक वस्तु को रसायनयुक्त कर चुके हैं।

माता खीवी के सिद्धांत से मैं इतना प्रभावित हुआ हूं कि मेरी बेटी का नाम खीवी रखने का फैसला करके उसका खीवी नाम रख दिया। इस नाम से आश्चर्यचकित होने वाले मेरे रिश्तेदार ने मुझसे यह पूछा कि यह कहां का नाम है? आश्चर्यचकित होने वाले मेरे हरेक रिश्तेदार को मैंने यही कहा कि यह उस माता का नाम है जो देसी घी से भोजन बनाकर सभी को खिलाती थी। सबको समझाते हुए में माता खीवी के योगदान के बारे में बोलता रहा। कुछ रिश्तेदार बेटी को खीवी बोले, कुछ तो खुशी बोलकर खुश हो गये।

चाहे रिश्तेदार बेटी को खुशी के नाम पर बुला रहे थे परंतु उस खुशी में खीवी नाम की आवाज़ मुझे सुनाई देती थी। पूरे कर्नाटक के लोगों के लिए यह नाम नया था। इसी कारण इस नाम के प्रचार और प्रसार के लिए मैंने बेटी के जन्मदिन पर खाना देसी घी में बनाकर सबको ज़मीन पर बिठाकर खिलाया। ज़मीन पर बैठकर देसी घी से बना हुआ अन्न ग्रहण करके जब वह उठे उनके मुंह से खुशी नहीं खीवी ही निकला था। मैंने इस नाम का प्रचार और प्रसार पूरे दक्षिण भारत में करने का ठान लिया था इसीलिए माता खीवी के बारे में दक्षिण भारत की भाषा में लिख-लिखकर प्रकाशित करवाया। इस पवित्र नाम का प्रचार व प्रसार करने की मेरी चाहत यहां तक ही नहीं रूकी बल्कि अब इस किताब को मैंने हिंदी में लिखकर हिंदी भाषा को जानने वालों तक पहुंचाने का साहस किया है। मेरा साहस यहां तक सीमित नहीं रहेगा बल्कि दुनिया की हरेक भाषा में माता खीवी के बारे में अनुवाद करके

प्रकाशित करने तक साहस जारी रहेगा। क्योंकि यदि दुनिया की हरेक महिला ने माता खीवी के प्यार और सेवा की भावना को समझ लिया तो पूरी दुनिया में पुरुषों का औरत के प्रति सम्मान व नज़रिया बदलेगा।
दुर्भाग्य की बात यह है कि दुनिया के कई धर्मों को जीवित रखकर प्रबल करने में कई महिलाओं का महान् योगदान होने के बावजूद भी उन

महिलाओं को याद तक नहीं किया जाता। उन महिलाओं की याद में नही अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्वविद्यालय खोली गई हैं और न ही अनुसंधान संस्था। माता खीवी के योगदान के सम्मान को समर्पित पूरे पंजाब में एक भी विश्वविद्यालय उनके नाम पर नहीं है। अपनी बच्चियों का नाम चीनू-मीनू रखकर गौरवान्वित महसूस करने वाले पंजाब के लोगों को इस कलियुग में माई भागो से लेकर माता खीवी का नाम रखने की ज़रूरत है। कुछ लोग मुझे यह कहते भी नहीं हिचकिचाये कि आप अपनी बेटी का नाम माता खीवी के नाम पर कैसे रख सकते हैं? मैंने उन लोगों को बहुत विन्रमता से पूछा कि अगर लोग अपनी दुकान का नाम गुरू नानक स्वीट्स रख सकते हैं तो मैं मेरी बेटी का नाम जिंदगी भर सबको मिठास भरा भोजन खिलाने वाली माता खीवी के नाम पर क्यों नहीं रख सकता? मेरे उस सवाल का अभी तक जवाब न देने वाला वह 'सवालदायक' सबके पास जाकर समझा रहा होगा कि दक्षिण भारत वाले लोग अगर माता खीवी का योगदान पहचानते हैं तो हम लोगों को भी पहचानना चाहिए। यदि पंजाब के हर वाशिंदे के मन में सच्ची सेवा करने वाले संतो की पहचान करने की क्षमता होती तो अभी तक बहुत से संतों के नाम पर स्कूल, कॉलेज व विश्वविद्यालय बन जाते। एकमात्र परमात्मा की नाद पर नाचने वाले पंजाबी लोगों का आधुनिक काल में अश्लील गाने पर नाचना गंभीर विषय है। इस गंभीर विषय को न पहचानने वाले पंजाबी लोग हरेक शादी व कार्यक्रमों पर लचर गाने पर मिलकर परिवार सहित नाचते हैं। कभी इस पवित्र धरती के कण-कण में ज्ञान की चर्चा हुआ करती थी, अब उसी धरती पर जगह-जगह शराब के ठेके खुल गये हैं। न पीने वाले लोगों को भी पीने के लिए मजबूर करने वाले 'घर दी शराब होवे, अपना पंजाब होवे' सरीखे गीतों पर कई सालों से नाचने वाले पंजाबी लोग अच्छे कलाकारों को अभी तक नहीं पहचान पाये। 'सो क्यों मंदा आखिये, जित जम्मे राजान' वाणी को प्रकट करने वाले श्री गुरु नानक देव जी के इस सिद्धांत को यदि पंजाबी लोग पहचानते होते तो मासूम बच्चों का कोख में कत्ल नहीं होता। इस तरह की गतिविधियों पर काबू पाने के लिए माता खीवी का सिद्धांत हर घर तक पहुंचाने की ज़रूरत है। अपनी बच्चियों का चिंकी पिंकी नाम रखने वाले पंजाबी लोगों को माता खीवी, माता गुजरी का नाम रखने पर परहेज़ नहीं रखना चाहिए। इसी बहाने उन माताओं तथा उन माताओं की महान् सेवाओं को याद किया जायेगा।

कर्नाटक के रहने वाले लोग अपनी बच्चियों का नाम महादेवी व चौड़वा रखते हैं जो बारहवीं सदी में महान् वचनकार हुए हैं। अक्का महादेवी के नाम पर कर्नाटक में एक विश्वविद्यालय भी बना हुआ है। लंगर प्रथा को कन्नड़ भाषा में दासो कहते हैं और उस दासो प्रथा को मज़बूत करने वाले चौड़वा नाम की बच्चियां कर्नाटक के घर-घर में मिलती हैं। उस 'सवालदायक' को मैं फिर से सवाल करता हूं कि पूरे पंजाब में मुझे एक ऐसा गांव दिखाओ जिस गांव में माता खीवी के नाम की बच्ची हो और उनके नाम पर सड़क का नाम हो। उस 'सवालदायक' को मैं ढूंढ रहा हूं यह सवाल पूछने के लिए कि क्या पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ में माता खीवी के नाम पर कोई स्कूल है ? सनिवास पाठशाला? चिंता का विषय तो यह है कि पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ होने के बावजूद एक भी पंजाबी माध्यम सरकारी स्कूल नहीं है। इतना ही नहीं चंडीगढ़ प्रशासन में न ही पंजाबी भाषा का सम्मान किया जाता है और न ही हमारी राष्ट्रीय भाषा हिंदी का। अंग्रेज़ लोग तो चले गये फिर भी अंग्रेज़ी भाषा को गले से लगाकर बैठे हुए चंडीगढ़ प्रशासन के अधिकारीगण को हमारे देश की भाषाओं का महत्व कौन समझायेगा? कैंसर पीड़ित बठिंडा की किसान बच्चियों को अपनी राजधानी चंडीगढ़ में शिक्षा हासिल करने के लिए पूरा अधिकार है परंतु फिर भी उन मासूम बच्चियों के लिए चंडीगढ़ प्रशासन ने एक भी स्कूल नहीं बनाया। केंद्र सरकार से कई

करोड़ का अनुदान हासिल करने वाला चंडीगढ़ प्रशासन हर साल कई करोड़ रूपये बिना खर्च किये केंद्र को वापिस भेज देता है। पंजाब के कई दर्जन गांवों को उजाड़कर बनने वाले चंडीगढ़ शहर में पंजाबी लोगों के लिए ही शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधा नहीं है। चंडीगढ़ हरियाणा की राजधानी भी है फिर भी हरियाणवी की अमीर विरासत को बचा कर प्रगति की ओर लेकर जाने के लिए एक भी विश्वविद्यालय नहीं है।

हम ऐसे अपराधी हैं जो इस सारे अपराध करने वाले लोगों का अपराध भी नहीं पहचानते हैं। अगर इन सभी अपराधों को हम पहचान गये होते तो पंजाब और हरियाणा जैसे विकासशील राज्यों में बहुत बड़े स्तर पर क्रांति आ सकती थी। सामाजिक चेतना व जागृति पैदा करने वाले कलाकार लोगों का अपराध भी हम नहीं पहचान पाये हैं। हरेक गांव की गलियों में जाकर सामाजिक बुराईयों के खिलाफ चेतना पैदा करने का काम कलाकारों का था परंतु उन कलाकारों ने कला का ऐसा मज़ाक उड़ाया कि वो पैसे लेकर नाटक खेलते हैं। कलम से कहानी लिखकर क्रांति लाने की शक्ति हरेक लेखक के अंदर होती है परंतु आधुनिक काल के लेखकों ने तो कलम की स्याही को शराब बनाकर रख दिया है। पंजाब में ऐसे बहुत से लेखक हैं जिनकी शाम ढलते ही महफिल सज जाती है। एक दूसरे की झूठी तारीफ करते हुए शराब पीने वाले इन लेखकों को मैं सवाल पूछता हूं कि क्या उन्होंने कभी माता खीवी की कहानी लिखकर अपनी कलम को काबिल बनाया है?

काबिलियत तो उन लेखकों की होती है जिन लेखकों की कलम से 'कमाल-ए-करामात कायम करीम, रज़ाबख़्श रज़ाकुन रहीम' हर वक्त लिखा जाता है। उस परमात्मा का वर्णन करते हुए लिखने वाले लेखकों की संख्या आधुनिक पंजाब में कम होने के कारण कई गुरु-पीरों का महान् योगदान पूरी दुनिया तक पहुंचाने में पूरा पंजाब असफल रहा है। इस असफलता को पहचानकर अगर पंजाबी लोग यह स्वीकार कर लेंगे कि माता खीवी की मानवता का संदेश हर जगह पर पहुंचाना ज़रूरी है तो न सिर्फ माता खीवी का हर जगह पर गुणगान होगा बल्कि लल्ल दैद, अक्का महादेवी, मीराबाई और दानाम्मा जैसे साध्वियों का गुणगान हर जगह पर होगा।

मेरी मातृभाषा कन्नड़ होने व पवित्र पंजाबी भाषा सीखने और अंग्रेज़ी भाषा को बहुत अच्छे से जानने के बावजूद भी मेरी राष्ट्रभाषा हिंदी में माता खीवी के बारे में लिखने का साहस मैंने इसलिए किया है क्योंकि देवनागरी लिपि को पढ़ने वाले और समझने वाले लोग धन्य हैं जिनकी संस्कृति बहुत अमीर है। पर दुख की बात यह है कि उस अमीर साहित्यिक क्षेत्र में माता खीवी जैसी महान् महिला के योगदान के बारे में एक भी किताब प्रकाशित नहीं है। मेरा देवनागरी में लिखने का यही कारण है। यह भी एक कारण हो सकता है कि उत्तरभारत में सबसे ज्यादा हिंदी बोली जाती है और उस हिंदी भाषा में अगर माता खीवी जैसी महान् महिला के बारे में कोई किताब लिखी जाये तो उत्तर भारत के लोगों के मन में सेवा और सिमरन की विचारधाराओं का पुनःजन्म होगा। मैं पुनःजन्म इसलिए लिख रहा हूं क्योंकि पंजाब को छोड़कर पूरे उत्तरभारत में न ही लंगर प्रथा निरंतर चल रही है और न ही दासो का अर्थ यह लोग जानते हैं। इसी उत्तरभारत ने भगवान के नाम पर कभी मंदिर तोड़कर मस्जिद बना दिया और मस्जिद तोड़कर मंदिर बनाने का साहस रखा पर 24 घंटे चलने वाला एक भी लंगर हॉल नहीं बना सके। भगवान के दिये इस शरीर की चमड़ी का काम करने वाले संत रविदास की आवाज़ को उत्तरभारत के बनारस ने नहीं सुना था परंतु उसी आवाज़ को सुनकर श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सम्मान के साथ समेटकर रखने वाली सोच पंजाब की है। इसी कारण मैं पूरे पंजाब व पंजाबी लोगों को पवित्र कहने में नहीं हिचकिचाता। पंरतु इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि उत्तरभारत के दूसरे क्षेत्र अपवित्र हैं। भगवान की बनाई हुई हर जगह पवित्र है परंतु उस पवित्र जगह को हमेशा पवित्र रखने में उत्तरभारत के कुछ क्षेत्रों के असफल होने के बाद मैं 'पट्ट मारकर' बोल सकता हूं कि दक्षिण भारत से आकर उत्तरभारत की सभी समस्याओं को 'पट्ट मारकर' पूछने वाला मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि दक्षिण भारत में तो इससे ज्यादा खतरनाक गतिविधियां हैं जैसे देवदासी व जातिवाद। इस दुनिया की सुंदरता अगर और सुंदर बनानी है तो हमारे गुरु पीरों के संदेश को हर भाषा में अनुवाद करके हर जगह पहुंचाने की ज़रूरत है। देश की

एकता और अखंडता दुनिया की एकता और अखंडता, मानवता का सुमेल अगर करवाना है तो माता खीवी जैसी महिलाओं का संदेश हर जगह पहुंचाने की ज़रूरत है। इसी ज़रूरत को पूरा करते हुए यह कार्य आपके सामने अति विनम्रता के साथ रख रहा हूं। इस किताब में लिखा हुई हर जानकारी एवं निंदाजनक टिप्पणियां कोई एक समुदाय या धर्म का प्रतीक नहीं हैं बल्कि माता खीवी जैसी महान् सेवादारनी का योगदान सबको समझाकर समाज में चेतना लानी है। उस एकमात्र परमात्मा की नाद में लीन होने वाले संतों की विचारधारा हरेक के निजी जीवन में लाना इस कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

सरांश

समाजिक सेवा एक बहुत बड़ा अध्ययन क्षेत्र है जिसके द्वारा नौजवान लोग सोशल वर्क अध्ययन करके नौकरी हासिल करके समाज में कई मुद्दों पर काम कर रहे है। हिन्दुस्तान में कई कॉलेज, यूनिवर्सिटी में सोशल वर्क पढ़ाया जा रहा है। सारे कॉलेज और यूनिवर्सिटी के सोशल वर्क विभाग के सिलेबस को अगर ध्यान से पढ़ाया जाये तो पता चलता है कि कोई भी सिलेबस में माता खीवी के बारे में जिक्र तक नीं है। सिलेबस बनाने वाले माता खिवी के इतिहास के बारे में जानकारी रखें या नहीं पर करोड़ो रूप्ये कॉलेज और यूनिवर्सिटी को फंड देने वाली सरकार को तो माता खीवी का इतिहास पता होना चाहिए। पंद्रहवीं सद में जब औरतों को कोई आजादी नहीं थी उस समय माता खीवी ने घर से बाहर आकर देसी घी में खाना बनाकर अनजान लोगों को बुला बुला कर खाना खिलाया था और ऊपर से स्वादिष्ट खीर भी खिलाती थी। माता खीवी की यह महान् सेवा जो सदियों तक लगातार चली, जिसका जिक्र न ही कोई कॉलेज, यूनिवर्सिछी के सिलेबस में है न ही कोई रकारी दस्तावेज में। सत्तर साल से जयादा जिन्दा रहकर श्री गुरू नानक देव जी से लेकर पंचम पिता गुरू श्र गुरू अर्जुन देव जी की सेवा करते लंगर प्रथा चलाने वाली माता खीवी ने जातिवाद का कम किया। जब मुगलों के अत्याचार, अन्याय के समय माता खीवी की महान सेवा अगर सोशल वर्क विभागों में नहीं पढ़ाएँगे तो सोशल वर्क विभाग भी अपूर्ण साबित हो सकता है। विदेश से आकर मोहल्ले में सेवा करने वाली मदर टेरेसा को अगर भारत में सम्मान यिा जाता है और प्रत्येक सोशल वर्क विभागों में मदर टेरेसा की सेवा के बारे में रज-रज के पढ़ायाप जाता है तो पंद्रहवीं सदी में जब औरतों को कोई भी आज़ादी नहीं थी उस समय महान् सेवा करने वाली हमारे ही देश की पंजाब की माता खीवी के बारे में क्यें नही पढ़ाया जाता है? माता खीवी की महान् सेवा को एक धर्म या एक क्षेत्र तक सीमत रखने वाले लोग गुरू नानक देव जी की विशाल विचारधारा को अभी तक समझे ही नहीं।

समाज सेवा विभागों में पहला पाठ तो माता खीवी के बारे में होना चाहिए क्योंकि माज सेवा में औरत के प्रभावशाली होने का उदाहरण में माता खीवी की सेवा सबसे महत्वपूर्ण है। माता खीवी ने समाज सेवा और धार्मिक भावना को मिलाकर जो काम किया है, उसे बारे में सोशल वर्क विभाग के अध्ययन का एक अलग ही विभाग होना चाहिए। सेवा सिमरन का अनोखा मिलाप दुनिया की पहली तनीक होगी जिसके बारे में सोशल वर्क विभागों में खोज होनी चाहिए। सोशल वर्क भी आधुनिक काल का शिकार होने के कारण इस क्षेत्र को प्रोफेशनल कोर्स के तरीके से पढ़ाया जा रहा है जिसमें न ही सेवा की भावा होती है और न ही सिमरन की साधना। इस कारण बहुत सारे सोशल वर्क विभाग विफल साबित हो रहे हैं। यदि सोशल वर्क विभाग माता खीवी के सेवा सिमरन मिलाप को एक तकनीकी रूप में अपनाकर विद्यार्थियों को पढ़ाए तो बहुत सारी समाज सेवा सफल हो सकती है।

बिबलीओग्राफी

1. कौर सिमरन, प्रसिद्ध सिख बीबीयां, सिंह ब्रदर्स, अमृतसर, 1991
2 घुरये, जी.एस. कास्ट क्लास इन इंडिया, बाम्बे पापुलर बुक डिपो, 1950
3. सिंह साहिब, श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी।

4. कपूर, सुखबीर, गुरू ग्रन्थ साहिब, एन अडवास स्टड़ी, हेमकुंट प्रैस, आईएसबीएन 978-0-87196-129-7
5. गुरिन्द्र सिंह मान (2001) , दी मेकिग आफ सिख सक्रीपचयूर, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, आईएसबीएन 978-0-19-513024-9
6. त्रिलोचन सिंह (1994) , इरनसट ट्रपं एंड डब्लयू. एच. मक्लीओड एस स्कालर आफ सिख हिस्ट्री रलीजन एंड क्लचर, इंटरनैशनल सैंटर आफ सिख स्टडीस।

मोबाईल: 9988351695
ई-मेल: raju_herro@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 141-144
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विनोद कुमार के उपन्यास : 'झारखंड' के अस्मिता एवं अस्तित्व की दास्तान

तरुण कांति खलखो
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
राम सहाय मल मोर महाविद्यालय, गोविंदपुर, धनबाद पिन नंबर-828103
(अंगीभूत महाविद्यालय विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद, झारखंड)

शोध-सार :
'साहित्य' इतिहास के पन्नों को सुरक्षित रखता है। परंपरा और इतिहास 'साहित्य' के साथ जुड़ा है। मानव के विकास के साथ 'साहित्य' का विकास होता गया। इस दौरान उन्होंने अपने अंदर जो मनुष्यता की भावना का विकास किया, उसे 'साहित्य' में रेखांकित किया। 'झारखंड' प्रदेश का इतिहास अस्तित्व के संघर्ष का रहा है। लेखक विनोद कुमार 'समर शेष है', 'मिशन झारखंड' तथा 'रेडजोन' उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता तथा अस्तित्व के युद्ध की गाथा कहते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों की सुंदरता उपन्यासकार विनोद कुमार की रचनाओं में झलकती है।

मुख्य शब्द : विस्थापन, पलायन, भाषायी स्वतंत्रता, पर्यावरण, बहिरागत, संस्कृति, उपभोक्तावाद।

'साहित्य' इतिहास के पृष्ठों की कथा के रूप में प्रस्तुत करता है। जीवन को परिभाषित करते हुए, इसके बेशुमार रंगत को लेखनी की कूची से उकेरता है। 'साहित्य' समाज के इतिहास, सामाजिक - सांस्कृतिक मूल्यों, समाज में निवास करने वाले निवासियों की विचारधारा को शब्दों के माध्यम से पाठक-वर्ग समक्ष प्रस्तुत करता है। रचनाकार इतिहास को काल्पनिक कथा के माध्यम से व्यक्त करता है। लेखक विनोद कुमार की रचनाओं में 'झारखंड' के इतिहास तथा अस्तित्व की गाथा मिलती है। 'समर शेष है' की (1998 ई०), 'मिशन झारखंड' (2006 ई०) तथा 'रेडजोन' (2015 ई०) उपन्यास झारखंड प्रदेश के ऐतिहासिक पक्ष एवं संघर्ष के प्रतिबिंब हैं। प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद कहते हैं- **"वास्तव में कोई रचना रचयिता के मनोभावों का, उसके चरित्र का, उसके जीवनादर्श का, उसके दर्शन का आईना होती है। जिसके हृदय में देश की लगन है, उसके चरित्र, घटनावली और परिस्थितियाँ सभी उसी रंग में रंगी हुई नजर आएँगी।"**[1]

बिरसा मुंडा, चाँद-भैरव, तिलका मांझी, सिदो-कानू जैसे वीर पूर्वजों की भूमि आरंभ से अस्तित्व के लिए युद्धरत है। कालांतर में युद्ध के संदर्भ बदल गये - भूमि कर तथा अंग्रेजों के लगान स्वरूप उठे विद्रोह के स्वर अंतत: विस्थापन, पलायन, भाषायी स्वतंत्रता, सांस्कृतिक मूल्यों के बचाव जैसे विषयवस्तु में परिणत हो गये। 'समर शेष है' उपन्यास में 'झारखंड' के अस्तित्व की कहानी बयाँ करती हैं। बहिरागतों के आगमन से राज्य की

स्थिति में परिवर्तन आते-जाते हैं। महाजनों के द्वारा डेवढ़ा ब्याज लेने से स्थानीय लोगों की पुश्तैनी जमीन धीरे-धीरे महाजनों के कब्जे में चली जाती है। उपन्यासकार कथानक में स्पष्ट करते हैं कि धीरे-धीरे कैसे जमीन को अवैध तरीकों से लूटा जा रहा रहा है। भूमि-कानून को ताक में रखकर रैयती जमीन को हथिया लिया जाता है। 'समर शेष है' उपन्यास में स्थानीय निवासियों की अंतर्व्यथा का वर्णन किया गया है-

"सोबरन, सभी मामलों में रजिस्ट्री भी नहीं होती। बहुत सारे खेत वर्षों से महाजन के यहाँ रेहन पर रखे जाते हैं। हैं। तुम जानते ही हो, आदिवासियों को महाजन सामान्यत: डेवढ़ा ब्याज पर धान या अन्य अनाज दिया करता है। ब्याज और सूलधन अधिक हो जाने पर तीन तरीकों से आदिवासियों की जमीन हड़पते हैं। पहली विधि है भुगुत बँधा। इसमें मूलधन और सूद के हिसाब से न्यूनतम 9 वर्षों के लिए महाजन जमीन अपने नाम करवा लेता है। सूद-बंधक में सिर्फ सूद की वसूली के लिए खेत लिखवा लिया जाता है, लेकिन इसमें कोई समय सीमा नहीं। सूद और मूल वापस देने पर जमीन पुन: आदिवासी के पास वापस हो जाती है। और फिर है कोयला केवाला। जब सूद और मूल वापस करने में मांझी असमर्थ हो जाता है तो खेत स्थायी रूप से महाजन के नाम केवाला कर दिया जाता है।"[2]

बिहार के दक्षिण भाग में स्थित यह भूमि अपने जल, जंगल, जमीन के अस्तित्व के लिए लगातार संघर्षरत है। लेखक पत्रकारिता के क्षेत्र से तालुक्क रखने के कारण धनबाद, बोकारो, पोटका जैसे स्थलों पर भ्रमण करते रहते हैं। अपनी पैनी नज़र से उन्होंने समाज में व्याप्त विडम्बनाओं को कथानक के माध्यम से चित्रित किया है, ताकि समाज को मनन-चिंतन हेतु विषम साम्रगी उपलब्ध हो। लेखक विनोद कुमार उपन्यास में अंधविश्वास, पलायन, विस्थापन के दंश को उजागर करते हैं। वर्तमान परिदृश्य में ये समस्याएँ प्रासंगिक है। उद्योगों तथा विकास की रूपरेखा तैयार करने के दौरान स्थानीय स्तर पर विस्थापन की समस्या देखी जाती है। कोयला खनन, बाँध एवं सड़क निर्माण, बड़े-बड़े उद्योग लगने के लिए लोगों को उनके निवास से हटाया जाता है। विस्थापन की पीड़ा सिर्फ एक पीड़ित ही समझ सकता है। अपने जड़-जमीन से उखड़कर नये जगह पर पुन: स्वयं को स्थापित करना नवीं चुनौती की तरह होती है। विस्थापन केवल मनुष्यों का नहीं होता है वरन् उसके साथ पूरा समाज, उसकी भावनाएँ, आँगन में लगे वृक्ष, वृक्षों में बसेरा करने वाले पक्षी, वहाँ की भाषा सभी विस्थापित हो जाते हैं। लेखक उपन्यास 'समर शेष है' और 'रेडजोन' उपन्यास बोकारो में स्थित लौह इस्पात कारखाना के दौरान विस्थापित गाँवों की करूण गाथा को व्यक्त करता है। समग्र उपन्यासों का अध्ययन, विश्लेषण करने के उपरांत कथानक के देश-काल, वातावरण की वास्तविकता का आकलन किया जा सकता है। पात्र, वस्तु-स्थिति, वास्तविक सन्दर्भों को आधार बनाकर लिखे गये हैं। विकास के लिए तैयार रुपरेखा का आधार क्या होना चाहिए? विकास की वास्तविक परिभाषा क्या होना चाहिए? दरअसल विकास के लिए तैयार प्रारूप जमीनी हकीकत में उतर नहीं पाती । विस्थापित परिवारों के पुनर्निवास निवारण उनके मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का ढाँचा हकीकत में क्रियान्वित नहीं हो पाता। जिसके फलस्वरूप पीड़ित परिवार के हाथ से अपने पूर्वजों की विरासत छिन जाती है साथ ही उनके जीवन का आधार भी हाथ से निकल जाता है। उपन्यास में पात्रों के संवाद, उनके मनोव्यथा को व्यक्त करते हैं। 'रेडजोन' उपन्यास में पात्र दुर्गा और कालीचरण (भाई-बहन) विस्थापन के क्रूर दंभ का शिकार बनते हैं। जब उनका घर-द्वार विस्थापन के कारण टूट जाता है। कालीचरण को नौकरी के स्थान पर केवल झूठी तसल्ली दी जाती है तो वे 'नक्सलवाद' की राह पर चल पड़ते हैं, जो किसी भी तरह से मानवता के विपरीत है। लेखक इन पात्रों के द्वारा समाज की विसंगतियों पर गहरा कटाक्ष करते हैं। उपन्यास में विकास की वास्तविक रणनीति का जिक्र किया गया है। वे उद्योग लगाने से पूर्व ग्राम सभा से इजाजत लेने की मांग करते हैं। विकास ऐसा हो, जिनमें उनके विरासत को क्षति न पहुंचे।

" ..... हम उद्योग-धधों के विरोधी नहीं, लेकिन वैसा उद्योग भी नहीं चाहते जो हमारी धरती की हरियाली छीन ले, नदियों को प्रदूषित करे। वे विकास के नाम पर हमसे हमारा जल – जंगल - जमीन छीनने आये हैं। वे खेतिहर जमीन छीनने आये हैं जिसको आपके पूर्वजों ने जंगल - झाड़ साफ कर अपना खून-पसीना एक कर तैयार किया था। यहाँ चलने वाले अधिकतर स्पंज आयरन कारखाने अवैध रूप से चल रहे हैं। वे खुल्लम-खुला वन कानूनों का उल्लंघन कर वनक्षेत्र में चल रहे हैं। प्रदूषण बोर्ड द्वारा निर्धारित मानदंडों का उल्लंघन कर रहे हैं। दिल्ली जैसे महानगरों से उन्हें सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों पर हटाया जा चुका है। अब वे आदिवासी क्षेत्रों में चले आये हैं, क्योंकि व्यवस्था की नजर में आदिवासियों की कीमत कीड़े-मकोड़ों से अधिक नहीं समझते वे ..... ।"[3]

विश्लेषण करने के पश्चात् यह बात स्पष्ट होती है कि झारखंड राज्य की सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत समृद्ध है। यहाँ के स्थानीय लोगों की आकाक्षाएँ सीमित है। अपनी संस्कृति तथा पर्यावरण को संजोकर रखने की चिंता अधिक है। पूर्वजों ने जो विरासत प्रदान की है, उसके संरक्षण हेतु कटिबद्ध हैं। अपनी सीमित आवश्यकताओं के बीच अपने जीवन को सुरक्षित तथा समाज को संरक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। भाषा, संस्कृति तथा समाज की अस्मिता एवं पहचान को बरकरार रखकर मानवता को कायम रखना इनका ध्येय है। तथाकथित समाज के अनैतिक पक्षों तथा अमानवीय नियमों को तोड़कर सामूहिकता में विश्वास करने वाला समाज अपनी पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत है। वास्तव में झारखंड राज्य के निवासियों की अभिलाषाएँ क्या हैं? प्रसिद्ध समालोचक वीर भारत तलवार कहते हैं-

"आदिवासियों की अभिलाषाएँ वहीं हैं जो सभी मानव जातियों की हैं। आदिवासियों की अभिलाषाओं में और अन्य मानव समाजों की अभिलाषाओं में कोई मौलिक फर्क नहीं है। फर्क है तो यही है कि बहुत-से मानव समुदायों ने उन अभिलाषाओं को इस तरह या उस हद तक पूरा कर लिया है जबकि आदिवासी उनसे वंचित रखे गए हैं। आदिवासियों की वर्तमान विशिष्ट परिस्थितियाँ, उनके इतिहास का विकास, उनके बीच सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलन आदिवासियों की अभिलाषाओं के स्वरूप को निर्धारित और प्रकट करते हैं।"[4]

अतः कहा जा सकता है कि लेखक के उपन्यास में वर्णित इन समुदाय के आकांक्षाए बहुत विस्तृत नहीं है। अपने परिवेश को बचाने की पुरजोर कोशिश ही उनका ध्येय है। स्वायत्तापूर्वक सादगी भरा जीवन जीना इनका सिद्धांत हैं। निस्वार्थ भाव से पर्यावरण के इर्द-गिर्द पूरी जिन्दगी गुजारने का आमादा रखते हैं।

निष्कर्ष :

सारांशतः कहा जा सकता है कि बाज़ारवाद तथा उपभोक्तावादी संस्कृति में मानव के विकास का दायरा बढ़ गया है। समय के बदलते कलेवर में, आधुनिकीकरण तथा औद्योगिकीकरण के युग में विकास को लेकर विस्थापन की स्थिति बनी हुई है। उन सन्दर्भों पर विमर्श की आवश्यकता है। झारखंड राज्य में पहले महाजन शोषण व्यवस्था द्वारा जमीन की लूट हो रही थी, जो रूपांतरित होकर वर्तमान में विकास तथा आधुनिकीकरण के नाम पर हो रही है। वर्तमान में इन समस्याओं को विरासत तथा सामाजिक - सांस्कृतिक पक्षों को बचाते हुए निवारण करना एक चुनौती के समान है।

विनोद कुमार

संदर्भ - सूची

1. प्रेमचंद : 'कुछ विचार', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण वर्ष-2013, पृष्ठ संख्या-68
2. कुमार, विनोद : 'समर शेष है' (उपन्यास), प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली, संस्करण वर्ष-2005, पृष्ठ संख्या–42.

3. कुमार विनोद : 'रेडजोन' (उपन्यास), अनुज्ञा बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष-2015, पृष्ठ संख्या-395.
4. तलवार, वीर भारत : 'झासखंड के आदिवासियों के बीच, एक एक्टीविस्ट के नोट्स', भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण वर्ष – 2019 पृष्ठ संख्या-246. साठ

ईमेल : xalxotarunkanti@gmail.com
मोबाईल नंबर - 9801690705

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 145-148
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी आदिवासी कहानियों में चित्रित आदिवासी स्वास्थ्य समस्याएं

नेहा यादव
(पी.एच डी) हिन्दी विभाग(मानविकी संकाय)
हैदराबाद विश्वविद्यालय तेलंगाना

कहते हैं स्वस्थ शरीर से ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। मानव जीवन का सबसे बड़ा धन उसका स्वास्थ्य है फिर वह चाहे मानसिक हो या शारीरिक। बदलते वक्त के साथ शरीर भी परिवर्तित प्रतिक्रिया देने लगता है। इसलिए इस पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है।

प्रकृति के सानिध्य में जीवन आसान होता है किंतु उसके साथ छल कपट करने पर वह अपना विकराल रूप अवश्य दिखा देती है। आदिवासियों का प्राकृतिक क्षेत्र से घनिष्ठ संबंध रहा है। वह उसके संरक्षक के रूप में अपनी भूमिका अदा करते रहे हैं। किंतु विकास का पराक्रम ऐसा फैला की सभी प्राकृतिक क्षेत्रों में अपनी जरूरत से ज्यादा बर्बरतापूर्वक हस्तक्षेप होते चले गएं। जिनमें खनन प्रक्रिया, औद्योगिक धंधे और फैक्ट्रियां एक रोग की तरह दिखाई देते हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो ये धरती, हवा, पानी के साथ चिमट से गए हों और उन्हें धीरे-धीरे सड़ा रहे हों और उससे उत्पन्न हुई सड़ांध से आसपास का संपूर्ण वातावरण जहरीला होता जा रहा है। जिसका प्रभाव वर्तमान पीढ़ी के साथ भावी पीढ़ी पर भी दिखाई दे रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में गर्भवती महिलाओं का अधिक संख्या में गर्भपात हो जाना या फिर विकलांग बच्चों का जन्म लेना सामान्य हो गया है। फेफड़ों में धुआं भर जाना, तपेदिक का भयंकर प्रकोप एक चिंता का विषय है। इनके कारण पर विचार कर समाधान को अमल में लाना ही इसका एक बेहतर उपाय होगा।

भारत में जनजातीय समुदाय के वर्तमान स्थिति कि यदि बात कि जाए तो ये देश की जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो लगभग 8.9% है। कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या में से लगभग 2.6 मिलियन (2.5%) लोग "विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों" (पीवीटीजी) से संबंधित हैं, जिन्हें "आदिम जनजाति" के रूप में जाना जाता है - जो सभी अनुसूचित जनजाति समुदायों में सबसे अधिक वंचित हैं। वे विभिन्न राज्यों में फैले हुए हैं, तथा मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, छत्तीसगढ़, राजस्थान , पूर्वोत्तर राज्यों तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह में उनकी संख्या अधिक है।

भारत में आदिवासियों की अपनी समृद्ध एवं विविध संस्कृति, भाषा और परंपराएँ हैं। उनका प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध है और वे अपनी आजीविका के लिए जंगलों और पहाड़ियों पर निर्भर हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, धर्म और शासन के संबंध में उनकी अपनी मान्यताएं, प्रथाएं और प्राथमिकताएं हैं। भारत में कुछ जनजातीय समुदायों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति (एसटी) के रूप में मान्यता दी गई है। वे अपने सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक विकास के लिए विशेष प्रावधानों और सुरक्षा के हकदार हैं। उनके हितों को विभिन्न

कानूनों और नीतियों जैसे 5 वीं और 6वीं अनुसूचित क्षेत्र, वन अधिकार अधिनियम 2006 और पेसा अधिनियम 1996 द्वारा सुरक्षित किया जाता है । भारत में जनजातीय समुदायों की वर्तमान स्थिति की यदि बात करे तो उनको गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, स्वास्थ्य, रोजगार, बुनियादी ढांचे और मानवाधिकारों के संदर्भ में अनेक चुनौतियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता है । वे आय, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता और लैंगिक समानता जैसे मानव विकास के विभिन्न संकेतकों पर राष्ट्रीय औसत से पीछे हैं । उन्हें गैर-आदिवासी लोगों और संस्थाओं से भेदभाव, शोषण, विस्थापन और हिंसा का भी सामना करना पड़ता है । उनके पास अपने सशक्तिकरण और भागीदारी के लिए संसाधनों और अवसरों तक सीमित पहुंच है। आदिवासी लोगों को स्वस्थ रहने के लिए पर्याप्त भोजन या सही प्रकार का भोजन नहीं मिलता है। वे भूख, बौनेपन, दुर्बलता, एनीमिया और विटामिन और खनिजों की कमी से पीड़ित हैं। जनजातीय लोगों में मलेरिया , तपेदिक , कुष्ठ रोग , एचआईवी/एड्स , दस्त , श्वसन संक्रमण तथा कीड़ों या जानवरों द्वारा फैलने वाली बीमारियों जैसे संक्रामक रोगों की संभावना अधिक होती है । जिसका कारण खराब स्वच्छता और स्वास्थ्य देखभाल तक सीमित पहुंच जैसे कई कारक हैं। जनजातीय लोगों को मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, कैंसर और मानसिक विकार जैसी दीर्घकालिक बीमारियों का भी खतरा रहता है । एक अध्ययन के अनुसार, लगभग 13% जनजातीय वयस्कों को मधुमेह और 25% को उच्च रक्तचाप है। उपर्युक्त बीमारियाँ तम्बाकू सेवन, शराब सेवन और मादक द्रव्यों के सेवन जैसे कारकों के कारण हो सकती हैं। 15-54 वर्ष की आयु के 72% से अधिक जनजातीय पुरुष तम्बाकू का सेवन करते हैं और 50% से अधिक शराब का सेवन करते हैं, जबकि गैर-आदिवासी पुरुषों में यह प्रतिशत क्रमशः 56% और 30% है। स्वास्थ्य स्स्तर के नजरिए से यदि इसके कारणों पर ध्यान दिया जाए तो इसमें कई बिन्दु शामिल होते हैं जैसे - जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं और बुनियादी ढांचों का अपर्याप्त होना, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता सुविधाओं तक अपर्याप्त पहुंच होना जनजातीय क्षेत्रों में डॉक्टरों, नर्सों और स्वास्थ्य पेशेवरों की उपस्थिति सीमित होना, दूरदराज के क्षेत्रों में कुशल स्वास्थ्य कर्मियों को आकर्षित करने और उन्हें बनाये रखने में कठिनाई होना, स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों के वितरण में असंतुलन और शहरी क्षेत्रों में अधिकाधिक संख्या होना, दूरस्थ स्थान और कठिन भूभाग में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में अनेक बाधाएं होना, उचित सड़कों, परिवहन सुविधाओं और संचार नेटवर्क का अभाव होना, आपात स्थिति के दौरान जनजातीय समुदायों तक पहुंचने और समय पर चिकित्सा सहायता प्रदान करने में चुनौतियों का सामना करना, जनजातीय समुदायों में सीमित वित्तीय संसाधन और निम्न आय स्तर का होना, चिकित्सा उपचार, दवाइयां और निदान सहित स्वास्थ्य देखभाल व्यय वहन करने में अनेक असमर्थताएं दिखाई देती हैं तथा उपलब्ध स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं और बीमा विकल्पों के बारे में जागरूकता का भी अभाव दिखाई देता है । स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं और जनजातीय समुदायों के बीच भाषा संबंधी बाधाएं भी एक कारण है जिससे गलत संचार और अपर्याप्त देखभाल होती है। सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, जो जनजातीय रीति-रिवाजों और परंपराओं का सम्मान करते हुए जीवन को सुगम बनाने में कार्यरत हो । मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, टीकाकरण और निवारक देखभाल जैसी आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं की अपर्याप्त उपलब्धता, विशेष देखभाल, नैदानिक सुविधाओं और आपातकालीन चिकित्सा सेवाओं तक अपर्याप्त पहुंच है , जनजातीय समुदायों में स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों, निवारक उपायों और स्वास्थ्य देखभाल अधिकारों के बारे में जागरूकता सीमित है। जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल के लिए धन का सीमित आवंटन है । स्वास्थ्य देखभाल के बुनियादी ढांचे, उपकरण और प्रौद्योगिकी में अपर्याप्त निवेश है। जनजातीय स्वास्थ्य चुनौतियों से निपटने और लक्षित हस्तक्षेपों को लागू करने के लिए समर्पित वित्त पोषण का अभाव दिखाई देता है । इन सभी समस्याओं का निवारण अथक प्रयास से किया जा सकता है यदि हम समाधानों को ईमानदारी से अमल करते जाएं तो। जनजातीय आबादी के बीच स्वास्थ्य-प्राप्ति व्यवहार और स्वास्थ्य देखभाल वितरण में असमानता को संबोधित

करते हुए पारंपरिक चिकित्सकों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को मान्यता दिया जाना भी एक महत्वपूर्ण कदम होगा। स्वास्थ्य साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से जनजातीय समुदायों को सशक्त बनाया जाए ताकि वे अपने स्वास्थ्य के बारे में निर्णय लेने में सक्षम हो सकें। जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा पेशेवरों को आकर्षित करने के लिए लक्षित भर्ती और प्रतिधारण रणनीतियों को लागू करना तथा कनेक्टिविटी बढ़ाने के लिए सड़क नेटवर्क, परिवहन सुविधाओं और संचार नेटवर्क के विकास में निवेश करना भी एक उचित समाधान हो सकता है। इन सभी तथ्यों को यदि हम साहित्य के नजरिए से देखें तो कहानी, कविता, उपन्यास अनेकों विधाएं हैं जिसमें इनका बखूबी छितरें किया गया है। यहाँ हम कुछ बिंदुओं पर नजर डालते हुए उनकी चर्चा करेंगे।

कहानी मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानवीय यात्रा कहानियों का एक असीम भंडार है। हम हंसे तो एक कहानी बनी, हम रोएं तो एक कहानी बनी, हम मिले, बिछड़े, साथ जिए तो एक कहानी बनी, हर पड़ाव पर एक कहानी अंकुरित होती रही है। ऐसे में यदि किसी के जीवन को समझना हो तो उससे जुड़ी कहानियों का अध्ययन उचित मार्ग दिखाई पड़ता है। इस विचार से आदिवासी जीवन को समझने के लिए यहां हम उन कहानियों का सहारा लेंगे जो उनके जीवन दर्शन को आधार बनाकर लिखी गई है। जैसे वाल्टर भेंगरा तरुण की कहानी **परिधि के घेरे में** जो कि विकल्प कहानी संग्रह में संग्रहित है। अश्विनी कुमार पंकज की कहानी **जिस दिन बुध मुस्कुराएं** जो कि कहानी संग्रह पेनाल्टी कॉर्नर में संग्रहित है तथा कहानी परिधि के घेरे में चाय बगानों में काम कर रहें मजदूरों के विषय में बात करते हुए लिखते हैं कि **"लाइन में वह जल्दी ही लग गयी थी उस दिन। एक ओर अपनी- अपनी थैलियां लेकर महिलाएं पंक्ति में अपनी पारी का इंतजार कर रही थीं, तो दूसरी ओर आस पास के चाय बगानों से लेकर छोटी बड़ी गाड़ियां चाय पत्ती भरकर धीरे धीरे बढ़ रही थीं। बगल में चाय बनाने की फैक्ट्री घर्र घर्र कर चीखती हुई शोर मचा रही थी। पहले जुलियानी चाय पत्ती जमा करने के बाद दोपहर के बाद फैक्ट्री के अंदर भी काम करने जाती थी। लेकिन उसके निरंतर शोर में वह अधिक दिनों तक काम नहीं कर सकी। उसे लगने लगा था कि उसे सुनाई कम पड़ने लगा था। यहां कुछ और दिन तक लगातार करती रही, तो बहरी हो जायेगी।**"1

कहानी जिस दिन बुद्ध मुस्कुराएं में अश्विनी कुमार पंकज लिखते हैं कि "**लगभग 1964 - 65 की। कंपनी भी उन्हीं दिनों शुरू हुई थी। तब उसकी उम्र मुश्किल से सात आठ साल की रही होगी। कितना कुछ उपजता था उन दिनों उसके खेतों में.....खाना और जीना दूभर हो गया है गांववालों का। ऊपर से पूरे इलाके में न जाने कैसी कैसी बीमारियां होने लगी हैं।**"2

पात्र दामा के माध्यम से आगे लिखते हैं कि "**दामा खाने लगा। खाते खाते उसके दिमाग में गांव के सारे बच्चों की सूरत घूमने लगी। सब के सब लूले, लंगड़े, शारीरिक और मानसिक रूप से अक्षम। कोई बोल सकता है, तो कोई सिर्फ सुन सकता है। कई तो ऐसे हैं कि न बोल सकते हैं, न सुन सकते हैं। बस टुकुर टुकुर देख सकते हैं। बीस सालों में हर घर में या तो मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ है...या फिर किसी न किसी रूप में विकलांग।"3**

संदर्भ ग्रंथ:-

1:- विकल्प, वाल्टर भेंगरा तरुण, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली पेज़ नं. 55।

2:- पेनॉल्टी कार्नर, अश्विनी कुमार पंकज, नोशन प्रेस इंडिया सिंगापुर मलेशिया, पेज नं.77।

3:- पेनॉल्टी कार्नर, अश्विनी कुमार पंकज, नोशन प्रेस इंडिया सिंगापुर मलेशिया, पेज नं.81।

सहायक ग्रंथ:-

1:- Ministry of Tribal Affairs, 2022 रिपोर्ट।

2:- Down to Earth Magazine, 2022।
3:- NHRC रिपोर्ट, 2023।
4:- Ministry of Health and Family Welfare।
5:- https://youtu.be/-xsc_m10YX8?si=m-2x1DE6_3pVU9nE
6:- https://youtu.be/oaQhMWN-yIQ?si=FOQQrkzzL0U7hw6n

7379517046
20hhph16@uohyd.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 149-153
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ऐतिहासिक मिंजर मेले का सांस्कृतिक परिदृश्य

आमना देवी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
GGDSD महाविद्यालय राजपुर पालमपुर जिला काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश

भारत के प्रहरी हिमालय पर्वत के हिमाच्छादित शैल पर्वत शिखरों एवं उपजाऊ तराईयों में बसा हिमाचल-प्रदेश अपनी समृद्ध संस्कृति व लोक विरासत के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। इस पावन देव-भूमि में देव संस्कृति और लोक संस्कृति का अनूठा संगम परिलक्षित होता है। प्रदेश के प्रत्येक जिलों में किसी विशेष अवसर पर बहुत से मेले, जातरें और जागरण पूर्व परम्परा के अनुसार निर्धारित अनुष्ठानों, तिथियों व मासों में प्रतिवर्ष बड़े हर्षोल्लास सहित श्रद्धा पूर्वक मनाए जाते हैं। जिनमें स्थानीय लोकमानस अपने पारम्परिक वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर मेलों, जात्रों आदि में सहभागिता करते हैं।

रजतधवल धौलाधार की पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा और शामधार पहाड़ी की अधित्यका में रावी नदी के दायें तट पर बसा हिमाचल-प्रदेश का पौराणिक जिला-चम्बा अपने पहाड़ी परिवेश, प्राकृतिक सुषमा-सौन्दर्य तथा पुरा-इतिहास के कारण सर्वत्र सुविख्यात है। चम्बा जिले के प्रत्येक लोकोत्सव का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप से इसकी पौराणिक रियासतकालीन राजधानी ब्रह्मपुर(भरमौर) और वहाँ पर निवासरत गद्दी समुदाय से अवश्य रहा है। रहे भी क्यों नहीं, ब्रह्मपुर अर्थात भरमौर ही चम्बा जिला की आदि राजधानी रही है। जिनकी स्थापना ब्रह्मपुर के तत्कालीन स्थानीय 'गद्दी' कबीलों ने राजा मारू के नेतृत्त्व में 550 ई. में की थी। बहुप्रचलित मान्यता के अनुसार ब्रह्मपुर रियासत में राजा साहिल वर्मन के शासनकाल में सिद्धों तथा नाथों ने चौरासी प्रांगण में डेरा डाला था। जिनकी अनुकम्पा से ब्रह्मपुर के तत्कालीन राजा साहिल वर्मन को दस पुत्र व एक पुत्री का वरदान मिला। कालान्तर में साहिल वर्मन ने इसी पुत्री 'चंपावती' के नाम 'चम्बा' नगर की स्थापना की तथा 920-940 ई. अपनी राजधानी ब्रह्मपुर से चम्बा स्थानांतरित की। किन्तु चम्बा जाने के बाद भी साहिल वर्मन ने भरमौर के गद्दियों के साथ अपना सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियान्वयन बनाये रखा।

हिमाचल-प्रदेश को भारतवर्ष का देव-भूमि के साथ-साथ सांस्कृतिक प्रदेश भी कहा जाए तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होंगी। यदि बात हिमाचल-प्रदेश के चम्बा जनपद कि करें तो यहाँ का मिंजर मेला सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध है और अब इसे अंतर्राष्ट्रीय मेले का भी दर्जा दिया जा चुका है। मिंजर मेला श्रावण मास के दूसरे रविवार से आरम्भ होकर एक सप्ताह तक चलता है। वास्तव में यह मेला चम्बा शहर के संस्थापक राजा साहिल वर्मन के

कार्यकाल में प्रारम्भ हुआ था। हरिश्चन्द्र शर्मा 'मिंजर' शब्द के अर्थ में लिखते हैं कि – "धान, मक्की, जौ, कोदरा, चणौ, सिह्युल आदि खाद्य तथा विभिन्न पादप फलों के तैयार होने पर उन के ऊपर उगने वाली चोटी (शीर्ष भाग) को स्थानीय बोली में 'मिंजर' कहते हैं जो मंजरी का तद्भव रूप है।"[1]

चम्बा जनपद का सांस्कृतिक- ऐतिहासिक मेला 'मिंजर' किसने और कब प्रारम्भ किया इसके सम्बन्ध में विद्वानों, इतिहासकारों और स्थानीय जनमानस में प्रचलित अनेक मान्यताएं हैं। परन्तु इतना अवश्य है कि यह मेला चम्बा शहर की स्थापना और राजा साहिल वर्मन के शासनकाल में प्रारम्भ हुआ था। "बहुप्रचलित मान्यता के अनुसार तत्कालीन ब्रह्मपुर (भरमौर) जनपद के राजा शैल वर्मा (920-940) ने जब चम्बा को अपनी नई राजधानी बनाया और यहाँ राज-प्रसादों, आवास-गृहों और मन्दिरों का निर्माण किया तो भरमौर जनपद के लोगों के साथ चम्बा राज्य-क्षेत्र के लोगों ने मिलकर बड़े राजसी ठाट-बाट से एक शोभा यात्रा निकाली। यह शासकीय शोभा यात्रा नगर से चलकर रावी नदी के तट पर पहुंची और वहाँ वरूण-देव की पूजा-अर्चना करते हुए लोगों ने सुगन्धित पुष्पों के अभाव में धान अथवा मक्की कि मंजरियों का इरावती नदी की जलधारा में अर्पण कर राजा का अभिषेक किया। इस प्रकार इस लोकोत्सव का श्रीगणेश हुआ।"[2] वर्तमान में भी मिंजर मेले के सुअवसर पर इसी लोकपरम्परा का प्रतिरूप परिलक्षित होता है।

इसी से सम्बन्धित एक अन्य तर्क दिया जाता है कि साहिल वर्मन एक महान पराक्रमी और वीर योद्धा थे। इन्होंने अपने शासनकाल में ब्रह्मपुर की गद्दी सेना के साथ मिलकर अपने साम्राज्य का विस्तार वर्तमान चम्बा तथा धौलाधार की तलहटी तक कर दिया। अतः अपने साम्राज्य को सही तरीके से चलाने हेतु अपनी राजधानी चम्बा ले आए क्योंकि यहीं से समूचे गणराज्य की देख-रेख हो सकती थी। इसी के निमित्त राजा साहिल वर्मन ने तुरुकक्ष नामक शक्तिशाली कबीलों को पराजित किया था। "उसकी बापसी पर प्रजा के लोगों ने उन्हें धान व मक्की कि मालाएँ पहनाकर अभिवादन किया था जो कि समृद्धि और खुशहाली का प्रतीक है और इसके बदले में राजा ने अपनी प्रजा को जीत कि खुशी में सोने की अशर्फियाँ वितरित की थी। मेले की घोषणा मिंजर के वितरण से की जाती है जो पुरुषों और महिलाओं के पहने पोशाक के कुछ हिस्सों पर रेशम की लटकन रूप में समान रूप से पहनी जाती है। यह लटकन (धान और मक्का) की कटाई का प्रतीक है।"[3]

जबकि एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार यह मेला विजयोत्सव के रूप में उस समय आयोजित किया गया जब चम्बा नरेश प्रताप सिंह वर्मा (1559-1585) अपने प्रतिद्वंदी नगरकोट (कांगड़ा) के राजा चन्द्रपाल को हराकर बापिस चम्बा पहुँचे थे तभी से इस मेले का शुभारम्भ माना जाता है। किन्तु विडम्बना यह है कि चम्बा जिले के इतिहास का बहुत सा भाग कलमबद्ध नहीं किया गया है इसलिए लोग अपनी-अपनी मान्यताओं के आधार इसकी ऐतिहासिक कड़ियों को क्रमबद्ध करने का प्रयास करते हैं। लेकिन यह धारणा निश्चित है कि 'मिंजर' अर्थात मंजरी महोत्सव का शुभारम्भ साहिल वर्मन के शासनकाल में हुआ था।

चम्बा नगर में मनाये जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय मेले 'मिंजर' अथवा मंजरी महोत्सव सर्वत्र सुप्रसिद्ध है जो साहिल वर्मन के राज्याभिषेक से प्रारम्भ हुआ जो प्रतिवर्ष सावन के दूसरे रविवार से तीसरे रविवार तक मनाया जाता है। सावन के इन महीने तक धान, मक्की, जौ, कोदरा, सियुह्ल आदि खाद्यानों तथा विभिन्न पादक फलों की मंजरियाँ फूटने, फलने लगती हैं। चारों ओर सावन की सुहावनी रिमझिम फुहारें, हरी- भरी लहराती खेती देखकर किसानों-बागवानों को मन सहर्ष झूम उठता है। तभी सावन के दूसरे रविवार को चम्बा तथा विशेष रूप से गद्दी समुदाय के लोग

धान अथवा मक्की व जौ-गेहूँ की शीर्ष चोटी रूपाकार वाली, रंग-बिरंगे धागों अथवा सुनहरे गोटे से तैयार की गयी मिंजरों को लोग अपने-अपने घरों, पूजा-कक्षों में प्रतिष्ठित देव-देवताओं की मूर्तियों पर चढ़ाकर मानव जाति के सुख-समृद्धि की परिकल्पना कर श्रद्धापूर्वक रखकर भोग-नैवेद्य चढ़ाकर पूजा करते हैं। परिवार के समस्त सदस्यगण मंजरी के प्रतीक इन मिंजरों को अपने-अपने कुर्तों, कोट, चोलू तथा नुआचडी पर बांधते हैं। इस अवसर पर घरों में अनेक पकवान यथा- बबरू अथवा थोपलू, दाल-बड़े, पूरियाँ, मीठे-खट्टे मुणे, आदि बनाकर अपने सगे-सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों तथा विवाहित बेटियों को भोज में आमंत्रित कर उन्हें आदरपूर्वक खिलाना शुभकार्य समझा जाता है।

मिंजर- मेला चाहे हिमाचल-प्रदेश के पुरातन मेलों में से एक है। यह बात एक सत्य चिरन्तन सत्य है कि 'मिंजर' मेला चम्बा के जनजीवन एवं मानसिकता के साथ पहाड़ी जनजीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। समय के साथ-साथ मिंजर मेला के आयोजन में कुछ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन अवश्य हुए हैं परन्तु उसका मौलिक स्वरूप कतिपय परिवर्तनों के साथ यथावत बना हुआ है। स्वतंत्रता पूर्व राजाओं के शासनकाकाल में मिंजर-मेला को देखने और साहिल वर्मन द्वारा रियासतकालीन राजधानी के परिवर्तन की पौराणिक घटना को तरोताजा करने के लिए भरमौर, पांगी, चुराह, भट्टियात और चम्बा के समस्त परगनों के लोग एकत्रित होकर पारम्परिक वस्त्राभूषण में सुसज्जित होकर चम्बा चौगन में डेरा डालते है।

वर्तमान में भी मेले का मुख्य आकर्षक शाही जुलुस है जो मिंजर के अंतिम दिन सावन के तीसरे रविवार को अखण्ड चण्डी राजमहल से निकलता है और बाजार से गुजरता हुआ रावी नदी के तट पर पहुँचता है जहाँ पर सभी लोग अपनी-अपनी मिंजरों को उतार कर उसे सेब, नाशपाती या नरियल में बाँध कर नदी में प्रवाहित कर देते हैं। पुरातन-काल में 'भैंसे' की बलि देने की प्रथा थी, किन्तु वर्तमान में नारियल चढ़ाकर यह परम्परा पूर्ण की जाती है। इस प्रकार मिंजर अर्पण के उपरांत नदी तट के ऊपर मंजरी वाटिका में कूजडी-मल्हार के लोकगीतों को गाया जाता है। जिनके कुछ बोल इस प्रकार से हैं -

"उड़ ! उड़ ! कुंजड़िये !
बरखा दे ध्याड़े ओ।
मेरे रामा जिन्देआ दे मेरे हो।
वे मना! याणी मेरी जान।।
उड़ ! उड़ ! कुंजड़िये !"[4]

मिंजर की अंतिम संध्या के आँचल में छिपे संयोग और वियोग में डूबते-उबरते मन की स्थितियों को कौन जान सकता है। ऐसी परिस्थितियाँ केवल वहीं लोग जानते हैं जिन्होंने यह भोगा हुआ यथार्थ अनुभव अपने वास्तविक जीवन में अनुभव किया हो। पारम्परिक लोकगायकों द्वारा अनुभूत यह स्थितियाँ इस प्रकार व्यक्त हुई हैं-

"सजण नूं बिसर गईयाँ, मेरी जान,
सजण नूं बिसर गईयाँ, मेरी जान।
तूं ता कस्स मुलखा री कुंजडी?
परदेस पेई मेरी जान।
सजण नूं बिसर गईयाँ, मेरी जान।"[5]

राग- मल्हार

राग मल्हार मिंजर-मेला के अवसर पर गाया जाने वाला लोकगीत है। यह लोकगीत नारी के विरह वेदना के द्योतक हैं। बरसात के मेघदूत जब-जब पहाड़ियों पर संदेश देते धुमड़ते उड़ते हैं तो राग मल्हार की सुर माधुरी छिझोंटी व फाटेड़ी गीति शैली सहसा सुनाई देती है। अतः राग-मल्हार ने उस नारी की विरह वेदना का समावेश है जिसका प्रियतम या पति सुदूर देश में नौकरी, युद्ध या पुहाली करने गया है। ऐसी स्थिति में जब 'कलेल' (गोधूली) सांझ वेला का समय आता है तो उस समय आनायास ही उसके ह्रदय से बरसाती फुहार से भीगता अश्रुपूर्ण एक असह वेदना स्वतः ही प्रस्फुटित होती है जो समूचे माहौल को संवेदित कर जाता है।

प्रस्तुत लोकगीत में नायिका अपने 'कंत' (पति) को सम्बोधित करते हुए कहती है- हे मेरे प्रिय! घर आओ। मैं अवयस्क अवला नारी तुम्हारे अभाव में कैसे अपना मन लगाऊं ? मेरे प्रिय घर आओ। मेरा वस्त्र कितना रंग-भरा है। परन्तु तुम तो मेरे प्रिय परदेस में हो। मेरे चाहने वाले प्रेमी घर आओ, तूने मीठी-मीठी बातें करके मेरा भोला-भाला चुराया है, मुझे चाहने वाले प्रेमी घर आओ। तुम नहीं आओगे, तभी पत्र लिखकर-लिखकर भेजते हो, मेरे लोभी तुरंत घर आओ! मैं अवयस्क, नवयौवना तुम्हारे बिना कैसे रहूँ। अतः शीघ्र घर आओ। इस भाव का व्यक्त करता एक गीतांश प्रस्तुत है-

"मेरेया लोभिया ! हो, आ घरै हो
मैं निक्की याणी हो,
मैं निक्की याणी हो।
जींऊँ कियाँ लाणा हो कंद्धा ?
मेरेया लोभिया हो ! हो, आ घरे हो
सेज रंगीली, न सेज रंगीली,
मेरे पिया परदेस, हो कंद्धा।"[6]

राग-मल्हार से सम्बन्धित एक और गीत परम्परित है जिसमें एक नवयौवना का प्रियतम सुदूर परदेस गया है। नवयौवना नायिका अपने प्रियतम के घर आने के कारण न तो नहाई-धोयी है और न ही कोई श्रृंगार तथा न ही कभी सेज पर सोई है। अपने प्रियतम के अभाव में नायिका ने खाना-पीना छोड़ दिया है तथा अपने प्रियतम को उससे दूर जाने से उसे खूब कोसती है। विवेच्य गीत में विरह में संतप्त नारी की मनोदशा को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। यथा-

"सैईयो ! मेरा बदरा गया परदेस।
बदरा गया परदेस,
सैईयो ! मेरा बदरा गया परदेस॥
न मैं नहाती रै, न मैं धोती रै
न मैं किया सिंगार,
सैयां बदरा गया परदेस।"[7]

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिमाचल प्रदेश के 'शिव-नगरी' कहे जाने वाला जिला चम्बा अनेक त्योहारों, जातराओं (यात्राओं), लोकोत्सवों एवं मेलों की पावन भूमि है। इसी के निमित्त चम्बा जनपद का लोकप्रिय

मेला 'मिंजर' पूरे देश एवं प्रदेश में प्रसिद्ध है। वास्तव में यह मेला राजा साहिल वर्मन के शासनकाल में प्रारम्भ हुआ था। लोकमान्यताओं के अनुसार 'ब्रह्मपुर (भरमौर) रियासत की जनता ने चम्बा जनपद में राजधानी परिवर्तन के सुअवसर पर उनके प्रति आत्मीय भेंट करने के लिए मक्की की मंजरी (मिंजर) भेंट पर एक आयोजन किया था। तभी से इस मेला का शुभारंभ माना जाता है। इसके अन्य ऐतिहासिक परिदृश्य के अनुसार मिंजर मेला काँगड़ा के राजा पर विजय के उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला लोकोत्सव है। ऐसा माना जाता है अपने विजयी राजा की वापसी पर, चम्बा वासियों ने अपने विजयी राजा के अभिवादन हेतु धान और मक्की की मालाओं से अभिवादन किया, जोकि समृद्धि और उल्लास का प्रतीक है। इस मेले की घोषणा मिंजर के वितरण द्वारा की जाती है, जो पुरूषों और महिलाओं द्वारा समान रूप से पौशाक के कुछ हिस्से पर पहना जाने वाला एक रेशम लटकन है। यह तसली धान और मक्का के अंकुर का प्रतीक है जो वर्ष के इस समय के आसपास अपनी उपस्थिति बताते हैं। इस मेले के उपलक्ष्य पर सभी लोक एकत्रित होकर रावी नदी में अपनी मिंजर चढ़ाते हैं। इस सुअवसर पर स्थानीय कलाकारों द्वारा पारम्परिक कुंजड़ी-मल्हार गाया जाता है। वर्तमान में प्रदेश एवं देश के सुप्रसिद्ध गायकों को बुलाकर रात्रि में सांस्कृतिक संध्या आयोजित की जाती है। लोग दूर-दूर से इस मेले को देखने के लिए आते हैं।

संदर्भ सूची :

1. सुदर्शन वशिष्ठ, अशोक हंस, सांस्कृतिक नगरी चम्बा, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, पृ. 43
2. वहीं, पृ. 44
3. अनहद लोक (अर्धवार्षिक शोध पत्रिका), संपादक डॉ. मधु रानी शुक्ला, व्यंजना आर्ट एंड कल्चर सोसायटी, प्रयागराज, वर्ष-7, अंक-13, पृ. 98
4. डॉ. गौत्तम शर्मा व्यथित, हिमाचल की जनजाति गद्दी देव परम्परा और संस्कृति, साहित्य रत्न, दिल्ली संस्करण 2012, पृ. 124
5. डॉ. राजकुमार उपाध्याय मणि, भरत सिंह, गद्दी जनजाति के लोकगीत, शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृ. 224
6. डॉ. राजकुमार उपाध्याय मणि, भरत सिंह, गद्दी जनजाति के लोकगीत, शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृ. 222
7. वहीं, पृ. 224

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 154-159
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Interrelation of Religion and Morality: A Gandhian Perspective

Utpal Gogoi
Assistant Professor
Krishna Kanta Handiqui State Open University, Assam

Abstract
This article explores the intricate relationship between religion and morality through the lens of Mahatma Gandhi's philosophy. While religion is often understood as a spiritual system grounded in belief and worship, morality deals with principles of right and wrong that guide human behavior. Gandhi regarded these two domains as inseparable and complementary. He believed that true religion must embody moral values such as truth (Satya), nonviolence (Ahimsa), self-discipline, and service to humanity. According to Gandhi, religion was not merely about rituals and external practices but about an internal commitment to moral ideals. He emphasized that religion without morality is meaningless, and morality without religious grounding lacks spiritual depth. His ethical framework did not separate personal belief from social action; rather, it united both in a pursuit of justice and truth. The article discusses Gandhi's integration of religion into his political philosophy—particularly through Satyagraha, or truth-force—along with his belief in religious pluralism and the universality of moral values like compassion, justice, and love. Gandhi's respect for all religions and his conviction that each carried valuable moral teachings highlight his commitment to unity through shared ethical principles. The article also considers the contemporary relevance of Gandhi's approach: his emphasis on truth in the age of misinformation, nonviolence in times of conflict, simplicity in response to materialism, and moral unity in multicultural societies. In conclusion, Gandhi's integrated view of religion and morality offers timeless wisdom and remains a guiding force for personal transformation and collective ethical action in the modern world.

Key word -Religion and Morality,Mahatma Gandhi,Satya and Ahimsa

Objectives

This article aims to:

- Explain the meaning of morality and religion, including their definitions, nature, and foundational significance in ethical and spiritual life.
- Examine the relationship between morality and religion from Gandhi's perspective, focusing on how he integrated spiritual principles such as truth and nonviolence into moral and political life.

- Evaluate the contemporary relevance of Gandhi's philosophy of religion and morality, especially in addressing modern challenges such as misinformation, violence, materialism, and interfaith conflict.

Introduction:

The interconnection between religion and morality is a deeply rooted issue in philosophical and theological discussions. Both concepts play a central role in shaping the values and ethical frameworks of individuals and societies. While religion provides spiritual guidance, morality is concerned with the principles of right and wrong, good and bad, that govern human behavior. The relationship between these two has long been debated by philosophers, scholars, and religious leaders. One of the most influential figures to explore this relationship in depth was **Mahatma Gandhi**, whose views on religion and morality have shaped not only his personal philosophy but also modern ethical thought.

Gandhi's life and philosophy were dedicated to the idea of integrating religious teachings with moral actions, where both elements were seen as inseparable in the pursuit of truth and justice. This article explores Gandhi's perspective on the relationship between religion and morality, analyzing how he combined both concepts into a cohesive ethical framework that guided his personal and political life.

What is Religion and Morality?

Religion can be broadly defined as a system of beliefs, practices, and values that are centered on the worship of a higher power or divine principle. It often provides a moral code and spiritual framework that guides adherents in their daily lives, directing their actions, thoughts, and beliefs toward a higher purpose or ultimate truth.

According to ,**William James**- "Religion... shall mean for us the feelings, acts, and experiences of individual men in their solitude, so far as they apprehend themselves to stand in relation to whatever they may consider the divine"(*The Varieties of Religious Experience*). According to , **Karl Marx**- "Religion is the sigh of the oppressed creature, the heart of a heartless world... It is the opium of the people." (*Critique of Hegel's Philosophy of Right)*

Morality, on the other hand, concerns the principles of right and wrong that govern human behavior, often rooted in societal norms, ethical reasoning, and cultural traditions**.**

According to **,Immanuel Kant**, "Morality is not the doctrine of how we may make ourselves happy, but how we may make ourselves worthy of happiness." (*Groundwork for the Metaphysics of Morals).*Kant believed that morality is based on **reason** and the **categorical imperative**, meaning one must act only according to principles that could be universal laws. According to **David Hume**,"Morals excite passions, and produce or prevent actions. Reason of itself is utterly impotent in this particular."(*A Treatise of Human Nature).*

The relationship between religion and morality has been explored in multiple ways across various religious and philosophical traditions. For some, religion serves as the foundation for morality—providing the divine or sacred authority behind moral codes and rules. For others, morality is considered a separate human construct that can exist independently of religious belief.

However, Gandhi's view was that religion and morality are inherently intertwined. For him, religion was not just about rituals and external practices but about an internal commitment to truth, nonviolence, and justice, principles that form the core of any moral life. He saw morality not merely as a societal construct but as an essential element of human existence, deeply tied to the soul's alignment with spiritual ideals.

Relation Between Religion and Morality :

Gandhi's views on religion and morality were deeply intertwined, and his understanding of these concepts was shaped by his spiritual practices and his quest for truth. Here are the key aspects of how Gandhi related religion to morality:

1. **God and Truth**: Gandhi famously said, "God is Truth." For him, truth was the highest moral and spiritual goal, and it was not just a principle but an embodiment of the divine. Seeking truth was, therefore, synonymous with aligning oneself with God. This belief in absolute truth as divine influenced his moral philosophy, particularly in matters of justice, equality, and nonviolence. Truth was seen as the foundation of both religious and moral life, and it was a guiding principle in his personal and public actions.
2. **Ahimsa (Nonviolence)**: Ahimsa, or nonviolence, was another central principle in Gandhi's moral and religious life. He viewed nonviolence as the highest moral duty, transcending mere physical harm to encompass thoughts, speech, and intentions. Nonviolence, for Gandhi, was not only a religious doctrine but also a practical moral guideline for living harmoniously with others. It formed the backbone of his political philosophy, especially during the Indian independence movement, where he used nonviolent resistance as a strategy for achieving social and political justice.
3. **Self-Discipline and Inner Transformation**: Gandhi believed that true morality started with self-discipline. He viewed religious practices such as prayer, fasting, and meditation as essential tools for cultivating inner peace and moral clarity. These spiritual practices allowed him to develop self-control, which was crucial in making ethical decisions and living a life of integrity. He emphasized that moral actions must arise from an inner transformation, one that aligns the individual's behavior with spiritual values.
4. **Service to Humanity**: For Gandhi, morality was not just about personal righteousness but also about serving others, especially those who were marginalized or oppressed. He saw service to humanity as a religious and moral duty, reflecting the deep interconnectedness of all human beings. His opposition to the caste system and his fight against untouchability were rooted in his belief in the moral imperative to treat all individuals with dignity and equality, regardless of their social status.
5. **The Integration of Religion and Politics**: Unlike many modern thinkers who separate religion from politics, Gandhi did not see politics as a secular domain. For him, politics was a means to achieve moral and spiritual ends. His principle of Satyagraha (truth-force), which was the foundation of his nonviolent resistance, was a direct extension of his religious and moral beliefs. Gandhi believed that political actions must be guided by ethical principles, and he sought to create a society where politics and religion worked together to promote justice, peace, and equality.

Mahatma Gandhi's approach to the relationship between religion and morality provides a comprehensive view of how these two concepts are intrinsically linked, not only in the theoretical or philosophical sense but also in their practical applications in everyday life. Gandhi's own life and work offer deep insights into how religion can provide the spiritual foundation for moral action, and how moral behavior can, in turn, contribute to the realization of spiritual goals. His philosophy of *Satyagraha* (truth force), the centrality of *Ahimsa* (nonviolence), and his unwavering commitment to truth as a reflection of divinity are key pillars that illustrate the profound connection between these two spheres.

Religion as the Foundation for Morality

Gandhi firmly believed that religion, particularly the moral teachings embedded in it, should be the foundation of all moral principles. He viewed religion not just as a set of beliefs or rituals but as the guiding force that dictates how humans ought to behave. For him, religion provided the fundamental purpose and meaning of life, and it was only through religious practice that one could understand the ultimate moral imperatives. Gandhi often stated that true religion was not separate from life but was an integral part of every action an individual undertook.

While he was a devout Hindu, Gandhi believed that the ethical principles found in various religious traditions were universal. According to him, all religions taught the same basic values of truth, love, and nonviolence. These values, he argued, were the heart of morality. Religion, in Gandhi's view, was not confined to dogmatic rules or rituals but was an ever-evolving relationship between the individual and the divine, which shaped how one treated others. Therefore, morality could not be practiced authentically without religious grounding, because the ethical life was not simply a matter of obeying rules but of aligning oneself with divine will, which was synonymous with truth and justice.

Morality as the Practical Application of Religious Principles

While religion provided the theoretical or spiritual framework, Gandhi believed that morality was its practical application. He argued that religious beliefs must manifest in the way individuals lived their lives and interacted with others. The moral principles derived from religious teachings must be actively embodied in one's daily conduct. For Gandhi, religion without morality was meaningless, and morality without religion lacked depth and purpose. He believed that religious values such as compassion, kindness, and selflessness could only be realized through the moral actions individuals took toward others, and these actions would contribute to both their personal growth and the welfare of society.

A key example of this is Gandhi's concept of *Ahimsa* or nonviolence, which he viewed as not merely an absence of physical violence but as an active commitment to love and understanding, even toward one's enemies. Gandhi's interpretation of *Ahimsa* was deeply rooted in his religious beliefs, particularly in Hinduism's teachings of compassion and respect for all living beings. However, *Ahimsa* went beyond mere religious ritual. It was a moral imperative, a universal code of conduct that he applied in his personal life, his leadership of the Indian independence movement, and his advocacy for social justice, especially in fighting untouchability and caste discrimination.

Gandhi's practice of nonviolence was not passive; it was a proactive, moral force designed to bring about transformation both in the individual and in society. His use of nonviolent resistance during India's struggle for independence was deeply tied to his religious beliefs and his moral philosophy. For him, nonviolence was an expression of love for humanity and the divinity within each person. By practicing nonviolence, individuals could align themselves with divine will and contribute to a moral society.

Religion and Morality in Gandhi's Public and Political Life

One of the most striking aspects of Gandhi's view of religion and morality was his rejection of the distinction often made between the secular and the sacred. While many modern thinkers separate religion from politics and moral conduct from religious belief, Gandhi did not. For him, politics and religion were not separate spheres but interconnected domains where moral action was essential. He believed that political life, especially in a society striving for justice, should be guided by religious and moral principles. His leadership of the Indian independence movement was deeply influenced by his belief in the moral and spiritual dimensions of life.

Gandhi's principle of *Satyagraha* — a method of nonviolent resistance rooted in truth and nonviolence — was a direct expression of this integration of religion and morality in the public and political spheres. By applying religious principles to politics, Gandhi sought to create a moral society where justice, equality, and truth were paramount. He believed that political action was not just a means to achieve power or social change but a vehicle for spiritual and moral growth.

Furthermore, Gandhi's rejection of colonialism was not only a political struggle but a moral and religious crusade. He saw British colonial rule as a violation of both human dignity and divine law. His efforts to promote self-reliance through the promotion of *Swadeshi* (self-reliance) were an expression of his commitment to economic and social justice, both of which he saw as religious imperatives.

Religious Pluralism and the Moral Unity of All Religions

Gandhi's understanding of the relationship between religion and morality was also informed by his belief in religious pluralism. While he was a devout Hindu, Gandhi was deeply respectful of all religious traditions, believing that each religion carried valuable moral teachings. He saw all religions as equally valid paths to the truth. According to him, the moral values inherent in each religious tradition—truth, nonviolence, love, and compassion—were universal and not exclusive to any one faith.

His interfaith dialogue, his respect for all religions, and his emphasis on the universality of moral principles were crucial to his understanding of the relationship between religion and morality. Gandhi did not see religious differences as barriers but as opportunities for moral and spiritual exchange. He called for a society where people of different faiths could live together harmoniously, bound by a common commitment to universal ethical values. This moral unity, grounded in religious diversity, was an ideal that Gandhi worked toward throughout his life.

The Relevance of Gandhi's Philosophy of Religion and Morality Today

Gandhi's philosophy, which beautifully integrates religion and morality, offers profound lessons not only for his contemporaries but also for us today. In an increasingly secular world, where the boundaries between religious and moral principles have become more fluid, Gandhi's view challenges the notion that one can be morally upright without a spiritual foundation. He argued that the separation between religion and morality leads to a fragmented approach to life. For Gandhi, the two were inseparable; to neglect one was to neglect the other.

Gandhi's assertion that "**God is Truth**" presents a timeless and universal perspective. In a world where truth is often relative, he placed truth at the center of morality, presenting it as a divine force that transcends individual cultures, beliefs, and institutions. In today's world, where misinformation and fake news are rampant, his call to prioritize truth resonates more than ever. Gandhi's commitment to truth as both a moral and religious ideal encourages individuals and societies to seek honesty, transparency, and justice in all aspects of life.

His emphasis on **ahimsa (nonviolence)**, which he saw as both a moral and religious duty, offers valuable insights for contemporary conflicts. In an age marked by political polarization, violence, and social unrest, Gandhi's principle of nonviolence stands as a beacon of hope. Nonviolence, according to Gandhi, was not just the avoidance of physical harm but the cultivation of empathy, compassion, and respect for all forms of life. This is especially relevant in modern-day political and social activism, where his approach has inspired countless movements for civil rights, peace, and justice, such as the Civil Rights Movement in the United States and the anti-apartheid movement in South Africa.

Moreover, Gandhi's idea of **self-realization**—achieving personal growth and moral clarity through introspection and spiritual practices—remains pertinent in a world that often emphasizes external success over inner peace. Gandhi's call for self-discipline, control over one's desires, and the cultivation of virtues like humility, simplicity, and patience offers a remedy for the greed, materialism, and egocentrism that prevail in contemporary society. His assertion that a morally upright individual must lead a life of simplicity and self-restraint challenges the consumerist ethos of today's globalized world.

The fusion of **religion and morality** in Gandhi's philosophy also calls attention to the importance of **community and collective responsibility**. While much of the modern discourse on morality emphasizes individual rights and personal freedoms, Gandhi's vision was broader—focused on societal well-being. He envisioned a world where communities are bound not only by laws and institutions but also by shared moral values rooted in religious teachings. His idea of a just society was one where individuals worked together for the common good, fostering social justice, equality, and compassion for all members of society, particularly the marginalized and oppressed.

In this context, Gandhi's moral teachings also provide guidance on how to address some of the most pressing global challenges today. Issues like climate change, poverty, inequality, and religious intolerance require a moral and ethical framework that transcends national borders and cultural divides. Gandhi's emphasis on the interconnectedness of all life encourages a holistic approach to addressing these problems, advocating for solutions that are rooted in compassion, equity, and respect for the environment.

Conclusion:

Mahatma Gandhi's integration of religion and morality remains a profound and relevant approach to addressing the ethical challenges of modern life. His commitment to truth, nonviolence, and social justice offers timeless wisdom for individuals and societies seeking to build a more just, compassionate, and peaceful world. By following Gandhi's example, we can create a moral framework that transcends individualism and works toward the common good of all humanity. Gandhi's legacy teaches us that personal transformation through religious discipline and moral integrity can lead to meaningful societal change. In a fragmented and polarized world, his emphasis on unity, simplicity, and ethical responsibility serves as a guiding light for future generations striving to build a harmonious and equitable global community.

Reference :

1. Gandhi, M. K. (1927). *My Experiments with Truth*. Navajivan Publishing House.
2. Gandhi, M. K. (1947). *Hind Swaraj*. Navajivan Publishing House.
3. Parekh, B. (1997). *Gandhi: A Very Short Introduction*. Oxford University Press.
4. Shridharani, R. (1939). *Satyagraha: Its Philosophy and Its Practice*. Navajivan Publishing House.
5. Weber, M. (2012). *The Sociology of Religion*. Beacon Press.
6. Alford, C. F. (2008). *The New Political Religion: Gandhi's Philosophy of Non-Violence in Global Peace*. Routledge.
7. Nussbaum, M. (2011). *Creating Capabilities: The Human Development Approach*. Belknap Press.

ugogoi434@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 160-164
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी दलित कहानियों पर डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकी का प्रभाव

रोहित कुमार
शोधछात्र,
डॉ. ए. सैंथिल कुमार
शोधनिर्देशक,
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ० प्र०)

सारांश-
हिंदी दलित कहानियों की कथावस्तु, विशिष्टता, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को साहित्य के वैचारिक पृष्ठभूमि पर परिलक्षित होते हुए समाज में शोषित वर्ग, दमित, पीड़ित व्यक्तियों के दुखों को उजागर करती हैं। हिंदी की दलित कहानियों का मुख्य उद्देश्य दलितों के जीवन में उनकी स्थिति, उनकी प्रताड़ना, उनकी वेदना और उनकी व्यथा को कथा विधा के माध्यम से समाज के हर वर्ग को अवगत कराना जिससे समाज में भयंकर वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था के अंधकार में जीने वाले हर व्यक्ति को रोशनी की एक किरण मिल सके। दलित साहित्य की वैचारिकी तथा पृष्ठिभूमि में दलित साहित्य अनगिनत सदियों में हुए सामाजिक,आर्थिक तथा सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम है। जिस प्रकार से समाज आगे-आगे बढ़ता गया उसी प्रकार से दलित साहित्य का फलक भी आगे बढ़ता गया। उसमें विभिन्नताओं के साथ-साथ नए-नए प्रयोग होते गए। जिस प्रकार से दलित वर्ग भी समाज का एक अहम हिस्सा है तो उसमें उसी प्रकार से विकास होना चाहिए जैसे समाज के हर वर्ग का विकास होता है इसलिए दलित समाज में भी बदलाव आने चाहिए और उनकी स्थितियों के सुधार पर बल दिया जाना चाहिए। जब निम्न वर्ग की स्थितियों में सुधार आएगा तभी तो समाज का भी विकास होगा। आधुनिक समय में हिंदी दलित लेखकों ने अपनी कहानियाँ लिखकर वे समाज में एक अपनी विशिष्ट पहचान बनाकर पाठको और आलोचकों का ध्यान समाज सुधार ओर आकृष्ट कर रही हैं। हिंदी की दलित कहानियों की भाषा बिलकुल सरल, सुबोध है। इन कहानियों में दो गुण विशेष रूप से होते हैं। "दलित कहानी में दो गुणों का होना आवश्यक है एक भेदमूलक व्यवस्था का विरोध तथा दूसरा परिवर्तन का संकल्प।''1 दलित कहानी साहित्य आज एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। प्रभावशाली कहानियां बनकर हिंदी कथा साहित्य में अपना योगदान दे रहीं हैं। हिंदी दलित लेखकों ने अपनी कहानियों में भाषा की सुदृढ़ता को बहुत सरल और सहज रूप दिया जिससे कहानी के विकास में सहायता प्रदान कर रहीं हैं। हिंदी दलित कहानियों की भाषा तथा कथावस्तु की कथ्यगत संवेदना के धरातल पर पूर्ण रुप से सफल होती जा रही है। "दलित कहानी की यह यात्रा सहज और सरल यात्रा नहीं है। लम्बी संघर्ष यात्रा है।'' 2

हिंदी दलित कहानी जो कि सातवें दशक से नवें दशक तक कांटों पर चलते हुए लहूलुहान होकर भी अपने तेवर में पहचान बनाने में सफल रही हैं।

बीज शब्द : डॉ.अंबेडकर दर्शन, दलित साहित्य ,वैचारिकी, असमानता, ऊंच-नीच, जाति व्यवस्था, वर्णव्यवस्था।

शोध विस्तार :

आज की कहानियों में बहुतायत मात्रा में दलित संवेदना बनाम छद्म देशभक्ति में बदल जाता है। जिन्हें एक साधारण बच्चे के रोने और उसके सपने टूटने की परवाह नहीं है। वे देशभक्ति के रस में सराबोर हुए जा रहे हैं। जबकि भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में विकसित हुआ राष्ट्रवाद इससे ऐतिहासिक रूप से पूरी तरह भिन्न है। जिस तरह से दलित कथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं, कविताओं और आलोचनाओं से हिंदी लेखन में दलित चेतना के विकास का रास्ता निर्मित किया है उसी तरह आज के दौर में नवयुग कथाकारों की रचनाए सामने आ रही हैं। करीब 20 से 25 साल पहले की स्थिति आज की स्थिति से भिन्न थी। उस समय हिंदी में दलित लेखन साहित्य की नींव पड़नी थी जिसमें स्वयं दलित कथाकारों के मन में अपने दलित लेखन को लेकर अनिश्चय भाव दिखता था। हिंदी कहानी साहित्य में दलित कहानीकार ने अपनी कहानियों में दलितों की पीड़ाओं,उपेक्षाओं,उनके साथ होने वाली हिंसाओं, घृणापूर्ण व्यवहार के ढेरों जीवन चित्र उपस्थित किए हैं। दलित कहानियों में इन सभी पीड़ाओं के द्वारा कहा जा सकता है कि दलित लेखन मुख्यत: आक्रोश का लेखन साहित्य माना जा सकता है। दलित लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित वैचारिकी का ढांचा तैयार करके एक विस्तृत आयाम दिया। उसी तरह से अन्य दलित लेखकों ने स्वातंत्रोत्तर हिंदी कविता में व्यवस्था के हाथों उत्पीड़ित मनुष्य का विश्लेषण करते हुए अपनी कहानियों के द्वारा एक पृष्ठिभूमि तैयार की। जिस प्रकार से कहानी केवल निजी भावबोध व सामाजिकता के बीच का संतुलन नहीं बल्कि कहानी वैज्ञानिक-वस्तुवादी दृष्टि तथा विशिष्ट अन्तःकरण के बीच का संतुलन भी है। हिंदी की दलित कहानियाँ जातीय बोध के विमर्श का वातारण रुपायित करती है। यह दलित कहानी साहित का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है जो दलित लेखकों की जवाबदेही तय करता है और दलित कहानियों में सामाजिक,सांस्कृतिक सरोकारों को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका सुनिश्चित करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की वैचारिकी का बिंदु उनकी 'शवयात्रा' कहानी में मिलता है जब बड़े साहस के साथ दलितों के भीतर के अन्तर्विरोध और अंबेडकरवादी संगठनों को लेखक बेनकाब करता हुआ दिखायी पड़ता है। दलित कहानियों की वैचारिकी उसकी अमूल्य निधि है। दलित कहानियों की वैचारिकी प्रतिबद्धता और दलित चेतना का प्रसार भी दलित साहित्य के सरोकार की धरोहर है। हिंदी दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार को साहित्य के परंपरागत ढांचे पर निर्मित मानदंडों के आधार पर समझना तर्कसंगत एक प्रकार से नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसे दलित साहित्य की वैचारिकी तथा पृष्ठभूमि को समझना एक प्रकार से अपरिहार्य है। हिंदी साहित्य के इतिहास में दलित वंचितों के लिए कितनी जगह है क्या साहित्य और सत्ता के संबंध पर बात नहीं होनी चाहिए? इन सवालों से गुजरे बगैर हिंदी की दलित कहानी के सरोकारों को समझा नही जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा "दलित कहानी का उद्देश्य सामाजिक मूल्यों की स्थापना के साथ मानवीय संवेदनाओं की पुनर्स्थापना भी है, जिसका अभाव साहित्य में परिलक्षित होता है।"3 दलित लेखकों ने केवल साहित्यिक मान्यताओं के स्तर तक ही नहीं बल्कि प्रकाशन,पत्रिका,विश्वविद्यालय की शैक्षणिक पद्धति आदि स्तर पर भी अपने संघर्ष को रेखांकित किया है। हिंदी की दलित कहानियाँ अंबेडकरवादी विचारों एवं चेतना पर आधारित हैं। दलित कहानी लेखन की अगर बात करें तो इसका समय मोटे तौर पर सन 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध को माना जा सकता है। हिंदी की दलित कहानियों ने पिछला दो दशकों से दलित चिंतन को अपनी विशिष्टता से काफी हद तक संवर्धित किया है। दलित जीवन को परिभाषित करते हुए प्रेमचंद जी लिखते हैं "हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहे हैं,उसमें तो जन्मजात वर्णों की गंध तक नही होगी। हर हमारे

श्रमिकों और किसानों का होगा, जिससे न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवावासी होगें या सभी हरिजन होंगे।''4 इस तरह से आज की कहानियां दलितों की स्थित को बदलने का निर्णायक रूप दिखा रही हैं। हिंदी की दलित कहानियाँ हमारे समाज में परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका के रुप में अपना स्थान निभा रही हैं और वह सार्थक रूप में अपना प्रभाव छोड़ रही हैं। दलित कहानी में दलित जीवन की वैचारिकी के दृष्टिकोणों को उनके जीवन के उत्पीड़न,भेदभाव, असमानता जैसे आधारों के कारण ही उनकी वैचारिकी अलग महत्व रखती है। कमलेश्वर के शब्दों में "आज का लेखक भाषा को अपनी मजबूरी मान सकता है,पर चिंतन को अपनी भाषा तक सीमित रखने के लिए सहमत नहीं है। इसलिए वह आज कोई भी रचना जो अपनी भाषा में लिखी जाती है वह वैचारिकी स्तर पर अपनी भाषा भी नहीं रह जाती बल्कि भारतीय सोच की विस्तृत दिशाएँ उजागर करती है। इसलिए लेखकों के आत्मकथ्य भी किसी प्रदेश या भाषा की मानसिकता का नहीं,बल्कि भारतीय मानसिकता का रचनात्मक और संघर्षपूर्ण विवरण पेश करते हैं।''5 जिस प्रकार से दलित साहित्य एक मानतावादी साहित्य है उसी तरह से दलित कहानियों की वैचारिकी समतावादी दृष्टिकोण को उजागर करती है। बाबासाहब डॉ.अंबेडकर का कहना है कि "बुद्धिमान बनकर ही समाज में आर्थिक और राजनीतिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है।''6 भारत की वर्णव्यवस्था जाति आधारित व्यवस्था में यातना का लंबा इतिहास है। अलग-अलग कालखण्डों के माध्यम से इस व्यवस्था के खिलाफ विरोध और प्रतिरोध होता रहा है। सबसे प्रखर और सुव्यवस्थित संघर्ष फुले और अम्बेडकरयुगीन कालखण्ड में देखा जा सकता है। इसी कालखण्ड से दलित जीवन की वैचारिकी का दंश उभरने लगता है। हिंदी कथा साहित्य में इसी दंभ को दलित कथाकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा कहानियों के माध्यम से रुपायित किया है। अपनी लेखनी के द्वारा दलित कथाकारों ने समाज में व्याप्त जातिगत विषमता,उत्पीडन,असमानता को एक विशेष तौर पर चित्रित किया जिसके आधार पर दलित वैचारिकी का एक ढांचा तैयार हुआ। इन कहानियों का विषयवस्तु दलित जीवन की त्रासदियों का वर्णन करना मुख्य उद्देश्य है। हिंदी साहित्य के इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1900ई० से हिंदी कहानी को चिन्हित,रेखांकित और स्थापित किया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में द्विवेदीयुग के प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादक में 'सरस्वती' पत्रिका में 1914 ई. में पटना के हीराडोम की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई थी। यह बात अलग है कि हीराडोम का कोई परिचय नहीं, कोई इतिहास नहीं है। उसी दौर में स्वामी अछूतानंद और हिंदी पट्टी में एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में उभर कर सामने आए। हिंदी साहित्य का नवजागरणकालीन दौर भी वही था जब राष्ट्रीय फलक पर भीमराव अम्बेडकर सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर सक्रिय थे। परंतु हिंदी दलित कहानी के उद्भव और विकास के इतिहास में दलित कहानी का कोई इतिहास नहीं दिखाई पड़ता था। दलित साहित्य के जीवन से जुड़ी प्रेमचंद द्वारा लिखित कहानियाँ 1930ई. के आसपास मिलने लगती हैं लेकिन दलित कथाकार द्वारा लिखित किसी भी कहानी का वर्णन नहीं मिलता,जब कि लोक में दलित की उपस्थिति से परे मना नहीं कर सकते। इस विषय पर एक गंभीर विश्लेषण तो जरूरी है। लेकिन उनका न कोई सामाजिक सहयोग और न ही कोई मार्गदर्शन मिलता है। इसी तरह की उदासीनता पर कहानी सवाल खड़े करके इस बात का अहसास करती है कि शिक्षा के हर क्षेत्र में दलितों का बराबर अधिकार है जो उन सबको आरक्षण के कारण मिला है। हिंदी दलित कहानियों के माध्यम से मजदूरी के अंतर्विरोधों का विशिष्ट स्थान दिया गया है। जिस प्रकार से ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'प्रमोशन' कहानी में मजदूर यूनियन के कर्मचारियों में जातिवादी संस्कारों को उजागर करती है। अस्पृश्यता का अभिशाप शहर से अधिक गाँव,कस्बों में रहने वाले दलित झेलते हैं जिस प्रकार से मुक्ति अभी भी संभव नहीं हुई है। "दलित साहित्य का बडा भाग गाँवों के जीवन के चित्रण से भरा हुआ है। ग्रामीण लेखकों को दलित साहित्य ग्रामीण जीवन का एक हिस्सा लगता है। गांवों में जातीय मुहल्ले बसे हुए हैं। गाँव के बाहर दलितों के लिए अलग बस्ती,अलग शमशान और अलग कुंआ है।''7 दलितों को बहिष्कृत कर संवेदन शून्य बनाने के लिए रची

गई साजिशें थी। "गाँव के बाहर रहो,बस हाशिए पर! वह भी दक्षिण में, ताकि तुम्हारी गन्दी हवा गाँव में न आए! कूड़े के ढेर पर रहो,एक शाम खाओ।"8 दलित बस्तियों को इसी तरह बसाया जाता था। सवर्णों ने बस पूरी की पूरी जमात हशिये पर खड़ी कर दी। बहिष्कृत कर दी, छुआछूत बना दी। एक संवेदनहीन-संस्कृति ने एक अत्यंत ही संवेदनशील जमात को पशुवत,जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर कर दिया। दलित कहानियों के पात्र कट्टर सामंती मनोवृति से ग्रस्त होने के कारण दलित समुदाय के लोगों से घृणा करते हैं लेकिन कुछ विपरीत परिस्थितियों में दलित व्यक्ति के साहचर्य,उसके मानवीय विचारों से प्रभावित होकर समरसता की भावना को अपना लेते हैं।

हिंदी के दलित कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय,जयप्रकाश कर्दम, प्रेम कपाड़िया, बी.एल.नायर, सूरजपाल चौहान, कावेरी, कुसुम मेघवाल, विपिन विहारी आदि इस दौर के महत्वपूर्ण कहानीकार है। इन कहानीकारों के माध्यम से दलित जीवन की त्रासदी के अध्ययन से आप रूबरू हो सकेंगे। दलित कहानियां संपूर्ण समाज को संवेदनशील बनाकर सोचने पर मजबूर करती हैं और समाज को जवाब देह बनाती है। जिस प्रकार से दलितों की स्थिति में अस्पृश्यता का अभिशात शहरों से कई गुना अधिक गाँवों, कस्बों में रहने वालों दलितों को झेलना पड़ती है, जिससे मुक्ति अभी तक नहीं संभव हो पाई है। उन गाँवों, कस्बों में उत्पीडन का अमानवीय स्वरूप अभी भी सामंतवाद, जातिवाद के रूप में जीवित है। ग्रामीण और शहरी संस्कृति में व्याप्त जाति-व्यवस्था की जड़ता को बेनकाब करने वाली कहानियाँ है- 'जंगल की रानी,' 'यह अंत नहीं' 'सलाम' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), अपना गाँव, आवाजें (मोहनदास नैमिकाराय), परिवर्तन की बात, बदबू (सूरजपाल चौहान), 'सिलिया' (सुशीला टाकभौर) आदि है इन कहानियों के माध्यम से दफ्तरों में सहकर्मियों और बॉस के रिश्तों में जातिवादी विचारधारा को भी प्रस्तुत करती है। "दलित लेखन अपने वर्णाश्रम-जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में असुरक्षा महसूस करने के अनुभव से जोड़ता है।"9 असुरक्षा महसूस इन कहानियों में भेदभाव और उत्पीडन का स्वानुभव दलित कहानी के यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति है। इन कहानियों में दलित विमर्श ही केन्द्र बिन्दु रहा है। कथावस्तु का चुनाव, घटना, चरित्र चित्रण, देशकाल, वातावरण और सोददेश्यता को लेकर दलित स्वानुभव प्रमाणिकता प्रदान करता है। दलित जीवन संदर्भ और लेखन में बालशोषण का चित्रण और उन सभी विशेषताओं को दलित आत्मकथनों से प्रभावित होती है। "दलित लेखक आज तक दलित आदमी के लिए लिखता था, पर अब विश्व स्तर के लेखन से उसकी स्पर्धा है।''10 इस प्रकार से आज का दलित साहित्य दलित कहानी में यह वैचारिकी अलग महत्त रखता है और दलित कहानियों की वैचारिकी दलित-जीवन की विवशता उपेक्षा, प्रताड़ना, आदि संघर्षो को पूर्ण रूप से हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष - हिंदी दलित कहानियों में डॉ अम्बेडकर की वैचारिकी का प्रभाव इस प्रकार परिलक्षित होता है जिसमें ये कहानियां दलित समाज के भोगे हुए यथार्थ को चित्रित करती हैं। दलित कहानियाँ हिंदू व्यवस्था की जमीनी हकीकत के यथार्थ चित्रण को उपस्थिति करती हैं। इन कहानियों की भाषा और स्तरीयता पर प्रशनचिन्ह लगाने वाले वर्ग को पुनर्विचार करना चाहिए। हिंदी के दलित कहानीकारों की कहानियों के सरोकारों को उसकी ऐतिहासिकता और मानवीय पक्षों को जाने बगैर दलित कहानी के संवादों उसकी भाषा-शैली और उद्देश्यों को नहीं समझा जा सकता है। दलित कहानियाँ यथास्थितिवाद को तोड़ती हैं और अम्बेडकरवादी विचारधारा के आधार पर चेतनाशील समाज को निर्मित कर समाजवादी अखण्ड भारत का विकल्प प्रस्तुत कर करती हैं। घृणा और हिंसा को करुणा एवं अहिंसा में रुपांतरित करने की आकांक्षा दलित कहानी का महत्वपूर्ण पहलू है। दलित साहित्य की वैचारिकी को समझे बगैर दलित कहानी की संवेदना को नहीं समझा जा सकेगा। हिंदी दलित कहानियाँ दलित आंदोलन के लंबे इतिहास की देन है। विषमताजनक व्यवस्था को बदलकर समतावादी समाज का सपना सरोकार करना दलित कहानियों का वैशिष्ट्य है। इस प्रकार से आज का दलित साहित अपना वर्चस्व स्थान प्राप्त कर रहा है।

संदर्भ-

1. रमणिका गुप्ता संपादक - दलित कहानी संचय – साहित्य अकादमी दिल्ली,पृष्ठ 7
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – राधा कृष्ण स्टूडियो दिल्ली,पृष्ठ 110
3. वैभव सिंह – कहानी विचारधारा और यथार्थ 21वीं सदी की चुनौतियां एवं कथा संवेदना – वाणी प्रकाशन दिल्ली- पृष्ठ 155
4. अनिल कुमार, एस एस गौतम सं. – प्रेमचंद और दलित विमर्श – गौतम पुस्तक सेंटर दिल्ली,पृष्ठ 24
5. मोहनदास नैमिशराय – हिंदी दलित साहित्य – साहित्य अकादमी दिल्ली,पृष्ठ 212
6. एस.के.पंजम – डॉ.भीमराव अम्बेडकर की आत्मकथा – दिव्यांश पब्लिकेशन लखनऊ – पृष्ठ 13
7. मोहनदास नैमिशराय – हिंदी दलित साहित्य – साहित्य अकादमी दिल्ली,पृष्ठ 281
8. रमणिका गुप्ता संपादक – दलित कहानी संचय – साहित्य अकादमी दिल्ली,पृष्ठ 13
9. वैभव सिंह – कहानी विचारधारा और यथार्थ 21वीं सदी की चुनौतियां एवं कथा संवेदना – वाणी प्रकाशन दिल्ली- पृष्ठ 154
10. डॉ. शरणकुमार लिंबाले – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – वाणी प्रकाशन दिल्ली- - पृष्ठ 154

मो.9452153945
ईमेल rohit57435@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 165-169
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾਈ ਅਧਿਐਨ

ਪ੍ਰਭਜੀਤ ਕੌਰ
ਖੋਜਾਰਥੀ
ਡਾ: ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ
ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ (ਬਠਿੰਡਾ)

ਨੈਵੇ ਦਹਾਕੇ ਦੇ ਪਿਛਲੇ ਅੱਧ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰਾਂ ਦਾ ਇੱਕ ਨਵਾਂ ਪੋਚ ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ। ਇਹਨਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਸਭ ਤੋਂ ਸਿਰ ਕੱਢ ਲੇਖਕ ਜੇਕਰ ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਇਹ ਕੋਈ ਗਲਤ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ। ਉਸ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਪਹਿਲੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਆਪਣੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਹਾਣੀ ਹੋਣ ਦਾ ਅਹਿਸਾਸ ਕਰਵਾ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਖਾਸ ਕਰਕੇ ਉਸ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ 'ਹੱਡਾ- ਰੋੜੀ' ਅਤੇ 'ਸੂਰਜਵੰਸ਼ੀ' ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਜਗਤ ਦਾ ਮਾਣ ਕਹੀਆ ਜਾ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ। 'ਡਾਕਖਾਨਾ ਖਾਸ' ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਨੂੰ 1995 ਵਿੱਚ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਸਰਵੋਤਮ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਐਵਾਰਡ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਵੱਲੋਂ ਮਿਲਿਆ।

ਜੇਕਰ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਇਹ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗਲਪਕਾਰ ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ਦੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਜ਼ਿਆਦਾ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਲੇਖਕਾਂ ਦੇ ਨਾਲ- ਨਾਲ ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਗੋਰਕੀ ਟਾਲਸਟਾਇ ਅਤੇ ਪਾਸਤੋਵਸਕੀ ਆਦਿ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਰੂਸੀ ਲੇਖਕਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਪੜ੍ਹਿਆ ਅਤੇ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵ ਕਬੂਲਦੇ ਹੋਏ ਆਪਣੇ ਚੌਗਿਰਦੇ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ ਕੀਤੀ। ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਕਿਸਾਨੀ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਅਤੇ ਦਲਿਤਾਂ ਦੀ ਵਿਥਿਆ ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਵਿਸ਼ਿਆ ਨੂੰ ਲੈ ਕੇ ਸਾਹਿਤ ਰਚਨਾ ਵਿੱਚ ਆਪਣਾ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ। ਸੂਝਵਾਨ ਅਤੇ ਉੱਘਾਂ ਲੇਖਕ ਉਹ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਸਮੇਂ ਦਾ ਹਾਣੀ ਹੋਵੇ 'ਤੇ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਵੀ ਹਮੇਸ਼ਾ ਹੀ ਸਮੇਂ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਹੀ ਚੱਲਦੀ ਹੈ। ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਨੂੰ ਜੇਕਰ ਨੀਝ ਨਾਲ ਸਮਝਿਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾਂ ਦੀ ਸਮਝ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। 'ਡਾਕਖਾਨਾ ਖਾਸ' ਵਿੱਚ ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਅਜਿਹਾ ਉਹ ਹੀ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਸੀਨੇ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬ ਪ੍ਰਤੀ ਦਰਦ ਹੋਵੇ। 'ਮੀਤੋ ਮਰਾਸਣ' ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵੀ ਕਿੱਤਿਆ ਦੇ ਖ਼ਤਮ ਹੋਣ ਨਾਲ ਆਦਮੀ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚ ਆਏ ਸੰਕਟਾਂ ਨੂੰ ਬਾਖੂਬੀ ਬਿਆਨਿਆ ਹੈ।

'ਡਾਕਖਾਨਾ ਖਾਸ' ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦੀ ਵਿਚਾਰ ਚਰਚਾ ਵਿੱਚ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲੀ ਕਹਾਣੀ 'ਡਾਕਖਾਨਾ ਖਾਸ' ਹੈ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਆਮ

ਲੋਕਾਈ ਦੇ ਸੁਪਨਿਆਂ ਨੂੰ ਦਹਿਸਤ ਅਤੇ ਡਰ ਦੀ ਭੇਂਟ ਚੜ੍ਹਦਿਆਂ ਦਿਖਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਅੱਤਵਾਦ ਆਉਣ ਦੇ ਵੀ ਕੁਝ ਕਾਰਨ ਹਨ ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਦੋਸ਼ ਪੂਰਨ ਵਿੱਦਿਆ ਪ੍ਰਣਾਲੀ, ਬੇਰੁਜ਼ਗਾਰੀ, ਆਮ ਜਨਤਾ ਦੀ ਖੱਜਲ ਖੁਆਰੀ, ਕਿਸਾਨੀ ਦੀ ਤਰਸਯੋਗ ਹਾਲਤ ਆਦਿ। ਜਦੋਂ ਇਹ ਸਾਰੇ ਕਾਰਨ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਕੁਦਰਤੀ ਗੱਲ ਹੈ ਲੋਕਾਈ ਦਾ ਧਿਆਨ ਭਟਕਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਹ ਆਪਣਾ ਰਾਹ ਬਦਲ ਲੈਂਦੇ ਹਨ। ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਖੁਸ਼ਹਾਲੀ ਲਈ ਉਠੀ ਲਹਿਰ ਦਾ ਆਪਣੇ ਉਦੇਸ਼ ਤੋਂ ਭਟਕ ਜਾਣ ਪਿੱਛੇ ਸਰਕਾਰੀ ਦਮਨਕਾਰੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦਾ ਹੱਥ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਬੰਧੀ ਡਾ. ਸੁਰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ:

> "ਭਾਰਤੀ ਰਾਜ ਵਿਵਸਥਾ ਦੇ ਸੰਕਟ ਗ੍ਰਸਤ ਅਪ੍ਰਮਾਣਿਕ ਲੋਕਤੰਤਰ ਦਾ ਗੈਰ ਲੋਕਤੰਤਰੀ ਅਤੇ ਸੰਪਰਾਇਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ ਵਿਰੋਧ ਹੀ ਨੈਵੇ ਦਹਾਕੇ ਦੇ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਦੀ ਜਟਿਲਤਾ ਅਤੇ ਵਿਕਰਾਲਤਾਂ ਨੂੰ ਨਿਰਧਾਰਿਤ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਸੂਤਰ ਹੈ"। [1]

ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿਚਲਾ ਪਾਤਰ ਜੱਸੀ ਅੱਤਵਾਦ ਦੇ ਰਾਹ ਵੱਲ ਮੁੜ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਪੇਪਰਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਫ਼ੇਲ ਹੋਣ ਦਾ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਕਲਰਕ ਬੂਟਾ ਸਿੰਘ ਉਸ ਨੂੰ ਪਾਸ ਕਰਵਾਉਣ ਲਈ ਰਿਸ਼ਵਤ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜੱਸੀ ਉਸ ਨੂੰ ਪੈਸੇ ਦੇ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਉਸਨੂੰ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਤਾਂ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਪਾਸ ਸੀ। ਕਲਰਕ ਨੇ ਉਸ ਨਾਲ ਠੱਗੀ ਮਾਰੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਦੋਸਤਾਂ ਨਾਲ ਰਲ ਕੇ ਕਲਰਕ ਨੂੰ ਕੁੱਟਦਾ ਹੈ ਪਰ ਕਲਰਕ ਆਪਣੀ ਗਲਤੀ ਨਾ ਮੰਨਦਾ ਹੋਇਆ ਜੱਸੀ ਨੂੰ ਪੁਲਿਸ ਨੂੰ ਫੜਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਪੁਲਿਸ ਵੱਲੋਂ ਜੱਸੀ ਨੂੰ ਇੰਨਾ ਮਾਰਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਪੁਲਿਸ ਨੂੰ ਨਫ਼ਰਤ ਕਰਨ ਲੱਗ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਇੱਥੋਂ ਹੀ ਉਸ ਦਾ ਪੈਰ ਅੱਤਵਾਦ ਵੱਲ ਮੁੜ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਸਰਕਾਰ ਦੀਆਂ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ ਪਾਜ ਉਧੇੜਦੀਆਂ ਹਨ ਇਹ ਸਤਰਾਂ:-

> "ਇਹ ਪੁਲਸੀਏ ਤਾਂ ਚਾਚਾ ਸਰਕਾਰੀ ਗੁੰਡੇ ਹੁੰਦੇ ਨੇ.....ਕਿਰਾਏ ਦੇ ਗੁੰਡੇ.....ਪੈਸੇ ਦੇ ਕੇ ਇਹਨਾਂ ਤੋਂ ਜੋ ਕੁਝ ਮਰਜੀ ਕਰਵਾ ਲਵੋ...ਹਜ਼ਾਰ ਆਪਾਂ ਤੋਂ ਲੈ ਲਿਆ ਹਜ਼ਾਰ ਉਸ ਤੋਂ ਲੈ ਲਿਆ ਹੋਊ.....ਤਾਂ ਹੀ ਤਾਂ ਮੁੰਡੇ ਘਰੋਂ ਭੱਜਦੇ ਨੇ"।[2]

ਇਹ ਸਤਰਾਂ ਪੁਲਿਸ ਦੇ ਮਹਿਕਮੇ 'ਤੇ ਸਿੱਧਾ ਵਿਅੰਗ ਹਨ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਤੋਂ ਇਹ ਵੀ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਪੁਲਿਸ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀ ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਵਿੱਚ ਡਰ ਬਹੁਤ ਜ਼ਿਆਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਪੁਲਿਸ ਨੇ ਜੱਸੀ ਦੀ ਕੁੱਟ ਕੇ ਬੁਰੀ ਹਾਲਤ ਕੀਤੀ ਤਾਂ ਉਸ ਦਾ ਪਤਾ ਲੈਣ ਆਈਆਂ ਔਰਤਾਂ ਕਹਿੰਦੀਆਂ ਹਨ।

> "ਇਹਨਾਂ ਦਾ ਰਾਜ ਐ ਪੁੱਤ.....ਬਚ ਕੇ ਰਹੋ ਬਚ ਕੇ।" [3]

ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਸੰਕਟ ਦੇ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਬੜੇ ਮੁੰਡਿਆ 'ਤੇ ਜ਼ੁਲਮ ਹੋਏ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀਆਂ ਕਸੂਤੀਆਂ ਸਥਿਤੀਆਂ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਮੁੰਡਿਆ ਦੀ ਹਾਰ ਹੋਈ। ਉਹ ਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹੋਏ ਵੀ ਕੁਰਾਹੇ ਪੈ ਗਏ 'ਤੇ ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਜੱਸੀ ਨੇ ਕੀ ਪੜ੍ਹਨਾ ਸੀ? ਉਹ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਦਾ ਮਨ ਬਣਾਉਣ ਲੱਗਾ ਪਰ ਪਾਸਪੋਰਟ ਬਣਾਉਣ ਵਿੱਚ ਵੀ ਮੁਸ਼ਕਿਲਾਂ ਆਉਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਰਿਸ਼ਵਤ ਖੋਰੀ ਵੀ ਸਾਡੇ ਨੌਜੁਆਨਾਂ ਨੂੰ ਹਰ ਕਦਮ 'ਤੇ ਚੁਣੌਤੀ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ਇੱਥੇ ਪੰਜਾਬ ਦੀਆਂ ਮੌਜੂਦਾ ਸਥਿਤੀਆਂ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਇਹ ਦੱਸਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਕਿ ਜੱਸੀ ਵਰਗੇ ਮੁੰਡਿਆਂ ਨੂੰ ਹਾਲਤਾਂ ਤੋਂ ਮਜ਼ਬੂਰ ਹੋ ਕੇ ਇਹਨਾਂ ਰਸਤਿਆਂ ਤੇ ਚੱਲਣਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ।

ਉਸ ਦੇ ਦੁਆਰਾ ਇਹ ਰਸਤਾ ਅਖਤਿਆਰ ਕਰਦਿਆਂ ਪੁਲਿਸ ਘਰਦਿਆਂ ਨੂੰ ਤੰਗ ਕਰਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਦੇ ਪਿਤਾ ਮਲਕੀਤ ਸਿੰਘ ਨੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸੰਕਟ ਤੋਂ ਬਚਾਉਣ ਲਈ ਇਹ ਕਹਿ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਸਾਡਾ ਤੇ ਜੱਸੀ ਦਾ ਹੁਣ ਕੋਈ ਰਿਸ਼ਤਾ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਉਸ ਦੇ ਪਿਉ ਨੇ ਪੁੱਤ ਨਾਲ ਹੀ ਰਿਸ਼ਤਾ ਖਤਮ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੇਰੇ

ਵੱਲੋਂ ਤਾਂ ਭਾਵੇਂ ਉਸ ਨੂੰ ਗੋਲੀ ਮਾਰ ਦਿਉ। ਪੁਲਿਸ ਵਾਲਿਆਂ ਦੇ ਜ਼ੁਲਮ ਤੋਂ ਬਚਣ ਲਈ ਜਨਤਾ ਖਾੜਕੂਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਦੁਹਾਈ ਦਿੰਦੀ ਹੈ।

> "ਤੂੰ ਤਾਂ ਭਾਈ ਘਰਬਾਰ ਛੱਡੀ ਫਿਰਦਾ, ਕੁੱਝ ਸਾਡੇ ਬਾਰੇ ਵੀ ਸੋਚ ਲਿਆ ਕਰ.....ਪੁਲਿਸ ਨੇ ਕੁੱਟ-ਕੁੱਟ ਕੇ ਮੁੰਡਿਆ ਦਾ ਨਾਸ ਮਾਰਿਆ ਪਿਆ, ਸਾਰੀ ਉਮਰ ਦੇ ਰੋਗੀ ਕਰਕੇ ਰੱਖ ਤੇ.....। ਫੇਰ ਤਾਇਆ ਮੈਂ ਦੱਸ ਕੀ ਕਰਾਂ.....ਅਸੀਂ ਵੀ ਥੋਡੇ ਖਾਤਰ ਹੀ ਘਰ ਘਾਟ ਛੱਡੀ ਫਿਰਦੇ ਆਂ"। [4]

ਇਸ ਅੱਤਵਾਦ ਦਾ ਅਤੇ ਪੁਲਿਸ ਦਾ ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਇੰਨਾ ਖੋਫ਼ ਪੈਦਾ ਹੋ ਗਿਆ ਸੀ ਕਿ ਜਦੋਂ ਜੱਸੀ ਦੇ ਮਰ ਜਾਣ ਦਾ ਖ਼ਬਰ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਉਸਦੇ ਜਿਉਂਦੇ ਹੋਣ ਦੀ ਖ਼ਬਰ ਪਤਾ ਲੱਗਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਦਾ ਪਿਤਾ ਮਲਕੀਤ ਸਿੰਘ ਇਸ ਦੁਬਿਧਾ ਵਿੱਚ ਫਸ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਇਹ ਖ਼ਬਰ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਸਾਂਝੀ ਕਰੇ ਜਾ ਨਾ। ਜਿੱਥੇ ਉਸਨੂੰ ਪੁੱਤ ਦੇ ਜਿਉਂਦੇ ਹੋਣ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਮਨਾਉਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਸੀ। ਉੱਥੇ ਉਹ ਨਿਰਾਸ਼ਤਾ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕਿਉਂਕਿ ਜੇ ਜੱਸੀ ਦੇ ਜਿਉਂਦੇ ਹੋਣ ਦੀ ਖ਼ਬਰ ਬਾਹਰ ਫੈਲਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਇੱਕ ਤਾਂ ਪੁਲਿਸ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਤੰਗ ਕਰੂ ਤੇ ਦੂਜਾ ਪੁਲਿਸ ਦੁਆਰਾ ਜੱਸੀ ਨੂੰ ਮਾਰ ਦਿੱਤੇ ਜਾਣ ਦਾ ਡਰ। ਇਹ ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਕੇਵਲ ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਇਸ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਸਗੋਂ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੇ ਦਿਨਾਂ ਦੀ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਘਰਾਂ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਲੋਕ ਅੱਜ ਤੱਕ ਵੀ ਹੰਢਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਆਮ ਇਨਸਾਨ ਤੋਂ ਅੱਤਵਾਦ ਬਣਨ ਦੇ ਕਾਰਨਾਂ ਨੂੰ ਉਭਾਰਦੀ ਹੈ। ਇਨਸਾਨ ਦਾ ਆਪਣੇ ਰਾਹਾਂ ਤੋਂ ਭੜਕ ਕੇ ਇਹਨਾਂ ਰਾਹਾਂ ਤੇ ਤੁਰਨ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਵਾਰ ਬਾਹਰੀ ਹਾਲਾਤ ਵੀ ਜਿੰਮੇਵਾਰ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।

ਇਸ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੀ ਦੂਜੀ ਕਹਾਣੀ 'ਸੂਰਜਵੰਸ਼ੀ' ਹੈ। ਜਿਸਨੂੰ 1994 ਦਾ ਐੱਸ.ਐੱਸ. ਭੱਠਲ ਪੁਰਸਕਾਰ ਇੱਕ ਹਜ਼ਾਰ ਰੁਪਏ ਦੇ ਨਾਲ ਮਿਲਿਆ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵੀ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਲਿਆ ਹੈ। ਖਾੜਕੂ ਅਤੇ ਸਰਕਾਰੀ ਦਹਿਸ਼ਤ-ਗਰਦੀ ਦੋਹਾਂ ਦੀ ਹੀ ਸ਼ਿਕਾਰ ਆਮ ਜਨਤਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਦਾ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਜੋਰਾ ਸਿੰਘ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਹੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਪਾਰਟੀਆਂ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਤੇ ਪਾਰਟੀਆਂ ਦੀ ਆਪਸੀ ਫੁੱਟ ਕਾਰਨ ਸਹੀ ਉਦੇਸ਼ ਤੋਂ ਭਟਕ ਜਾਣ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਪਾਰਟੀਆਂ ਸੰਕਟ ਦੇ ਸਹੀ ਕਾਰਨ ਨੂੰ ਲੱਭਣ ਦੀ ਥਾਂ ਤੇ ਉਸ ਦਾ ਖਾਤਮਾ ਕਰਨ ਦੀ ਥਾਂ ਆਪਸ ਵਿੱਚ ਹੀ ਲੜਦੀਆਂ ਰਹਿੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਪਾਰਟੀ ਦੀ ਧੜੇਬੰਦੀ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀਆਂ ਸਤਰਾਂ:–

> "ਪਾਰਟੀ ਵਿੱਚ ਦੋ ਧੜੇ ਸਨ। ਇੱਕ ਧੜਾ ਕਾਂਗਰਸ ਪਾਰਟੀ ਦੀ ਮਦਦ ਕਰਨ ਦੇ ਹੱਕ ਵਿੱਚ ਸੀ। ਇਸ ਧੜੇ ਦਾ ਖਿਆਲ ਸੀ ਕਿ ਜਿੱਥੇ ਭਾਜਪਾ ਜਾਂ ਅਕਾਲੀ ਉਮੀਦਵਾਰ ਜਿੱਤਦਾ ਹੋਵੇ ਉੱਥੇ ਕਾਂਗਰਸ ਦੀ ਮਦਦ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇ ਪਰ ਪਾਰਟੀ ਦਾ ਇਹ ਦੂਜਾ ਧੜਾ ਕਾਂਗਰਸ ਦੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ ਖਿਲਾਫ਼ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਕਾਂਗਰਸ ਨੂੰ ਵੀ ਬਰਾਬਰ ਦਾ ਦੁਸ਼ਮਣ ਮੰਨਦਾ ਸੀ।" [5]

'ਘਸਿਆ ਹੋਇਆ ਆਦਮੀ' ਇਸ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੀ ਤੀਜੀ ਕਹਾਣੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਦਾ ਸਿਰਲੇਖ ਹੀ ਇਸ ਵਿਚਲੇ ਵਿਸ਼ੇ ਵਸਤੂ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਆ ਰਹੀਆਂ ਤ੍ਰੇੜਾਂ ਅਤੇ ਮਸ਼ੀਨੀ ਯੁੱਗ ਵਿੱਚ ਮਸ਼ੀਨ ਹੋ ਰਹੇ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਗਾਥਾ ਨੂੰ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ।

ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਦਾ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਅਰਜਣ ਹੈ ਜੋ ਬੱਗੇ ਲੰਬੜਦਾਰ ਨਾਲ ਪਿਛਲੇ ਕਈ ਸਾਲਾਂ ਤੋਂ ਸੀਰ ਤੇ ਕੰਮ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਅਰਜਣ ਬੁਢਾਪੇ ਵੱਲ ਵੱਧ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕਾਰਨ ਬੱਗਾ ਉਸ ਨੂੰ ਇਹ

ਕਹਿ ਕੇ ਕੰਮ ਤੋਂ ਜਵਾਬ ਦੇ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਤੈਥੋਂ ਬੁਢਾਪੇ ਕਾਰਨ ਸਾਡਾ ਕੰਮ ਸਾਂਭਿਆਂ ਨਹੀਂ ਜਾਣਾ। ਜਵਾਨੀ ਵਿੱਚ ਅਰਜਣ ਮਸ਼ੀਨ ਵਾਂਗ ਕੰਮ ਕਰਦਾ ਸੀ। ਉਸ ਦੀ ਮਿਹਨਤ ਦੀ ਵੀ ਪੂਰੀ ਕਦਰ ਪੈਂਦੀ ਸੀ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਉਸ ਦੀ ਸਮਰਥਾ ਦੇਖ ਕੇ ਹਰ ਕੋਈ ਉਸ ਨੂੰ ਸੀਰੀ ਰੱਖਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਉਸ ਨੂੰ ਹੁਣ ਬੁਢਾਪੇ ਵੱਲ ਵੱਧਦਾ ਵੇਖ ਕੇ ਉਸ ਦੀ ਮਦਦ ਕਰਨ ਦੀ ਥਾਂ ਉਸ ਦਾ ਮਾਲਕ ਕੰਮ ਤੋਂ ਜਵਾਬ ਦੇ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਲੰਬੜਦਾਰ ਨੇ ਲੱਤਾਂ ਨਿਸਾਲੀਆਂ ਤੇ ਸੂਤ ਹੋ ਕੇ ਬਹਿੰਦਾ ਬੋਲਿਆ –

> “ ਅਰਜਣ ਸਿਆਂ! ਊ ਤਾਂ ਅਸੀਂ ਸੀਰੀ ਤੈਨੂੰ ਹੀ ਰੱਖਣਾ ਤੀ.....ਪਰ ਤੂੰ ਖੁਦ ਸਮਝਦਾਰ ਏ....ਤੈਥੋਂ ਹੁਣ ਕੰਮ ਨੀ ਕਰ ਹੋਣਾ ਸਾਡੇ ਨਾ.....ਹੁਣ ਸਿਆਣਾ ਹੋ ਗਿਆ.....ਆਪਣੀ ਖੇਤੀ ਤਾਂ ਤੈਨੂੰ ਪਤਾ ਬਈ ਤਕੜੇ ਜਵਾਨ ਆਦਮੀ ਦੀ ਐ, ਛੇ-ਸੱਤ ਸਾਲ ਆਪਣੀ ਚੰਗੀ ਨਿਭਗੀ।”[6]

ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦੀ ਆਮਦ ਕਾਰਨ ਵਿਅਕਤੀ ਤੋਂ ਰਿਜ਼ਕ ਖੋਹਣ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦਾ ਸੰਕੇਤ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਤੋਂ ਭਲੀ ਭਾਂਤ ਉਜਾਗਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਕੱਪ ਤੇ ਕੇਲੀ ਉਸਦੇ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਫੜੇ ਹੋਏ ਸਨ। ਉਹ ਹੌਲੀ-ਹੌਲੀ ਤੁਰ ਰਿਹਾ ਸੀ। [7]

ਅਰਜਣ ਦਾ ਕੱਪ ਤੇ ਕੇਲੀ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਫੜਨਾ ਇੱਕ ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਬਿਨਾ ਕਿਸੇ ਕਮਾਈ ਤੋਂ ਖਾਲੀ ਹੱਥ, ਖਾਲੀ ਭਾਡਿਆਂ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਘਰ ਵਾਪਸ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਖੁਲ੍ਹੇ ਦਰਾਂ ’ਚੋਂ ਕਦੇ- ਕਦੇ ਹਵਾ ਦਾ ਬੁੱਲਾ ਆਉਂਦਾ ਤੇ ਵਿਹੜੇ ਵਿੱਚ ਖੜੀ ਡੇਕ ਦੀਆਂ ਟਾਹਣੀਆਂ ਨੂੰ ਹਿਲਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਨਾਲੇ ਹਰ ਵਾਰ ਇੱਕ ਦੋ ਅੱਧ ਪੀਲੇ ਪੱਤੇ ਝੜ ਕੇ ਹੇਠਾਂ ਆ ਡਿਗਦੇ ਸਨ। [8]

ਇਸ ਵਾਰਤਲਾਪ ਵਿੱਚ ਹਵਾ ਦਾ ਬੁੱਲਾ ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੇ ਆਉਣ ਦਾ ਸੂਚਕ ਹੈ। ਟਾਹਣੀਆਂ ਦਾ ਹਿਲਣਾ ਇਸ ਤੋਂ ਭਾਵ ਹੈ ਸਿਸਟਮ ਵਿੱਚ ਤਬਦੀਲੀ। ਪੀਲੇ ਪੱਤਿਆਂ ਦਾ ਝੜਣਾ ਪੁਰਾਣੇ ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਦੀ ਜਗ੍ਹਾ ਨਵੇਂ ਬੰਦਿਆ ਦਾ ਕੰਮ ਤੇ ਆਉਣਾ। ਪੂੰਜਾਵਾਦੀ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਅਸਰ ਛੋਟੀ ਕਿਸਾਨੀ ਅਤੇ ਦਲਿਤ ਵਰਗ ਤੇ ਪਿਆ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵੀ ਅਰਜਣ ਅਖੀਰ ਤੇ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਟੁੱਟ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸ ਦਾ ਵਜੂਦ ਲਹਿਰਾਂ ਦੀ ਭੀੜ ਵਿੱਚ ਗੁਆਚ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕੁਦਰਤੀ ਗੱਲ ਹੈ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਇਸ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਪੈਸੇ ਦੇ ਪਿੱਛੇ ਭੱਜਦਿਆਂ ਮਨੁੱਖ ਇਕੱਲ ਦੇ ਰਾਹ ਤੇ ਨਿਕਲ ਤੁਰਿਆ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਨੇ ਅੱਜ ਦੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਪਰ ਬਹੁਤ ਕੁੱਝ ਉਸ ਤੋਂ ਖੋਹ ਵੀ ਲਿਆ ਹੈ।

ਇਸ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਬਾਰੇ ਇਹ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਨੇ ਬੜਾ ਹੀ ਮਹੀਨ ਕੱਤਿਆ ਹੈ। ਸਮਾਜ ਦੇ ਬੜੇ ਹੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਵਿਸ਼ਿਆ ਨੂੰ ਅਧਾਰ ਬਣਾਇਆ ਹੈ। ਮਹੀਨ ਪਰਤਾਂ ਨੂੰ ਉਧੇੜ ਕੇ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਸੱਚ ਨੂੰ ਸਿਰਜਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਨਸਰਾਲੀ ਨੇ ਇਸ ਦੌਰ ਦੇ ਅਨੁਕੂਲ ਕਹਾਣੀਆਂ ਲਿਖੀਆਂ ਹਨ। ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਹੋਂਦ ਗੁਆਚ ਜਾਣ ਦਾ ਖੋਫ਼ ਉਸ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਝਲਕਦਾ ਹੈ

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆ

1. ਸੁਰਜੀਤ ਸਿੰਘ, ‘ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਸੰਕਟ: ਰੂਪ ‘ਤੇ ਪ੍ਰਕਾਰਜ, ਸ਼ੋਧ ਪ੍ਰਬੰਧ, ਪਟਿਆਲਾ, 1995, ਪੰਨਾ- 247.
2. ਬਲਜਿੰਦਰ ਨਸਰਾਲੀ ‘ਡਾਕਖਾਨਾ ਖਾਸ’ ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ, 1995, ਪੰਨਾ-17
3. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ-17

4. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ- 36
5. ਉਹੀ ਪੰਨਾ-51.
6. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 85.
7. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 87.
8. ਉਹ ਪੰਨਾ- 85

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 170-174
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय कानूनी व्यवस्था में वक्फ संपत्तियों का स्थानः संशोधन के बाद की स्थिति का मूल्यांकन

रत्ना श्रीवास्तव
शोधार्थी
कलिंगा यूनिवर्सिटी नया रायपुर छत्तीसगढ़

सारांश –
वक्फ संपत्तियाँ मुस्लिम समुदाय द्वारा धार्मिक, परोपकारी और सामाजिक उद्देश्यों हेतु समर्पित संपत्तियाँ होती हैं, जिनका प्रबंधन व नियंत्रण वक्फ बोर्ड के माध्यम से होता है। यह शोधपत्र भारतीय कानूनी व्यवस्था में वक्फ संपत्तियों की स्थिति और उनकी कानूनी संरचना का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है, विशेष रूप से वक्फ अधिनियम में समय–समय पर हुए संशोधनों के बाद उत्पन्न परिवर्तनशील स्थिति का मूल्यांकन करता है।

मुख्य बिंदु –
वक्फ, वक्फ संपत्ति, संशोधन, न्यायालय, पारदर्शिता, अधिनियम

1.परिचय –

हाल ही में वक्फ संशोधन अधिनियम 2025 के रूप में एक नया संशोधन लागू हुआ है, जिससे कई नए प्रावधान जुड़े हैं। इन संशोधनों का मूल्यांकन यह समझने के लिए आवश्यक है कि वक्फ संपत्तियों की पारदर्शिता, उपयोगिता और संरक्षण में यह कानून कितना प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। "वक्फ संशोधन विधेयक, 2025 को 8 अगस्त 2024 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था, जिसे संसद द्वारा 4 अप्रैल 2025 को पारित किया गया तथा 5 अप्रैल 2025 को राष्ट्रपति की मंजूरी प्राप्त होने के उपरांत यह विधेयक अधिनियम का रूप लेकर वक्फ संशोधन अधिनियम 2025 बन गया।" यह अधिनियम वक्फ प्रबंधन को पारदर्शी, उत्तरदायी और जन–हितकारी बनाने की दिशा में एक समेकित प्रयास है, साथ ही कुप्रबंधन, अतिक्रमण और लंबित मुकदमों को दूर करने पर भी जोर देता है। भारत में वक्फ संपत्तियाँ एक विशेष धार्मिक और सामाजिक महत्व रखती हैं। यह संपत्तियाँ मुस्लिम समुदाय द्वारा दान की गई होती हैं और उनका उपयोग धार्मिक, धर्मार्थ और सामाजिक कल्याण के कार्यों में किया जाता है। वक्फ अधिनियम 1995 और उसके संशोधन विशेष रूप से 2013 व 2025 के द्वारा वक्फ संस्थाओं की संरचना, कार्यप्रणाली और निगरानी की व्यवस्था की गई है। वक्फ एक इस्लामी संस्था है जिसमें कोई व्यक्ति धार्मिक, परोपकारी या सामाजिक उद्देश्यों के लिए अपनी संपत्ति स्थायी रूप से दान कर देता है। भारत में वक्फ संपत्तियों की संख्या लाखों में है, जो न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक हैं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

2.वक्फ की अवधारणा, वक्फ संपत्ति और मुतवल्ली क्या है? –

वक्फ– वक्फ का शाब्दिक अर्थ होता है "रोक देना", यह एक इस्लामिक कानूनी अवधारणा है जिसका अर्थ होता है किसी संपत्ति को अल्लाह के नाम पर स्थायी रूप से धार्मिक, परोपकारी या समाजसेवा के कार्यों

हेतु समर्पित करना। एक बार वक्फ घोषित कर दिए जाने पर उस संपत्ति का स्वामित्व समाप्त हो जाता है और वह केवल धार्मिक/कल्याणकारी प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाती है।

वक्फ संपत्ति– वक्फ संपत्ति वह अचल या चल संपत्ति होती है जिसे कोई मुस्लिम व्यक्ति धार्मिक या परोपकारी कार्यों हेतु अल्लाह के नाम पर स्थायी रूप से समर्पित करता है। यह संपत्ति वक्फ के बाद उस व्यक्ति की नहीं रहती, बल्कि "अल्लाह की संपत्ति" मानी जाती है और इसका उपयोग केवल सार्वजनिक हित, धर्म, शिक्षा या समाजसेवा में किया जा सकता है।

मुतवल्ली– मुतवल्ली वह व्यक्ति होता है जिसे वक्फ संपत्ति के प्रबंधन और देखरेख की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। वह वक्फ का मालिक नहीं होता, बल्कि केवल प्रबंधक होता है अर्थात वक्फ संपत्ति को चलाने वाला व्यवस्थापक मुतवल्ली कहलाता है। मुतवल्ली की नियुक्ति वक्फ दाता द्वारा की जा सकती है। यदि दाता ने नियुक्ति नहीं की तो वक्फ बोर्ड या अदालत द्वारा भी मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। मुतवल्ली एक व्यक्ति, समिति या कभी–कभी धार्मिक संस्था भी हो सकती है।

3.भारत में वक्फ की कानूनी स्थिति–

भारत में वक्फ कानूनों की स्थिति एक जटिल लेकिन महत्वपूर्ण कानूनी, सामाजिक और धार्मिक मुद्दा है। वक्फ एक इस्लामी संस्था है जिसके अंतर्गत मुसलमान अपनी चल–अचल संपत्ति को धार्मिक परोपकारी या सामाजिक उपयोग के लिए समर्पित करते हैं। भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी धार्मिक संस्थाओं के प्रबंधन को विनियमित करने के लिए कानूनी ढांचा प्रदान करता है।

संवैधानिक मान्यता:

भारत का संविधान धार्मिक स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देता है।

अनुच्छेद 25: इस अनुच्छेद में धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार व्यक्ति को किसी धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार की स्वतंत्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 26: इस अनुच्छेद में धार्मिक संस्थाओं को अपने धार्मिक कार्य करने, संपत्ति प्राप्त करने और प्रबंधित करने का अधिकार प्राप्त है।

4.वक्फ संबंधी प्रमुख कानून–

(1)वक्फ अधिनियम 1955: यह अधिनियम भारत में वक्फ संपत्तियों के प्रशासन और प्रबंधन हेतु बनाया गया एक केंद्रीय कानून था। यह अधिनियम मुस्लिम धर्मावलंबियों द्वारा धार्मिक, परोपकारी या जनकल्याणकारी प्रयोजनों के लिए समर्पित संपत्तियों की निगरानी के लिए लागू किया गया था। इसे 1954 के अधिनियम को निरस्त कर पारित किया गया था।

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ:

राज्य वक्फ बोर्डों का गठन: प्रत्येक राज्य में एक स्वतंत्र वक्फ बोर्ड का गठन किया जाता है जो वक्फ संपत्तयों की देखरेख करता है।

केंद्रीय वक्फ परिषद: भारत सरकार द्वारा स्थापित एक वैधानिक संस्था जो राष्ट्रीय स्तर पर निगरानी करती है।

मुतवल्ली की नियुक्ति: वक्फ की संपत्तियों का प्रबंधन मुतवल्ली द्वारा किया जाता है।

वक्फ रजिस्टर: सभी वक्फ संपत्तियों का पंजीकरण अनिवार्य है।

वक्फ न्यायाधिकरण: वक्फ से संबंधित विवादों के निपटान हेतु विशेष न्यायिक प्रधिकरण की स्थापना की गई।

(2) संशोधन और सुधार (2013 और 2025)

वक्फ संशोधन अधिनियम 2013:

- संपत्तियों की बेहतर सुरक्षा के लिए वक्फ संपत्तियों पर अतिक्रमण के विरूद्ध सख्त प्रावधान बनाया गया।
- रजिस्ट्रेशन और म्यूटेशन की प्रक्रिया को अनिवार्य बनाया गया।

वक्फ संशोधन अधिनियम 2025:

- वक्फ संपत्तियों के डिजिटल रिकॉर्ड्स की व्यवस्था की जाएगी।

- सार्वजनिक सूचना पोर्टल पर वक्फ भूमि की सूची अपलोड करना अनिवार्य है।
- अवैध कब्जे की स्थिति में पुलिस सहायता प्राप्त करने का अधिकार है।
- ट्रिब्यूनल की प्रक्रिया में पारदर्शिता और समयबद्ध न्याय सुनिश्चित किया गया है।

5.मुख्य संशोधन के प्रभावों का मूल्यांकन –

(1) प्रशासनिक संरचना में सुधारः

- वक्फ बोर्डों की भूमिका को स्पष्ट किया गया तथा उनके अधिकार बढ़ाए गए।
- डिजिटल रिकार्डिंग को अनिवार्य किया गया जिससे वक्फ संपत्तियों की पहचान और निगरानी आसान हो सके।

यह पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इससे फर्जी दावों और संपत्ति हड़पने के मामलों में कमी आएगी।

(2) वक्फ संपत्तियों की सुरक्षाः

- संशोधन में बिना अनुमति वक्फ संपत्तियों के अतिक्रमण पर सख्त दंड का प्रावधान किया गया है।
- भूमि के म्यूटेशन और रजिस्ट्री में वक्फ बोर्ड की सहमति आवश्यक की गई है।

संपत्ति की रक्षा में यह प्रभावी कदम है, लेकिन जमीनी स्तर पर इसके क्रियान्वयन में प्रशासनिक जटिलताएँ बनी हुई हैं।

(3) जनसुनवाई और शिकायत निवारणः

- शिकायत समाधान तंत्र को मजबूत किया गया, वक्फ ट्रिब्यूनल की शक्तियाँ बढ़ाई गईं।
- आम जनता को ऑनलाइन शिकायत करने का अवसर मिला।

इससे हितधारकों को न्याय पाने में सुविधा होती है, परन्तु कई राज्यों में ट्रिब्यूनल की संख्या अपर्याप्त है।

(4) मुतवल्लियों की नियुक्ति और जिम्मेदारीः

- योग्यता आधारित मुतवल्ली नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।
- वित्तीय रिपोर्टिंग और लेखा परीक्षा अनिवार्य की गई है।

यह कदम वक्फ प्रबंधन की दक्षता बढ़ा सकता है, परन्तु स्थानीय स्तर पर पारदर्शिता अभी भी चुनौती बनी हुई है।

6.न्यायालयों की भूमिका और महत्वपूर्ण निर्णय –

भारतीय न्यायपालिका ने वक्फ कानूनों की व्याख्या, अनुप्रयोग और कार्यान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वक्फ संपत्तियों के संरक्षण, प्रबंधन, अधिकारों की रक्षा तथा उत्पन्न विवादों के समाधान में न्यायालयों की भूमिका निर्णायक रही है। वक्फ अधिनियम 1995 और उसके संशोधनों की वैधता, मुतवल्ली के अधिकार, सरकारी हस्तक्षेप की सीमा और समुदाय की भागीदारी जैसे मामलों में न्यायपालिका ने मार्गदर्शन प्रदान किया है।

महत्वपूर्ण निर्णय–

- **राजस्थान वक्फ बोर्ड बनाम राधा किशन (1979 एआईआर 289)**
  सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि वक्फ अधिनियम धर्मनिरपेक्ष उद्देश्य को पूरा करता है और इसमें न्यायिक दखल हो सकता है यदि वक्फ संपत्ति का गलत उपयोग हो रही हो। यह निर्णय वक्फ बोर्ड के अधिकारों को सीमित करता है जहाँ गैर–मुस्लिम हित भी जुड़े हों।
- **सैय्यद अली बनाम आंध्र प्रदेश वक्फ बोर्ड (1998 एआईआर 972)**
  यह निर्णय वक्फ संपत्ति के निर्धारण के लिए वक्फ ट्रिब्यूनल की शक्ति और सीमाओं को स्पष्ट करता है। सुप्रीम कोर्ट ने ट्रिब्यूनल को एक न्यायिक मंच माना जिसे वक्फ संबंधी विवाद निपटाने का अधिकार है।
- **रमेश गोविन्दराम बनाम सुगरा हुमयुन मिर्जा वक्फ (2010 एआईआर एसी 2897)**

सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि किरायेदार और वक्फ के बीच के विवाद सिविल कोर्ट में लाए जा सकते हैं, ट्रिब्यूनल की शक्ति सीमित है।

- **मो. मुइन्नुद्दीन बनाम बिहार राज्य (पटना हाईकोर्ट, 2021)**
  पटना उच्च न्यायालय ने वक्फ संपत्तियों पर अवैध कब्जे को हटाने का आदेश दिया और वक्फ बोर्ड की निष्क्रियता की आलोचना की।
- **राजस्थान वक्फ बोर्ड बनाम राज्य सरकार (2022):**
  इस मामले में न्यायालय ने वक्फ बोर्ड की संपत्ति पर सरकारी अधिग्रहण को अवैध ठहराया गया।
- **मुहम्मद इमरान बनाम उत्तर प्रदेश वक्फ बोर्ड (2024):**
  इस मामले में न्यायालय में डिजिटल रिकार्ड के अभाव में अतिक्रमण का मामला खारिज किया गया।

इन निर्णयों से स्पष्ट है कि न्यायपालिका ने वक्फ कानूनों में संतुलन बनाए रखने की कोशिश की है। एक ओर धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए, दूसरी ओर पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और सार्वजनिक हित सुनिश्चित किया है। न्यायालयों के निर्देशों ने वक्फ अधिनियमों के कार्यान्वयन को सशक्त किया है और समुदाय के अधिकारों की रक्षा में सहायक रहे हैं।

7.निष्कर्ष –

वक्फ संपत्तियों का भारतीय कानूनी ढांचे में विशिष्ट स्थान है। हालिया संशोधनों ने पारदर्शिता, जवाबदेही और संवैधानिकता के दृष्टिकोण से सकारात्मक प्रयास किए हैं। फिर भी व्यावहारिक स्तर पर इनके क्रियान्वयन में कई अड़चनें हैं जिन्हें संस्थागत सुधारों व प्रशासनिक इच्छाशक्ति के माध्यम से दूर किया जा सकता है। भारत में वक्फ कानूनों की स्थिति संविधानिक संरक्षण, राज्य नियंत्रण और धार्मिक आस्था के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करती है। हालांकि व्यावहारिक स्तर पर प्रबंधन की अक्षमता, राजनीतिक दखल और कानूनी विवाद वक्फ संपत्तियों के संरक्षण में बड़ी बाधाएँ हैं। जब तक वक्फ बोर्डों को स्वतंत्र, तकनीकी रूप से सक्षम और जवाबदेह नहीं बनाया जाता, तब तक ये संशोधन अपने उद्देश्य को पूरी तरह नहीं प्राप्त कर सकते।

सुझाव –

1. वक्फ बोर्डों को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त किया जाए।
2. सभी वक्फ संपत्तियों का जीआईएस आधारित डिजिटल रिकॉर्ड तैयार किया जाए।
3. मुतवल्लियों और वक्फ अधिकारियों को नियमित प्रशिक्षण दिया जाए।
4. सिविल सोसाइटी और समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा दिया जाए।

8.संदर्भ सूची –

(1) http://epaper.navabharat.news/news/755114/67f1adea89b62?fbclid=lwY2xjawLB5HlleHRuA2FlbQlxMQABHoowEcWxSROpbheSuf2D1dQYX5jYJawcnutGq3FU-qZHajHOuBYY3Yx34fA_aem_ZRJs79ZAeZlWFfhLd8gZ5w

(2) https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2118426#:~:text=%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B2%20%E0%A4%B9%E0%A5%80%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%B5%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%AB%20%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B6%E0%A5%8B%E0%A4%A7%E0%A4%A8,%E0%A4%B8%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A5%8B%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%AE%20%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%A5%E0%A4%BE%E0%A4%93%E0%A4%82%20%E0%A4%95%E0%A5%8B%20%E0%A4%85%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%AF%E0%A4%BE%20%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A5%A4

(3) https://www.scobserver.in/cases/constitutionality-of-the-waqf-amendment-act-2025-asaduddin-owaisi-v-union-of-india/#:~:text=2025%20%E0%A4%95%E0%A4%BE%20%E0%A4%B8%E0%A4%8

2%E0%A4%B6%E0%A5%8B%E0%A4%A7%E0%A4%A8%20%E0%A4%AD%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%AF%20%E0%A4%95%E0%A5%80%20%E0%A4%B5%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%AB%20%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%AA%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%82,%E0%A4%B6%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BF%E0%A4%B2%20%E0%A4%95%E0%A4%B0%E0%A4%A8%E0%A5%87%20%E0%A4%95%E0%A5%8B%20%E0%A4%AD%E0%A5%80%20%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AF%20%E0%A4%AC%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BE%20%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A5%A4

(4) https://www.jagran.com/news/national-waqf-amendment-bill-2025-what-is-change-after-law-key-changes-impact-and-legal-reforms-explained-23913694.html

(5) https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/waqf-amendment-bill-2024#:~:text=%E0%A4%9A%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%9A%E0%A4%BE%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%82?%20%E0%A4%B5%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%AB%20(%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B6%E0%A5%8B%E0%A4%A7%E0%A4%A8)%20%E0%A4%85%E0%A4%A7%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%AE%2C%202025,%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8C%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%97%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A5%80%20%E0%A4%95%E0%A5%87%20%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%97%20%E0%A4%95%E0%A5%8B%20%E0%A4%AC%E0%A4%A2%E0%A4%BC%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A4%BE%20%E0%A4%A6%E0%A5%87%E0%A4%A8%E0%A4%BE%20%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A5%A4

(6) https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/proposed-amendments-in-waqf-act-1995#:~:text=in%20Islamic%20principles.-,Waqf%20Board,-%3A

(7) https://www.sanskritiias.com/hindi/current-affairs/the-wakf-amendment-act-2025

(8) https://www.thehindu.com/news/national/waqf-amendment-act-supreme-court-hearing-cji-gavai-live-updates-may-22-2025/article69604656.ece

(9) https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2118799

(10)https://vajiramandravi.com/upsc-exam/waqf-amendment-act-2025/

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 175-178
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रवासी हिन्दी कथा साहित्य में वर्णित वृद्ध स्त्रियों की स्थिति

मोना सिंह
शोधछात्रा,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रकृति के द्वारा धरती का शृंगार कर सृजनशीलता के नित्य नए उपमानों को गढ़ते हुए संसार की जो परिकल्पना प्रारंभ में की गई होगी उसे साकार करने का श्रेय विविध जातियों के नर - मादा की समानतम सहभागिता को दिया गया होगा, किन्तु कालातर में मनुष्यों की पुरुष जाति ने वर्चस्व स्थापित करते हुए स्त्रियों के अनन्यतम योगदान को अहं के तले कमतर सिद्ध करने में कोई कमी शेष न रखी। स्त्रियों को परम्पराओं, संस्कारों और रूढ़ियों में बांधकर स्त्री के सर्वांगीण विकास में बाधक तो पुरुष बना, इसके साथ ही निर्धारित नियमों से यदि स्त्री ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु कदम आगे बढ़ने का प्रयास भी किया तो उसे अनेक लांछनाएं दी गई। निर्धारित सीमा रेखा के उल्लंघन को नारी गरिमा का हनन मानकर उसका शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सृजनात्मक शोषण किया गया जिसकी प्रतिपूर्ति स्त्री द्वारा अपने प्राणों की आहुति देकर ही शान्त की जा सकी। 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' लेखन की परम्परा में स्त्रियों की स्थिति को उजागर करने की मांग करता है। हिन्दी साहित्य में मीराबाई, मृदुला गर्ग, महादेवी वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, प्रभा खेतान तथा नासिरा शर्मा प्रभृति लेखिकाओं ने लेखन के द्वारा साहित्य को नवीन दृष्टि प्रदान की है। स्त्री की दृष्टि से समाज, परिवार, पुरुष तथा स्वयं स्त्री अपने उसी स्वरूप में चित्रित हुए हैं जिस स्वरूप को स्त्रियों स्वयं देखती हैं। भारतीय हिन्दी साहित्य में लेखिकाओं ने समाज के विविध रूपों के साथ-साथ हाशिए के समाज के विमर्शों यथा दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श तथा वृद्ध विमर्श पर भी अपने लेखनी के द्वारा उनकी घनीभूत पीड़ा को उजागर करते हुए समाज को नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है।

समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है विशेषकर एक स्त्री के जीवन का आधार ही परिवार है जहाँ वह अपना सम्पूर्ण जीवन निर्वाह करती है। जब तक अपनी उम्र के अन्तिम पड़ाव पर पहुंचती है तो उसे पति, पुत्र, पुत्री, नाती, पोते आदि से लगाव इतना बढ़ जाता है कि वह प्रत्येक दशा में उनके साथ जीवन जीते हुए ही अन्तिम सांस लेने में ही जीवन की सार्थक परिणति समझती है। यदि पति-पत्नी दोनों वृद्धवस्था तक साथ रहते है तब तो अपने सुख - दुख को एक दूसरे से कहकर मन को शान्त कर लेते है किन्तु यदि कोई एक जीवित रहता है तो वह अपने मनोभावों को अपनी ही संतानों के समक्ष अभिव्यक्त करने में संकोच करते हैं। कभी - कभी परिस्थिति इतनी प्रतिकूल हो जाती है कि कोई भी संतान अपने साथ माता-पिता को रखना पसन्द नहीं करते और उन्हें वृद्धाश्रम में जीवन के अन्तिम दिनों को गुजारना विवशता बन जाती है।

प्रवासी साहित्य में भारतीय बुजुर्गों की स्थिति का अध्ययन करने के साथ-साथ यूरोपीय देशों में बसे वृद्धों की स्थिति का भी अत्यन्त मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया है। वे बुजुर्ग जो अपनी मिट्टी, अपने देश से कटकर पराए

देश में जीवन जीने को विवश है उन्हें अपनी सन्तानों से दूर रहकर शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से दोहरी मार झेलनी पड़ती है। 'पुष्पिता अवस्थी की कहानियों में भारतीय एवं पाश्चात्य सामाजिक परिवेश' लेख के अन्तर्गत संगीता सोलंकी लिखती है, "यूरोपीय समाज में बुजुर्ग कभी न समाप्त होने वाला संघर्षपूर्ण जीवन यापन कर रहे है। पहले इन्होंने अपना और अपनी संतान का भविष्य सुरक्षित करने के लिए संघर्ष किया और अब अपनों की उपेक्षा को सहने और प्रेम प्राप्त होने की अपूर्ण इच्छाओं से संघर्ष कर रहे हैं..... किन्तु सब कुछ अच्छे से अच्छा होने के बाद भी बुजुर्ग वहाँ खुश नहीं रह पाते क्योंकि एक तो उन्हें भारतीय परम्परानुसार परिवार के साथ रहने एवं मान-सम्मान मिलने की इच्छा सालती रहती है और दूसरे वहाँ के कर्मचारियों के लिए वे 'बूढ़े व्यक्ति' से अधिक कुछ नहीं होते हैं। उनके लिए न तो इसका कोई नाम है और न उनसे कोई सम्बन्ध।"[1] वृद्धाश्रम में रहने को कमरा अवश्य मिलता है लेकिन भावनात्मक जुड़ाव नहीं मिलता। उम्र की जिस अवस्था में अत्यधिक अपनत्व, प्रेम, सहयोग, साथ एवं देखभाल की आवश्यकता होती है उस समय अपनी संताने रोजगार, प्रदर्शन प्रियता एवं भौतिकतावाद की होड़ में इतने व्यस्त होते हैं कि अपने ही माता - पिता को नजरअन्दाज करने लगते है जिसकी अथाह पीड़ा उन्हें अकेले ही भोगनी पड़ती है।

भारतीय परिवेश एवं विदेशों में वृद्ध स्त्रियों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती कहानी 'काश! ऐसा होता' में भारत में रह रही वृद्ध विधवा स्त्री अपनी संतानों का पालन पोषण करते हुए जीवन काट देती है तथा दूसरी शादी के विषय में सोचना भी पाप समझती है वहीं विदेशी संस्कृति में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार प्राप्त होने के कारण हाइडी आंटी निःसंकोच जार्ज से चर्च में विवाह कर लेती है जबकि भारत में रहने वाली माँ अपने ही पुत्र एवं पुत्रवधुओं के द्वारा तिरस्कृत होकर एकाकी जीवन जीने को विवश है। 'माँ की चमकती आँखे और मुस्कराते होंठ बुझ से गए हैं। माँ का दोमंज़िला पैतृक घर है, जिसके निचले हिस्से में मेरा बड़ा भाई और ऊपरी मंज़िल पर छोटा भाई रहता है। माँ, छह महीने बड़े भाई और छह महीने छोटे भाई के पास रहती है।..... माँ अकेली रह जाती है।[2] माँ अपने जीवन का खालीपन अपने पोते-पोतियों को पालने में गुजार देती है जब यही बच्चे बड़े हो जाते है तो माँ को वृद्ध एवं निरर्थक व्यक्ति समझकर अपमानित करते हैं। विदेशों में भी संताने अपने माता - पिता को साथ नहीं रखते किन्तु वहाँ के परिवेश में इतनी अनुकूलता है कि पुरुष हो या स्त्री, उम्र के किसी भी पड़ाव में जीवनसाथी चुनने के लिए स्वतन्त्र है चाहे उनकी संताने उनके निर्णय से सहमत हो अथवा नहीं।

'प्रात तव द्वार पर' कहानी में पुष्पिता अवस्थी उस अविवाहित वृद्ध स्त्री की मनोदशा का वर्णन करती हैं जो अपनी भांजी को साथ रखकर न केवल उसका लालन-पालन करती है बल्कि एक शिक्षिका होने के कारक शिक्षा - दीक्षा पर भी विशेष ध्यान रखती थी। किन्तु भांजी कंचन के ड्रग आसक्त लोगों की संगति में पड़ जाने के कारण वह अपनी ही बुआ कुसुम को पैसों के लिए दबाव बनाने लगी जिसके कारण वे रिटायर होने के बावजूद संस्था की ओर से हॉस्टल में वार्डन बन गई। वहाँ भी उसने अपनी बुआ की वृद्ध अवस्था का ध्यान न रखते हुए उन पर जानलेवा हमला कर दिया जिसके कारण उनकी मौत हो जाती है। " सुबह - सुबह वह अपने नाम मकान लिखवाने का कागज़ लेकर हस्ताक्षर के लिए वार्डन कुसुम के पास पहुंची। कुसुम गुरुजी ने कड़े शब्दों में विरोध किया। उन्होंने उसे कमरे से बाहर निकल जाने को कहा। परिणामस्वरूप दोनों के बीच आपाधापी और मारा - मारी हुई। इतनी कि आख़िर इसी में कुसुमजी की हत्या हो गई। सुना है- बिस्तर पर टूटे हुए बाल पड़े थे- खींचतान के। मुँह पर तकिया रखकर दम घोंट कर हत्या की गई थी। "[3] एक ओर जहाँ व्यक्ति अपनी ही संतानों से पीड़ित है वहीं दूसरी ओर अविवाहित वृद्ध स्त्रियाँ यदि अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए सम्बन्धियों के बच्चों को रखते हुए उनके अच्छे एवं व्यवस्थित जीवन की व्यवस्था करती है ताकि न शिक्षित एवं सुसंस्कृत जीवन जीते हुए उनके भी भविष्य में साथ दे सकें। किन्तु वहीं बच्चे बुढ़ापे का सहारा न बनकर उनकी दर्दनाक मौत का कारण बनते हैं।

पुष्पिता द्वारा रचित कहानी' देहिया' वृद्ध स्त्री के उस पक्ष को कटु यर्थाथ के साथ रखती है जो सहदय को झकझोर कर रख देने में सक्षम है। माँ अपनी युवावस्था में अपने पति एवं बच्चों के साथ रहते हुए अपनी ख्वाहिशों की उपेक्षा करते हुए यत्न से बचाए हुए पैसों को बच्चों की खुशी के लिए उन्हें दे देती है ताकि उन्हें किसी वस्तु की कमी का अनुभव न हो, वहीं माँ अपनी वृद्धावस्था में अजनबी विदेशियों के बीच अन्तिम सांस तक संघर्ष करने को विवश है किन्तु उसको सहृदयता एवं दयालु हृदय वृद्धाश्रम के दरवाजे में रहकर प्रतीक्षा करने हेतु विवश करता रहता है। " कमरा नं 515 के आधे किवाड़ खुले हुए थे। उसके खुले हुए हिस्से में प्रतीक्षा के सहारे अपने देह अटकाये हुए साँस माँ खड़ी थीं। पचासी वर्ष की आँखों को धुंधला दिखता है, पर दिमाग को पूरी दुनिया और उसका प्रपंच बहुत साफ सूझता है। कभी तो उघार के सब धर देती हैं और कभी लिहाज में चुप्पी लगा जाती है फिर भी मुद्राएँ सब हक़ीक़त बयां कर देती है।"[4] वृद्धावस्था एक ऐसा पड़ाव बन जाता है जिसमें जीवन बिताना नहीं बल्कि जीवन को मृत्यु की प्रतीक्षा में काटना होता है।

भारतीय जब विदेशों में जाकर सम्पन्न जीवन जीने लगते है तब वह अपनी प्रगति एवं स्वार्थ में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि वह अपने ही माता-पिता की देखभाल नहीं कर पाते और कभी स्वार्थ के वशीभूत होकर तो कभी विवशता के कारण उन्हें वृद्धालयों में छोड़ आते हैं। पुष्पिता अवस्थी की कहानी 'विन्टरकोनिंग' यूरोपीय देशों में सरकारी सहयोग से वृद्धालयों के संचालन की व्यवस्था की बात को उजागर करती है किन्तु वृद्धालय कभी घर जैसा सुकून एवं अपनेपन की अनुभूति कराने वाली भावना को जन्म नहीं दे सकता। आधुनिकता के कारण विदेश में बसे भारतीय भी स्वार्थपरक एवं असंवेदनशील हो गए हैं। उनके मन में अपने ही माता - पिता के प्रति मान - सम्मान कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप न तो वे उनकी विवशता को समझ पाते है और न ही उनके कष्टों की उन्हें अनुभूति ही होती है। हमें माँ के पास भी चलना है वह इंतजार कर रही होगी। अभी वह हफ्ते भर पहले घर से ही फ्लैखलस-ओल्ड हाउसेस में गई है। जिंदगी भर परिवार में रही है इसलिए अकेले कमरे में डर लगता होगा.... अभी वह वहाँ घुली मिली नहीं है... न डायनिंग हॉल में लंच लेती है..... सुनकर शीला को लगा कि बयासी वर्ष की अकेली माँ में अब कौन-सी अभिलाषा बची होगी। कौन-सा खाना?..... सब बन गए जब, तब अपना - अपना सबने घर बसा लिया और कुछ ऐसे बना लिया कि माँ - बाप के लिए किसी के पास न जगह बची और न ही समय बचा।"[5] भौतिकतावादी सोच एवं आधुनिकता की दौड़ ने इंसान को इतना स्वार्थी बना दिया कि एकाकी जीवन जीकर अपने बच्चों का पालन-पोषण करने वाली माँ भी उन्हें नहीं दिखती। वह वृद्धालयों में दूसरे देश के वृद्धों के साथ बचा हुआ जीवन जीने को बाध्य हैं जिनसे न वह अपने भावों की अभिव्यक्त करने में सक्षम है और न ही उनकी संस्कृति में स्वयं को व्यवस्थित ही कर पाती है।

कहानी 'कमरा नंबर 103' में सुधा ओम ढींगरा भारतीयों के उस संवेदनहीन एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण से अवगत कराती है किसे जो न केवल प्रवासियों के झूठे भावनात्मक खेल का अनावरण करती है प्रत्युत की संवेदनहीनता की पराकाष्टा को भी उजागर करती है। कहानी बार्नज़ अस्पताल की दो नर्सों टेरी एवं ऐमी के संवाद से प्रारम्भ होती है। दोनों नर्से जो कमरा न० 103 में बेहोश मिसेज वर्मा की देखभाल करती है जो अपने ही बेटे और बहू द्वारा सताई जाने के कारण अवचेतन अवस्था तक पहुंच गई। भारत में माँ का घर बेचकर अमेरिका पोते-पोती के मोट का लोभ दिखाकर लाई गई मिसेज वर्मा अपने ही बेटे पर बोझ बन जाती है। घर का काम करने पर मानसिक प्रताड़ना को सहने के कारण एक बार बेहोश हुई तो फिर न उठ सकी। वृद्धावस्था में जन्मभूमि से काटकर लाई गई मिसेज नर्मा का हृदयविदारक स्थिति का उद्धरण दृष्टव्य है, जिसमें वह भावनात्मक रूप से बिखरने के बाद भी पुत्र मोह से विलग नहीं हो पाती। "बहू का गर्भ गिर गया और में उन पर बोझ बन गई। मैं बच्चे की देखरेख के लिए लाई गई थी, मेरा अब वहाँ क्या काम था.... पर मैं कहाँ जाती? घर बेचकर आई थी, और उस पैसे से बेटे ने अपने घर की किस्ते चुका दी थीं । स्वाभिमान मारकर बैठी रही। अचानक एक दिन बेटे को नौकरी से जवाब मिल गया। अब मैं

उस घर में दीवार पर लगा मकड़ी का जाला थी, जिसे वे उतारकर फेंकना चाहते थे।"[6] स्वार्थपूर्ति के पश्चात् वृद्ध स्त्री चाहे वह माँ ही हो किसी काम की सिद्धि हेतु यदि नहीं रहीं तो वह अवांछनीय वस्तु बनकर रह जाती है।

प्रवासी साहित्य में लेखिकाओं ने वृद्ध स्त्रियों की स्थिति का यथार्थपक्ष उजागर करते हुए उनके प्रति होने वाले संवेदनहीन व्यवहार को निष्पक्ष रूप से चित्रित किया है। एक स्त्री जो बुढ़ापे में अपनी संतानों पर आश्रित रहने हुए उनसे अनेक अपेक्षाएं जोड़ लेती है वहीं संतान माँ के वृद्ध होने पर उन्हें वे आँख दिखाने लगते हैं। वहीं अनेक वृद्ध महिलाएँ अपनी इच्छाशक्ति के बल पर अपने लिए नई राहें स्वयं तलाश कर लेती हैं। दिव्या माधुर की 'कबाड़' कहानी मनोबल के उस स्तर को दर्शाती है जब कि अनेक व्यक्ति अपने जीवन से हार मान जाते है। कैंसर से ग्रस्त इन्दिरा ने अपने जीवन को नया मोड़ देने का सार्थक प्रयास करते हुए स्वयं को रुचिकर लगने वाले कार्यों में व्यस्त रहने लगी तथा स्वयं को लिए बेटे - बहु पर आश्रित न करते हुए अपने मित्रों के साथ अन्तिम श्वांस लेने का निर्णन करती है। 'इन्दिरा जब थोड़ी ठीक हुई तो वह उनके साथ कैंसर रिसर्च चैरिटी के कार्य में लग गई। उन्हें लगा कि बुढ़ापा भी अच्छी तरह से काटा जा सकता था, कभी तो डांसिंग में जाती तो कभी टी पार्टीज में, बिंगो का तो उन्हें ऐसा चस्का लगा कि हर शाम को वह विक्टोरिया क्लब में बिंगो खेलने जाने लगी अब उन्हें घर में रहने की फुर्सत ही नहीं मिलती थी। "[7] वृद्धावस्था में स्वयं के लिए सोचना एक प्रशंसात्मक निर्णय है। आज की स्थितियों को देखने हुए प्रबल आवश्यकता है कि प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन के हर पड़ाव की अपनी इच्छा एवं खुशी के अनुसार जीने के लिए पहल करनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. समुंदर पार में भारतीय मन प्रवासी साहित्यकार, पुष्पिता अवस्थी, पेज न. 216 -217, सम्पादक डॉ० एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर
2. 10 प्रतिनिधि कहानियाँ, सुधा ओम ढींगरा, पेज. न. १२३, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
3. कंत्राकी बागान और अन्य कहानियां, पुष्पिता अवस्थी, पेज न. २७, अन्तिका प्रकाशन, प्रा.लि. उ.प्र.
4. कंत्राकी बागान और अन्य कहानियां, पुष्पिता अवस्थी, पेज न. २१३, अन्तिका प्रकाशन, प्रा.लि. उ.प्र.
5. कांत्राकी बागान और अन्य कहानियाँ , पुष्पिता अवस्थी ,पेज न. १४७, अन्तिका प्रकाशन, प्रा.लि. उ.प्र.
6. कमरा न. 103, सुधा ओम ढींगरा, पेज न. 41, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, उ. प्र.
7. मिट्टी की सुगन्ध, उषा राजे सक्सेना, पेज न. -172, मेधा बुक्स, दिल्ली

Kumarimona.141987@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 179-182
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी ग़ज़ल के जनक

हरिओम माहौर
शोधकर्ता,
प्रो0 नीलू शर्मा
विभागाध्यक्ष,
संगीत विभाग, कला संकाय दयालबाग डीम्ड विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश

सारांश– ग़ज़ल का नाम सुनते ही सर्वप्रथम उर्दू ग़ज़ल का चित्रण प्रकट होता है। जबकि उर्दू भाषीय ग़ज़लों में भी प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषा के शब्दों का प्रयोग चला आ रहा है। उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता का कारण इसमें हिन्दी भाषा के शब्दों का समाहित होना है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र के पूर्व काल से ही हिन्दी ग़जलों की एक सुदीर्घ परम्परा विकसित है, किन्तु हिन्दी ग़ज़ल के जनक या उत्पत्तिकर्ता के बारे में अनेकों विचार धाराऐं उपलब्ध हैं। उर्दू ग़ज़ल छन्दशास्त्र से प्रभावित होकर अनेकों कवियों ने हिन्दी काव्य साहित्य को अपनाया है। वर्तमान ग़ज़ल विधा उस तरह की नही है जैसी अपने जन्म के समय थी। आज की ग़ज़ल हिन्दी–उर्दू भाषा के साथ अन्य भाषाओं के शाब्दिक मिश्रण से पल्लवित हो रही है। प्रयोगवादी कवियों की श्रृंखला ने भी हिन्दी ग़ज़ल की अभिव्यक्ति को नया रूप–रंग प्रदान किया। इस प्रकार हिन्दी ग़ज़ल के जनक की पुष्टि प्रमाणिकता से सिद्ध होनी चाहिए। इस शोध पत्र के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के जनक का निर्धारण किया गया है।

हिन्दी ग़ज़ल की परिभाषा– हिन्दी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल के समकक्ष लाने का कार्य दुष्यंत कुमार एवं शमशेर बहादुर सिंह ने सशक्त रूप मे किया। शमशेर बहादुर सिंह का कहना है कि– ''ग़ज़ल एक लिरिक विधा है, जिसकी कुछ अपनी शर्तें हैं, अपना प्रतीकवाद है, अपनी जीवन्त परम्परा है।''1

कुँवर बैचेन कहते हैं कि– ''ग़ज़ल रेगिस्तान के प्यासे होठों पर उतरती हुई शीतल तरंग कर उमंग है। ग़ज़ल घने अन्धकार में टहलती हुई चिंगारी है। ग़ज़ल नींद से पहले का सपना है। ग़ज़ल जागराण के बाद का उल्लास है। ग़ज़ल गुलाबी पंखुड़ी के मंच पर बैठी हुई खुशबु का मौन स्पर्श है।''2

भारतीय काव्य साहित्य के परिवेश में ग़ज़ल काव्य की एक महत्वपूर्ण व लोकप्रिय भूमिका है। ग़ज़ल काव्य का मूल स्वरूप वैदेशिक होने के पश्चात् भी इसकी भावपक्षीय अभिव्यक्ति ने हिन्दी भाषा के काव्य को प्रबलता से आकर्षित किया है। हिन्दी ग़ज़ल में उर्दू–फारसी के कठिन शब्दों के स्थान पर हिन्दी भाषा एवं दैनिक बोलचाल के शब्दों का प्रयोग कर देवनागरी लिपि में ग़ज़लों का निर्माण किया गया। ग़ज़लों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में वाड्.मय में भी आदिकाल से विद्यमान रहा है। यद्यपि उर्दू–फारसी ग़ज़लों की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर आधुनिक काल के कवियों ने ग़ज़ल विधा को प्रयासपूर्वक अपनाया है, किन्तु प्राचीन काल से ही हमारे साहित्य में किसी न किसी रूप में ग़ज़ल के तत्व विद्यमान रहे हैं। वर्तमान से लेकर भारतेन्दु युग एवं उसके पूर्व के हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण करने से ज्ञात होता है कि, इस समय के कवियों ने स्वाभाविक रूप से ग़ज़लों के छन्दों को अपनाया है। इनकी ग़ज़लों में अनुकरण की दुर्गन्ध नही, अपितु मौलिकता की सुवास का आभास मिलता है।3 उर्दू–फारसी ग़ज़लों की शाश्वत लोकप्रियता के घने बादलों के साये में भारतीय कवियों व साहित्यकारो ने प्रयोगवादी कविता के रूप में अपनी प्रतिभा का मार्ग ग़ज़ल काव्य

में खोजना प्रारम्भ किया। भारतेन्दु युग की खड़ी बोली के काव्य–सृजन में अनेकों कवियों ने उर्दू छन्दशास्त्र का सहारा लेकर अपनी रचनाओं में ग़ज़ल के तत्वों का समायोजन किया। उर्दू–फारसी ग़ज़ल शैली की प्रेरणा को आत्मसात कर प्रयोगवादी नई कविताओं के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल को अभिव्यक्त किया।

हिन्दी ग़ज़लों का जन्म उर्दू भाषीय ग़ज़लों की प्रेरणा से हुआ। इस कथन की पुष्टि उर्दू भाषा के विद्वान फारूख़ साहब ने किया है कि– विषय वस्तु की दृष्टि से उर्दू और हिन्दी की ग़ज़लों में अन्तर स्पष्ट करते हुऐ हिन्दी ग़ज़लों में उर्दू शब्द का प्रयोग भी किया गया है।4 उर्दू भाषा में उच्चारण के अनुसार ह्रस्व वर्णों को दीर्घ तथा दीर्घ वर्णों को ह्रस्व बोला जा सकता है किन्तु हिन्दी भाषा में यह प्रावधान नहीं है। कालान्तर में उर्दू भाषा का परिष्कार करते हुऐ हिन्दी भाषा की शुद्धता बनाये रखकर अनेकों कवियों ने उर्दू शब्दों का त्यागकर शुद्ध हिन्दी भाषा में ग़ज़लों का निर्माण विशुद्ध रूप से किया। ग़ज़लों में निहित संक्षिप्तता तथा भावों की अनुभूति की तीव्रता के कारण ही हिन्दी ग़ज़ल का उदय हुआ। सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो आधुनिक हिन्दी ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार को हिन्दी ग़ज़ल का जनक मान लिया जाता है किन्तु दुष्यन्त कुमार हिन्दी ग़ज़ल के जनक नही उन्हें हिन्दी ग़ज़ल की आग को हवा देने वाला या उन्नयन करने वाला माना जा सकता है। दुष्यन्त कुमार त्यागी का जन्म 1975 में हुआ था तथा हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने के पश्चात् यह तथ्य भी प्रकाश में आते हैं कि प्राचीन काल के कवियों की रचनाओं में भी कहीं–कहीं ग़ज़ल के तत्व शामिल हैं।5 इस कथन से यह प्रमाणित होता है कि दुष्यन्त कुमार हिन्दी ग़ज़ल के जनक नही हैं।

हिन्दी ग़ज़ल का मूल जनक कौन है इस बात की पुष्टि करने हेतु हमें ग़ज़ल के प्रारम्भिक काल का अध्ययन करना आवश्यक है। ग़ज़ल अपने मूल रूप में फारसी साहित्य से भारत में आयी थी। उस समय यह कसीदा के रूप में चलन में थी। इस काल में उर्दू भाषा का जन्म नही हुआ था। लेकिन ऐसे प्रमाण साहित्य से प्राप्त होते हैं कि उर्दू भाषा के विकास से पूर्व भी हिन्दी में ग़ज़लों का निर्माण किया गया। यदि हम पूर्व भारतेन्दु युग के कवियों के कृतित्व का अध्ययन करें तो हमें उनके साहित्य में भी ग़ज़ल परम्परा के तत्व बीज रूप में मिलते हैं। जब फारसी ग़ज़लों का अनुकरण कर भारतीय मुस्लिम कवियों या शायरों ने ग़ज़लों का निर्माण करना प्रारम्भ किया तो कुछ अन्य कवियों ने फारसी ग़ज़लों से प्रभावित होकर ऐसी ग़जलों का निर्माण किया जिनके शेरों की एक पंक्ति में फारसी तथा दूसरी पंक्ति में हिन्दी भाषा के शब्द या अंश थे। इन कवियों ने अरबी तथा फारसी शब्दों का हिन्दीकृत कर अपनी ग़ज़लों का निर्माण किया। इन कवियों में अमीर ख़ुसरो का नाम विशेष रूप से अग्रणी है। सन्त कबीर ने भी हिन्दी की आम बोलचाल की भाषा में कतिपय ग़ज़ल लिखी एवं अपनी ग़ज़लों के माध्यम से ज्ञानमार्गीय परम्परा के तत्व तथा धार्मिक आडम्बरों का खण्डन प्रस्तुत किया। 1700 ई0 तक अमीर ख़ुसरो और कबीर की ग़ज़लों की परम्परा को कवि प्यारेलाल शोकी ने परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया।6

इस प्रकार ग़ज़ल के प्रारम्भिक काल का अध्ययन करने के पश्चात् अमीर ख़ुसरो, कबीर एवं प्यारेलाल शोकी हिन्दी ग़ज़लों के तीन स्थाई स्तम्भों की पुष्टि होती है। किन्तु प्रश्न अभी भी वही है कि, हिन्दी ग़ज़ल का जनक कौन?अतः कवि प्यारेलाल शोकी ने कबीर और अमीर ख़ुसरो की ग़ज़लों का अनुसरण किया। यह स्पष्ट है कि, कवि प्यारेलाल शोकी हिन्दी ग़ज़ल के जनक नही हैं। अमीर ख़ुसरो एवं कबीर में से यदि किसी एक को हिन्दी ग़ज़ल का जनक निर्धारित किया जाये तो, कबीर का जन्म 1398 में हुआ था एवं कबीर का काल 1398 से 1497 तक माना जाता है। अमीर ख़ुसरो का जन्म 1253 में हुआ था इनका काल 1253 से 1325 तक माना जाता है। उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि, अमीर ख़ुसरो सन्त कबीर से पूर्व के कवि हैं। कबीर का हिन्दी रचनाओं में उर्दू बहरों का प्रभाव पाया जाता है। अन्ततः यह प्रमाणित होता है कि हिन्दी ग़ज़ल के प्रथम कवि व जनक अमीर ख़ुसरो ही हैं।

भारतेन्दु हरीशचन्द्र के साहित्य का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि, हिन्दी ग़ज़ल की जन्म प्रक्रिया में अमीर ख़ुसरो का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल का प्रारम्भ आदिकाल में अमीर ख़ुसरो से हुआ था।7

अमीर ख़ुसरो का प्रथम हिन्दी ग़ज़लकार एवं जनक होना इस कथन से भी ज्ञात होता है कि– हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव 13वीं सदी में हुआ। अमीर ख़ुसरो ने हिन्दी की पहली ग़ज़ल लिखी एवं इनको हिन्दी ग़ज़ल का जन्मदाता कहा जाता है। अमीर ख़ुसरो गुलाम वंश के अन्तिम शासक ग्यासुद्दीन बलवन के दरबार में

रहते थे। दीवान–ए–क़ामिल अमीर ख़ुसरो में इनकी ग़ज़लों की संख्या–1726 मानी जाती हैं। अमीर ख़ुसरो के भारत में पैदा होने के कारण उनकी ग़ज़लों में फारसी संस्कार के साथ–साथ हिन्दी संस्कार भी परिलक्षित होते हैं।8

अमीर ख़ुसरो की हिन्दी ग़ज़ल का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

जब यार देखा नैन भर दिल की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाए कर
जब ऑख से ओझल भया तड़पन लगा मेरा जिया
हक़्क़ा इलाही क्या किया ऑसू चले भर लाय कर
तू तो हमारा यार है तुझ पर हमारा प्यार है
तुझ दोस्ती बिस्यार है एक शब मिली तुम आय कर
जाना तलब तेरी करूँ दीगर तलब किस की करूँ
तेरी चिंता दिल धरूँ एक दिन मिलो तुम आय कर
मेरी जो मन तुम ने लिया तुम ने उठा ग़म को दिया
तुम ने मुझे ऐसा किया जैसा पतंगा आग पर
ख़ुसरव कहै बातॉ ग़ज़ब दिल में न लावे कुछ अजब
कुदरत ख़ुदा की है अजब जब जिव दिया गुल लाय कर 9

ग़ज़लों के परम्परावादी विषयों से अलग हटकर हिन्दी ग़ज़ल ने नये विषयों व विचारों से हिन्दी काव्य साहित्य को प्रभावित किया। हिन्दी ग़ज़ल के अन्तगर्त भक्ति, मुक्ति, सगुण–निर्गुण, भारतीय दर्शन, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक चेतना, नैतिक मूल्यों इत्यादि जैसे विषयों व भावों का समावेश हुआ एवं हिन्दी ग़ज़लकारों ने हिन्दी ग़ज़ल को भारतीय परिवेश की सीमा में व्यंजित किया।

हिन्दी ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षरों में अमीर ख़ुसरो से यह परम्परा का प्रारम्भ होता है। कबीर, भारतेन्दु, निराला, नाथुराम शर्मा शंकर, मोचन शास्त्री, शमशेर बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार, पं0 राम नरेश त्रिपाठी, सूयीानु गुप्त, शेरजंग, भवानी शंकर, इन्दुमती कौशिक व अवध नारायण जैसे ग़ज़लकारों ने इस परम्परा में समर्थ योगदान दिया है।10 ग़ज़ल आज हिन्दी भाषा में एक विशिष्ट तेवर के साथ प्रचलित है। इसलिए हिन्दी ग़ज़ल दरबारी दायरे से निकलकर आम जनमानस की कण्ठाहार बनी।

यह कथन निर्विवाद है कि, हिन्दी भाषा के अंश अमीर ख़ुसरो की कृतियों में विद्यमान थे, यही अंश कालान्तर में अन्य कवियों द्वारा पल्लवित व पुष्पित किये गये। भारतीय साहित्य जगत में अमीर ख़ुसरो का योगदान कबीर की अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार अमीर ख़ुसरो को हिन्दी ग़ज़ल का जनक मानना न्यायसंगत है।

निष्कर्ष– हिन्दी ग़ज़ल के जनक या जन्मदाता के बारे में अक्सर लोगों के मतों से भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस भ्रमित स्थिति को स्पष्ट और प्रमाणित करने का कार्य इस शोध पत्र के द्वारा किया गया है। भारतेन्दु, कबीर एवं अमीर ख़ुसरो इन तीनों नामों को लेकर असमंजस की स्थिति बनती है। इस शोध पत्र के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के जनक के रूप में अबुल हसन यमीनुद्दीन ख़ुसरो का नाम प्रमाणित किया गया है। इस शोध पत्र में प्रमाणित तथ्यों द्वारा वर्तमान एवं भविष्य के शोधकर्ताओं को लाभ प्राप्त होगा तथा हिन्दी ग़ज़ल की लोकप्रियता को बल मिलेगा एवं इसके जो पक्षधर हैं उनकों दृढ़ता का विश्वास प्राप्त होगा।

सन्दर्भ सूची–

1. कुछ और कविताऐं– शमशेर बहादुर सिंह– राजकमल प्रकाशन 1966– पृष्ठ संख्या–7
2. हिन्दी ग़ज़लः स्वरूप और विकास– रोहिताश्व अस्थाना– सुनील साहित्य सदन प्रकाशन 2017– पृष्ठ संख्या–159
3. वही– पृष्ठ संख्या–135, 136
4. शोध पत्र– हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा एवं विकास– डॉ. निर्मला जोशी– बोहल शोध मंजूषा मई 2023 वॉल्यूम 17
5. हिन्दी ग़ज़लः स्वरूप और विकास– रोहिताश्व अस्थाना– सुनील साहित्य सदन प्रकाशन 2017– पृष्ठ संख्या–152

6. वही– पृष्ठ संख्या– 152, 153
7. शोध ग्रन्थ– हिन्दी ग़ज़ल के विकास में वशिष्ठ अनूप का योगदान– प्रियंका सिंह– वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर 2023– पृष्ठ संख्या–51
8. शोध पत्र– हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा एवं विकास– डॉ. निर्मला जोशी– बोहल शोध मंजूषा मई 2023 वॉल्यूम 17
9. अमीर ख़ुसरो और उनका हिन्दी साहित्य में योगदान– डॉ. भोलानाथ तिवारी– प्रभात प्रकाशन 2020– पृष्ठ संख्या– 133
10. ग़ज़ल सौंन्दर्यः मीमांसा– डॉ. अब्दुर्रशीद. ए. शेख– जयभारती प्रकाशन 2002– पृष्ठ संख्या– 36

पत्राचार पता– 16/307 शीतला गली, नगर निगम गर्ल्स इण्टर कॉलेज के पास, आगरा, उ0प्र–282003
मो0 09027151255 ईमेल– hariommahour@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 183-187
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विज्ञापनों में प्रयुक्त हिंदी

मुजावर जैनु हमिद,
सहायक प्राध्यापक,
एम्स इंस्टीट्यूट, पीन्या, बेंगलुरु-560058

सारांश:-वर्तमान युग में विज्ञापन एक सामाजिक, भाषिक और आर्थिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है। यह केवल उत्पादों और सेवाओं के प्रचार तक सीमित नहीं है, बल्कि उपभोक्ता को शिक्षित करने, उत्पादक-उपभोक्ता संबंधों को सुदृढ़ करने और ब्रांड से भावनात्मक जुड़ाव स्थापित करने का भी कार्य करता है। भारत जैसे विविध भाषीय देश में, विज्ञापन बहु-आयामी स्वरूप ग्रहण कर चुका है और एक व्यापक उद्योग के रूप में स्थापित हो गया है, जिसमें करोड़ों लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं।विज्ञापन के प्रसार के लिए दो प्रमुख माध्यम-पारंपरिक (जैसे अखबार, रेडियो, टेलीविजन, पत्रिकाएँ और पोस्टर) और आधुनिक डिजिटल (जैसे सोशल मीडिया, वेबसाइट्स, मोबाइल ऐप्स और ईमेल) प्रभावी रूप से प्रयुक्त हो रहे हैं। इन माध्यमों में प्रयुक्त भाषा को विशेष रूप से ग्राहकों के मनोविज्ञान, सामाजिक संदर्भ और सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाता है।हिंदी, एक व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा होने के कारण, विज्ञापन संप्रेषण का प्रभावशाली माध्यम बन गई है। सरलता, तुकबंदी, हिंग्लिश का प्रयोग और भावनात्मक अपील इसे अधिक प्रभावशाली बनाते हैं।

मूल शब्द:- विज्ञापन, उपभोक्ता, पारंपरिक माध्यम, डिजिटल माध्यम, हिंदी भाषा, सामाजिक प्रभाव ।

प्रस्तावना:-

वर्तमान समय में विज्ञापन वस्तुओं की विशेष रूप से जानकारी देने का एक सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा वस्तुओं की माँग में वृद्धि की जाती है। विज्ञापन के कार्य को दृष्टि में रखकर उसका अर्थ- विशेष सूचना या जानकारी देना लिया जा सकता है। यह जानकारी उत्पादक उपभोक्ता को देता है। विज्ञापन के द्वारा वस्तुओं की जानकारी अधिक से अधिक लोगों को कराई जाती है। इसके माध्यम से लोगों में वस्तुओं को खरीदने की इच्छा जागृत की जाती है। आज विज्ञापन एक महान व्यापार बन गया है। इसमें कई करोड़ व्यक्ति किसी न किसी रूप में जुड़े हैं। भारत में कई व्यक्ति ऐसे हैं जो केवल विज्ञापन को माध्यम बनाकर अपनी जीविका चला रहे हैं। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 15 खरब डॉलर केवल विज्ञापन के लिए खर्च किए जाते हैं।

विज्ञापन का अर्थ:-

"विज्ञापन को अंग्रेजी में 'एडवरटाइजमेंट' कहा जाता है। यह 'एडवरटाइजमेंट' शब्द लैटिन भाषा के 'एडवरटाइज' से बना हुआ है, जिसका अर्थ है 'पलटना' अर्थात 'जनता को सूचित करना'। इस प्रकार विज्ञापन का शाब्दिक अर्थ जनता को सूचित करना होता है।"1

"विज्ञापन शब्द यौगिक शब्द है इसमें दो शब्दों का योग होता है- 'वि+ ज्ञापन' यह शब्द उपसर्ग रूप में विशेष का अर्थ प्रकट करता है और ज्ञापन का अर्थ होता है- सूचना या ज्ञान देना अर्थात किसी वस्तु या तथ्य की विशेष सूचना या जानकारी देना होता है।" 2

अतः विज्ञापन व्यापार की दृष्टि से बोलने वाला मानव है। विज्ञापन लोगों में वस्तुओं की गुणवत्ता एवं उपयोगिता की जानकारी कराने के साथ-साथ उनमें वस्तु को खरीदने की इच्छा जागृत करता है। इच्छा और विश्वास के कारण लोग वस्तु खरीदने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। इस प्रकार से विज्ञापन वस्तुओं की माँग बढ़ाता है।

विज्ञापन के उद्देश्य:-

वर्तमान युग में विज्ञापन के उद्देश्य बहुमुखी हो गए हैं। विज्ञापन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1) उत्पादक को लाभ पहुंचाना।

2) उपभोक्ता को शिक्षित करना।

3) विक्रेता की सहायता करना।

4) उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच मधुर संबंध विकसित करना।

5) वस्तु की बिक्री बढ़ाना।

6) प्रतिस्पर्धा की क्षमता बढ़ाना। इस प्रकार विज्ञापन के द्वारा सामान्य मनुष्य के जीवन स्तर में भी बड़ा सुधार लाया जा सकता है।

विज्ञापन के माध्यम:-

विज्ञापन का मतलब होता है किसी वस्तु,सेवा या विचार को लोगों तक पहुँचाना, ताकि वे उसे जानें और इस्तेमाल करें। यह दुकानों, कंपनियों या ब्रांड्स के लिए अपना सामान बेचने का एक अच्छा तरीका है। आजकल विज्ञापन करने के कई तरीके हैं, जिन्हें दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है – पारंपरिक माध्यम और आधुनिक (डिजिटल) माध्यम।

1) पारंपरिक माध्यम:- पारंपरिक विज्ञापन माध्यम वे होते हैं जो बहुत समय से इस्तेमाल किए जा रहे हैं। इनमें सबसे पहले आता है,

अ)अख़बार- जिसे लोग रोज़ पढ़ते हैं, इसलिए इसमें दिया गया विज्ञापन बहुत लोगों तक पहुँचता है। आ)रेडियो - एक सुनने वाला माध्यम है और गाँवों में यह अभी भी बहुत चलन में है।

इ)टेलीविजन (TV)- यह देखने और सुनने वाला माध्यम है, जिससे विज्ञापन जल्दी समझ में आता है और हर उम्र के लोग इसे देखते हैं।

ई)पत्रिकाएँ- यह खास रुचि रखने वाले लोगों के लिए होती हैं, जैसे फैशन, खेल या शिक्षा। इसके अलावा पोस्टर, बैनर और होर्डिंग्स सड़क किनारे या दीवारों पर लगते हैं, जिन्हें हर आने-जाने वाला देखता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार विज्ञापन में दिखाई गई वस्तु को खरीदता है, साथ ही सिनेमा हॉल में फिल्म शुरू होने से पहले जो विज्ञापन दिखाए जाते हैं वह भी विज्ञापन का एक पारंपरिक माध्यम है।

2) आधुनिक या डिजिटल विज्ञापन माध्यम:- यह माध्यम इंटरनेट से जुड़े होते हैं और बहुत तेज़ी से लोगों तक पहुँचते हैं।इनमें सबसे पहले आता है,

अ) सोशल मीडिया- हम Facebook, Instagram, YouTube या Twitter चलाते हैं, तो वहाँ कई तरह के ऐड्स हमें दिखते हैं। आजकल सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर भी ब्रांड्स का प्रचार करते हैं, जिनकी बात लोग ज़्यादा मानते हैं।

आ)वेबसाइट्स और ब्लॉग्स पर भी ब्रांड्स अपने सामान का प्रचार- प्रसार करते हैं।

इ)मोबाइल फोन - मोबाइल फोन में भी ऐप्स चलाते वक्त या SMS के जरिए विज्ञापन आते हैं। कंपनियाँ लोगों को ईमेल भेजकर भी अपने ब्रांड्स का प्रचार- प्रसार करती हैं। निष्कर्ष यह है कि समय के साथ विज्ञापन करने के तरीके भी बदलते जा रहे हैं। पुराने तरीके आज भी कई जगहों पर असरदार हैं, लेकिन नए डिजिटल तरीके बहुत तेज़, सस्ते और ज्यादा लोगों तक पहुँचने वाले बन गए हैं।

विज्ञापन भाषा की विशेषताएँ:-

विज्ञापन भाषा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1.सरलता और स्पष्टता :-

विज्ञापन में प्रयुक्त हिंदी भाषा सरल और स्पष्ट होती है, ताकि उपभोक्ता उसे आसानी से समझ सकें। उदाहरण के लिए, "निरमा, वॉशिंग पाउडर निरमा!" जैसी टैगलाइनें उपभोक्ताओं के मन में स्थायी छाप छोड़ती हैं।

2.तुकबंदी और लय :-

विज्ञापन में प्रयुक्त हिंदी में तुकबंदी और लय का विशेष ध्यान रखा जाता है, जिससे संदेश यादगार बनता है। "दाग अच्छे हैं – Surf Excel" जैसी टैगलाइनें इस बात का उदाहरण हैं।

3.सांस्कृतिक संदर्भ :-

विज्ञापन में प्रयुक्त हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति, परंपराओं और मूल्यों को ध्यान में रखते हुए तैयार की जाती है। "घर की बात, घर के साबुन से – निरमा" जैसी टैगलाइनें भारतीय परिवारिक मूल्यों को दर्शाती हैं।

4.हिंग्लिश का उपयोग :-

आधुनिक भारतीय विज्ञापनों में हिंदी और अंग्रेज़ी का मिश्रण, जिसे "हिंग्लिश" कहा जाता है, का व्यापक उपयोग होता है। "Taste the Thunder – थम्स अप!" जैसी टैगलाइनें युवा उपभोक्ताओं को आकर्षित करती हैं।

हिंदी विज्ञापन का सामान्य परिचय:-

आज के समय में विज्ञापन हमारी ज़िंदगी का जरूरी हिस्सा बन गए हैं। चाहे हम सुबह अखबार पढ़ें, टीवी देखें या मोबाइल पर सोशल मीडिया चलाएं – हर जगह विज्ञापन दिखाई देते हैं। कंपनियाँ अपने सामान और सेवाओं को बेचने के लिए इनका इस्तेमाल करती हैं। लेकिन सिर्फ चीज़ें दिखा देना काफी नहीं होता, उन्हें इस तरह दिखाना होता है कि ग्राहक उससे जुड़ाव महसूस करे। इस जुड़ाव में भाषा बहुत अहम भूमिका निभाती है, और भारत में ज़्यादातर मामलों में यह भाषा हिंदी होती है।प्रगतिशील युग में विज्ञापन का स्थान और भी महत्वपूर्ण बन गया है। आजकल ज्यादातर विज्ञापन हिंदी भाषा में उपलब्ध होते हैं क्योंकि भारत में हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया गया है। भारत में अधिकतर लोग हिंदी भाषा में अपना व्यवहार करते हैं। 'विज्ञापनों में प्रयुक्त भाषा सहज, सुबोध, सरल व रोचक होनी चाहिए। '3 इसकी भाषा चुस्त, संक्षिप्त, सूत्रात्मक एवं प्रभावशाली होनी चाहिए तभी उसका प्रभाव ग्राहक के मन मस्तिष्क पर पड़ता है। विज्ञापन की भाषा एक अत्यंत फिल्म की भांति होती है उसमें अनेक दृश्य होते हैं। विज्ञापन उस भाषा में होना चाहिए जिसे ज्यादा से ज्यादा लोग समझ सकते हैं।

हिंदी विज्ञापन के नमूने-

हिंदी भाषा में ज्यादातर विज्ञापन बनाए जाते हैं क्योंकि भारत में हिंदी समझने वाले लोगों की संख्या ज्यादातर पाई जाती है इसलिए बहुत सी कंपनियां अपने विज्ञापन हिंदी भाषा में प्रकाशित करती है। हिंदी विज्ञापन के कुछ नमूने अथवा उदाहरण निम्नलिखित हैं-

1) परिवार के लिए माँ की पसंद 'डालडा'।

2) उत्तम सिलाई की नींव 'मोदी धागा'।

3) तकलीफ से आराम 'पचनोल'।

4) माधुरी दीक्षित के सौंदर्य का राज 'लक्स'।
5) 'हॉर्लिक्स' ज्यादा शक्ति देता है।
6) हर मौके पर रंग 'कोको -कोला' के संग।
7) अपने दांतों की सुरक्षा के लिए 'बिना के टूथब्रश' का प्रयोग कीजिए।
8) 'ग्राइप वाटर' - बच्चों को तंदुरुस्त रखें।
9) जब खरीदें, उषा ही खरीदें- 'उषा फैन'।
10) सबकी पसंद निरमा... वाशिंग पाउडर 'निरमा'...
11) टिकिया की शक्ति समेट लाया... नया 'हरा एरियल'।
12) सर दर्द की खास दवा-' व्हीक्स 500'।
13) स्वाद और सुगंध... 'बादशाह' मसाला।
14) 'कामधेनु' अचार और पापड़ का मसाला।
15) दूध से लबालब भरा...साथ में ठसाठस प्रोटीन से भरा 'ग्लूकोज प्लस' बिस्किट...
16) स्वाद भरे ,शक्ति भरे, 'पारले-जी'
17) काले, घने, लम्बे, मुलायम बालों का राज...' पैराशूट' शुद्ध नारियल तेल।
18) शुद्धता की पहचान, कोको केयर हेयर ऑईल।
19) 'मोनॅको' नमकीन और मीठा कुरकुरा स्वाद भरा...
20) अब पुराने ढंग के शैंपू का जमाना नहीं रहा...आज ही अपनाइए 'हेलो कॉस्मेटिक' शैंपू।
21) जब अच्छी चीज चाहिए तो मार्लेक्स ही लाइए... 'मार्लेक्स प्रेशर कुकर'।
22) ठंडा मतलब 'कोका-कोला'।
23) एस्प्रो लीजिए।
24) जब साधारण साबुन से बने बात तब 'डेटॉल सोप' से बने पूरी बात।
25) फेयर एंड लवली, त्वचा के लिए सुकोमल है।
26) शादी के पहले और शादी के बाद।
27) जान है तो जहान है।
28) सावधानी हटी...दुर्घटना घटी।
29) कोई कर काम, कोई खेल करें, लिम्का बुझाए, प्यास मेल करे।
30) मेरे परिवार की स्माइल...बनी रहती है दिन भर!आयुर्वेदिक कायम चूर्ण...पेट खुश तो सब खुश!
31) चलो आज कुछ अच्छा सुनते हैं – रेडियो सिटी ।
32) माँ का प्यार अब पैक में – नेस्ले दूध पाउडर ।
33) जहाँ ममता वहाँ डाबर ।
34) इस दिवाली, अपनों को दीजिए सोने सा प्यार – तनिष्क ।
35)त्योहारों की मिठास बढ़ाएँ – हल्दीराम ।
36)सिर्फ नाम ही काफी है – वीम ।
37)दिल मांगे मोर – पेप्सी ।
38)बजाज – इंसान की सोच बदले, देश की तस्वीर बदले ।
39)स्वाद देश का – मैगी ।

40)अमूल दूध – भारत की सेहत का स्वाद।

उपर्युक्त प्रकार से विज्ञापनों के कई नमूने हमें दिखाई देते हैं, विज्ञापन के माध्यम से कंपनियां ग्राहक को अपने वस्तु के प्रति आकर्षित करती है। आधुनिक युग में विज्ञापन लाभप्रद कार्य करता है। यह निर्माता और ग्राहक दोनों को भी लाभ पहुंचता है। निर्माता यह जानता है कि ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों के पास पहुंचने का सबसे सरल मार्ग विज्ञापन है। विज्ञापन के बारे में प्रसिद्ध विद्वान शेल्डन कहते हैं कि-" विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है जिसके द्वारा विक्रय वृद्धि में सहायता मिलती है ख्याति का निर्माण होता है एवं साख बढ़ती है। "4 अतः हम कह सकते हैं कि विज्ञापन मनुष्य को प्रभावित करने में सक्षम होना चाहिए। उसमें भाषा का प्रयोग अधिकतर प्रभावात्मक, प्रवाहात्मक, काव्यात्मक और भावात्मकता को ध्यान में रखकर करना चाहिए। यह सारी बातें विज्ञापन में आकर्षण पैदा करती हैं जिससे ग्राहक विज्ञापन देखने- पढ़ने के लिए वह उत्सुक हो जाता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में अधिकतर विज्ञापन हिंदी भाषा में ही देखने को मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1) आधुनिक विज्ञापन और जनसंपर्क- डॉ. तारेश भाटिया, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4761, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण- सन 2000 पृ. क्र.- 10

2) विज्ञापन कला- डॉ.मधु धवन
वाणी प्रकाशन, 4695,21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002,
प्रथम संस्करण- सन 2010 पृ. क्र. 07

3) पत्रकारिता: समस्या और समाधान- डॉ. यू. सी. गुप्ता
अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 4831/24 प्रल्हाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002
प्रथम संस्करण- सन 2012 पृ. क्र. - 194

4) प्रयोजनमूलक हिंदी(पत्र लेखन एवं टिप्पण) - उर्मिला पाटिल
रामेंद्र तिवारी, 57 पी, कुंज विहार, यशोदा नगर, कानपुर- 208011
प्रथम संस्करण- सन 2004 पृ. क्र. - 55

ईमेल- jainumujawar94@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 188-193
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों में राजनीतिक साम्प्रदायिकता

सुरेश कुमार
शोधार्थी,
डॉ कविता चौधरी
निर्देशिका,
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय (हिन्दी विभाग),
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी, नेशनल हाईवे–52, हिसार, चण्डीगढ़ रोड़, हिसार (हरियाणा).125001

सारांश :
साम्प्रदायिकता स्वतः स्फूर्ति परिघटना नही होती बल्कि साम्प्रदायिकता उन्माद पैदा करने के लिए साम्प्रदायिक शक्तियाँ वातावरण का निर्माण करती हैं, एक दूसरे के समुदाय के बारे में भ्रम फैलाकर एक दूसरे के विरुद्ध नफरत फैलाते हैं। लोगों के समुदायों के धार्मिक हित कभी नहीं टकराते इसलिए उनमें कोई हिंसा तनाव होने का सवाल ही नहीं उठता। कुछ लोगों के सांसारिक हित टकराते हैं तो वे अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए इस बात का धुआंधार प्रचार करते है कि एक धर्म के मानने वाले लोगों के हित समान हैं और भिन्न–भिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों के हित परस्पर विपरीत एवं विरोधी हैं। बस यहीं से साम्प्रदायिकता की शुरूआत होती है। जो समाज और संघर्ष के विभिन्न पहलुओं को संकेत करते हैं।

शब्द संकेत :
राजनीतिक, साम्प्रदायिकता, साहित्य, सामाजिक, धार्मिक, भावना, स्वार्थ राजनेता।

प्रस्तावनाः–

सर्व प्रमाणिक तथ्य है कि साहित्य अध्ययन, उन्नयन मनुष्य के जीवन में उत्कृष्टता का आधार होता है। यह सदैव मनुष्य के जीवन में संवेदना, संवेदनशीलता एवं मानवता लाने का उत्कृष्ट कार्य करता है। अच्छा साहित्य का वाचक, एक प्रशासक, एक अच्छा अभिनेता और एक अच्छा राजनेता बन सकता है लेकिन दूसरी तरफ एक अच्छा राजनेता, अच्छा प्रशासक, अच्छा अभिनेता बिना भाषा ज्ञान और साहित्यिक मनन के अच्छा साहित्यकार या उत्कृष्ट मानव नहीं बन सकता। इसके लिए मनुष्य के जीवन में साहित्य के अध्ययन, मनन और चिंतन की आवश्यकता होती है, क्योंकि साहित्य में मानवीय समाज के सुख–दुःख, आशा–निराशा, उत्थान और पतन का स्पष्ट परिवेश स्वयं में उपस्थित रहता है। इसी कारण साहित्य को समाज का प्रतिबिंब कहा जाता है। कहते है कि साहित्य सर्वमान रूप से एक स्वायत्त आत्मा ही है, और स्वयं साहित्यकार भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं कर सकता कि उसका साहित्य किसी व्यक्ति के जीवन में कब और क्या परिवर्तन ला दें। मूलतः साहित्य सत्य के अन्वेषण की साधना और सौंदर्य की अभिव्यंजना का ही सात्त्विक रूप है। विशुद्ध जीवन एवं उच्च सत् साहित्य मानव और समाज की संवेदना और उसकी सहज व्यक्तियों को युगों तक आने वाली पीढ़ियों में संचारित करता रहता है; कबीर, शेक्सपियर, तुलसीदास की कृतियां से प्रायः देखा गया है कि वे आज भी लोगों के हृदय में राज करती है। वैश्विक स्तर पर मनुष्य कितने ही जाति, राजनीति और भौगोलिक तौर पर अनेक गुटों में बंट जाए, पर साहित्यिक धरातल एवं

परिसीमा में सब एक हैं, सभी का बराबरी का दर्जा है। साहित्य का सफर किसी की व्यक्ति के लिए सुगम नहीं होता। ऐसे कर्म करने के लिए विविध परिस्थितियों से जुझना पड़ता है। ऐसी ही परिस्थितियों से जुझते हुए 'गीतांजलि श्री' ने विश्व–साहित्यिक स्तर पर अपनी पहचान बनाई। प्रत्येक साहित्यकार का साहित्य मानव–समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना को अभिव्यक्त करता है। साहित्य–कर्म में राजनीति भी हावी रहती है। साहित्य का अपना फलक है। इसमें डूबे हुए लोगों की अपनी अलग पहचान और भूमिका है। कोई भावनात्मक रूप से किसी पार्टी से जुड़ा हो सकता है, मगर साहित्यिक कर्म उसका मोहताज नहीं होता। साहित्य का सरोकार समग्र जीवन से है। रचनाकार जीवन के वैसे पक्षों रचता है, जो अछूता रह गया है। सबकी अपनी राजनीतिक चेतना होती है। रचनाकार अनस्तित्व को भी एक रूप देता है। सीमित दायरे में रहकर भी वह अपनी मौलिक क्षमता को उजागर कर अपने अस्तित्व को प्रमाणित करता है। इसलिए साहित्य राजनीति से आगे चलने वाली जीवन–दृष्टि है। साहित्यकार और राजनीतिक में मूलभूत अंतर है। साहित्यकार किसी विशेष विषय के मानवीय मूल्यों और संवेदनशीलता को उजागर करता है और राजनीतिक उसी विषय को आंदोलन का रूप देकर अपने दल को सत्ताशीन करने के लिए संघर्ष करता है।

राजनीति का स्वरूप एवं परिभाषा :–

राजनीति एक ऐसी विचारधारा है जो संसार के प्रत्येक जीव में देखने को मिल जाती है। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश कोई भी इससे अछूता नहीं है। यदि कोई यह कहता है कि मुझे राजनीति पसंद नहीं या मैं राजनीति में नहीं जाना चाहता; तो भी वह राजनीति से नहीं बच सकता। राजनीति एक ऐसा सूक्ष्म कण है जो प्रत्येक प्राणी में देखने को मिलता है। घर में सास–बहू के झगड़ें में, तो गली में एक दूसरे पर भौंकते कुत्ते में, घोंसले से किसी दूसरे पक्षी के बच्चे गिराने में, हर जगह कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में राजनीति विद्यमान है। ऐसे में राजनीति से हमारा साहित्य कैसे अछूता रह सकता है? इस सम्बन्ध में सरदार गुरमुख निहाल राजनीति के बारे में विचार लिखते हैं :–

'प्रजातन्त्र के आगमन से पूर्व जब लोग स्वेच्छाचारी शासन के अधीन रहते थे और उन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे, किसी नागरिक के लिए राजनीति में प्रवेश करने या राजनीतिज्ञ बनने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। वास्तव में, उस समय, राजनीति का अस्तित्व ही नहीं था। इस बात की आवश्यकता उस समय उत्पन्न हुई जब अनेक देशों में प्रजातन्त्रीय संस्थाएं स्थापित हुई और ऐसी राजनीति का जन्म हुआ जिसमें रुचि रखने और भाग लेने लगे।''[1]

'राजनीति' शब्द 'राज' और 'नीति' दो शब्दों के योग से बना है। प्रायः 'राज' से राज्य व शासन तथा 'नीति' से नियम का अर्थ लगाया जाता है अर्थात् किसी भी राज्य को चलाने के लिए जो नीतियाँ बनाई जाती हैं वे सब राजनीति के अन्तर्गत आती है। सही रूप में नीतिपूर्वक ढंग से राज्य चलाने के तरीकों को राजनीति कहा जाता है। राजनीति में रुचि न रखने वालों से भी राजनीति जुड़ी रहती है। आज राजनीति का क्षेत्र विस्तृत हो चुका है। यदि हम राजनीति की उत्पत्ति की बात करें तो राजनीति शब्द अंग्रेजी भाषा के पॉलिटिकल का हिन्दी अनुवाद है। पॉलिटिकल शब्द यूनानी भाषा के पोलिस शब्द से लिया गया है। यूनानी भाषा में Polis शब्द का अर्थ नगर–राज्य है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग सुविख्यात दार्शनिक अरस्तु ने किया था।

राजनीति की परिभाषा देते हुए प्रसिद्व विद्वान **कैटलिन** ने लिखा है – ''राजनीति संगठित मानव समाज का अध्ययन है और मुख्यतः सामाजिक जीवन के राजनीतिक पक्षों से सम्बन्धित है।''[2]

एक अन्य विद्वान **पीटर एच. मर्कल** ने राजनीति की परिभाषा देते हुए अपने विचार व्यक्त किए है। जैसे– ''राजनीति का सारांश समाज में मनुष्य की भौतिक स्वतन्त्रता से है जिसके आधार पर राजनीतिक साधनों द्वारा वह अपने भाग्य का स्वयं निर्माण कर सकता है।''[3]

साम्प्रदायिकता का स्वरूप एवं परिभाषाः–

हिंदी साहित्य भारतीय समाज, राजनीति और सामाजिक मुद्दों के आधार पर गहरा प्रभाव डालता है। इसमें राजनीतिक और साम्प्रदायिकता दोनों मुद्दे अधिकांशतः प्रतिबिंबित होते हैं। यह साहित्य एक प्रोत्साहन और मंच के रूप में कार्य करता है, जहां लेखकों को अपने विचारों, भावनाओं और विरोधाभासों को व्यक्त

करने का अवसर मिलता है। यह सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक मुद्दों पर निर्णय लेने और लोगों की जीवन पर प्रभाव डालने का माध्यम है। राजनीतिक दल, नेता, चुनाव, सरकार, नीतियां, और संघर्ष इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। राजनीतिकता का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार, सार्वभौमिक विकास, और शासन की व्यवस्था है। राजनीति को हम पहले ही परिभाषित कर चुके है। अब हम साम्प्रदायिकता के अर्थ एवं परिभाषा पर प्रकाश डाल लेते है। साधारण रूप से साम्प्रदायिकता केवल अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ समझ उसके हित का विशेष ध्यान रखना और दूसरे सम्प्रदाय को हीन समझकर उससे द्वेष रखना है। भारत में साम्प्रदायिकता का इतिहास बहुत पुराना है। इसके पीछे मुख्य वजह देश में कई सम्प्रदायों के लोगों का रहना है। साम्प्रदायिकता का अर्थ है– "मजहब का हौआ खड़ा करके लोगों की भावनाओं को भड़काना और राष्ट्रीयता के बजाए 'मजहबी उन्माद' फैलाना।"[4]

वामन शिवराज आपटे के संस्कृत–हिंदी कोश में भी इसी से मिलता–जुलता व्युत्पत्तिपरक अर्थ दिया गया है। "शिक्षा की विशेष पद्धति, धार्मिक सिद्धांत जिसके द्वारा किसी देवता विशेष की पूजा बतलाई जाए, प्रचलित प्रथा, प्रचलन।"[5]

साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में विपिन चन्द्र ने भी अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता' को परिभाषित करते हुए लिखा –

"अपना पूजा–पाठ–उपासना–विधियों, खान–पान, रहन–सहन के तौर–तरीकों, जाति– नस्ल आदि की भिन्नताओं को ही धर्म का आधार मानना तथा अपनी मान्यता वाले धर्म को सर्वश्रेष्ठ और दूसरी मान्यता वाले धर्मों को निकृष्ट समझना, उनके प्रति नफरत, द्वेष–भाव पालना और फैलाना ही साम्प्रदायिकता है।"[6]

'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों में राजनीतिक साम्प्रदायिकता :–

साम्प्रदायिकता एक अवधारणा है, जो समुदायों के संघर्ष एवं टकराव के कुछ अंतर्निहित मूल्यों के कारण सिंद्धांत रूप में आती है। वह एक वैश्विक समस्या है। हमारा देश कई धर्मों एवं समुदाय के लोगों का देश है। लोगों का आपसी संपर्क सद्भाव एवं टकराव की गतिविधियों से संचालित होता रहता है। भारत के दो प्रमुख सम्प्रदायों हिन्दू एवं मुसलमानों का आपसी संपर्क इन्हीं सद्भाव एवं टकराव पर आधारित संबंधों पर टिका है। साम्प्रदायिकता को समझ पाना इतना आसान नहीं है। जिसकी नींव सालों पहले रखी गयी है। वह इतना सरल और आसान नहीं हो सकता। इसी के कारण देश के दो टुकड़े हो गए और आज के वर्तमान समय में भी यह लोगों के दिलों में घर किए हुए है। अपने मजहब में गहरी आस्था रखना 'साम्प्रदायिकता' नहीं है। मजहब की आजादी तो हर मनुष्य का एक मौलिक आधिकार है। सांप्रदायिकता के इस वीभत्स रूप ने साहित्यकारों को हिला कर रख दिया। उन्होंने न केवल विभाजन के दिनों में और उसके बाद इस विषय पर लिखा, बल्कि तब से लेकर अब तक यह विषय लगातार प्रासंगिक बना हुआ है। हिंदी के साथ उर्दू के भी अनेक उपन्यासकारों ने इसे विषय बनाया। हिंदी में भीष्म साहनी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजूर एहतेशाम, विभूति नारायण राय, यशपाल, कमलेश्वर, राही मासूम रजा, कमलेश्वर, दूधनाथ सिंह, नासिरा शर्मा आदि ऐसे उपन्यासकार है, जिन्होंने अपने लेखन में इस समस्या के विविध पहलुओं पर विचार किया है। 'झूठा सच', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'आधा गांव', 'तमस', 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', 'सूखा बरगद', 'शहर में कर्फ्यू, 'कितने पाकिस्तान', 'आखिरी कलाम', 'जीरो रोड' आदि उपन्यास न केवल इस समस्या को सजीवता से उठाते हैं, बल्कि इससे प्रभावित होती मनुष्यता के तमाम सवाल हमारे सामने खड़े करते हैं। ऐसे ही साहित्यकारों में गीतांजलि श्री, का नाम भी बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका साहित्य विविध विषय और समस्याओं के साथ–साथ अपने समकालीन राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक विषय से सम्बधित समस्याओं का बखूबी चित्रण करता है। 'श्री' का उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस', 'खाली जगह' तथा इनकी कहानियों 'यहाँ हाथी रहते थे', 'आजकल' एवं 'बेलपत्र' में राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक परिस्थितियों को यथार्थपरक चित्रण हुआ है। उनका उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' सांप्रदायिकता की वास्तविक परते खोलता नज़र आता है। इसमें साम्प्रदायिकता के दंगों और अशांत फैले हुए वातावरण का पूरी उद्धमता के साथ उल्लेख किया है । उपन्यास में एक शहर है, जहाँ एक मठ है एक विश्वविद्यालय है । ये दोनों ही संस्थाएँ समय–समय पर साम्प्रदायिक गतिविधियों को बढ़ावा देती हैं। इन दोनों संस्थाओं को बढ़ावा अख़बार देता है । अखबार साम्प्रदायिकता की हवा को ओर तेज करने में अहम्

भूमिका निभाता है । अख़बार उन बातों को ज्यादा अहमियत देता है, जिससे उसका व्यापार बढ़े, लोग अखबार के प्रति ज्यादा से ज्यादा आकर्षित हो सकें । इसी कारण अख़बार का संपादक दिए गए भाषाणों, लेखों को तोड़ मरोड़ कर एक अलग ही अर्थ के साथ खबरों को पाठकों के सामने पेश करता है । लोगों को आपस में भड़काता है । जिसके कारण शहर में आतंक के वातावरण का सृजन होता है । सांप्रदायिक दंगों का भय उपन्यास में आरम्भ से लेकर अंत तक व्याप्त बना रहता है । 'गीतांजलि श्री' ने अपने उपन्यास में सांप्रदायिक दंगों के भय को उपन्यास का मूल कथ्य बनाया है। जैसे कि उन्होंने लिखा–

"बात उस बरस की है जब हमारा शहर आए दिन सांप्रदायिक दंगों से ग्रस्त हो जाता था। आगजनी, मारकाट और तद्जनित दहशत रोजमर्रा का जीवन बनकर एक भयावह सहजता पाते जा रहे थे। कृत्रिम जीवन शैली का यों सहज होना शहरवासियों की मानसिकता व्यक्तित्व बल्कि पूरे वजूद पर चोट कर रहा था। बात दरअसल उस बरस भर की नहीं है। उस बरस को हम आज में भी घसीट लाए हैं न ही बात सिर्फ हमारे शहर की । और शहरों जैसा ही है हमारा शहर –सुलगता खदकता–स्त्रोत और प्रतिबिम्ब दोनों ही मौजूदा स्थिति का। अभी भी जो समझ रहें हैं की दंगें उधर हैं – दूर, उस पार उन लोगों में पाते हैं की 'उधर' 'इधर' बढ़ आया है वे लोग 'हम' लोग भी दंगे जहाँ हो रहे हैं, वहाँ खून बह रहा है । अपनी ही खाल के नीचे छिड़े दंगे से दरपेश होने की कोशिश है । ''[7]

वर्तमान समय की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि जो लोग विवेकवान और बुद्धिजीवी हैं, उन्होंने भी अन्याय के खिलाफ आवाज उठानी बंद कर दी है तो फिर उन लोगों से संघर्ष की उम्मीद कैसे कर सकते हैं ? जिनके पास उचित और अनुचित के बीच अंतर करने की बुद्धि ही न हो । 'गीतांजलि श्री' ने अपने उपन्यासों में भी कुछ ऐसे ही पात्रों का चित्रण किया है जिनके पास विवेक तो होता है लेकिन या तो वो चुपी साधे हुए हैं या फिर अपना स्वार्थ साधने के लिए कोई कुचक्र रचते हैं । उन्होंने अपने उपन्यास ' हमारा शहर उस बरस' में ऐसे छद्म व्यक्तियों के चेहरे को बेनकाब किया हैं जो आरम्भ से लेकर अंत तक हर जगह उपस्थित है । उन्हें लगता है कि कुछ ऐसा घट चुका है जिससे आने वाला वक्त बुरी तरह उससे प्रभावित होने वाला है जिसके लिए वह अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति सचेत हैं। जिस समय शहर में दंगे, फसाद, मारकाट, होती है। उस समय दूसरे विवेकवान, बुद्धिजीवी अपने घरों में दुबके रहना पसंद करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि साम्प्रदायिक दंगों से सम्बन्धित रिपोर्ट को साम्प्रदायिकता समाज में विभाजन या भेदभाव को संकेत करती है, जहां लोग अपनी धार्मिक या सांस्कृतिक पहचान के आधार पर समूहों में विभाजित होते हैं। यह विभाजन आधारभूत मान्यताओं, आचारों, रीति–रिवाजों और साम्प्रदायिक नियमों पर आधारित होता है। साम्प्रदायिकता अक्सर विभाजन, संघर्ष और संघर्ष के कारणों का मुख्य कारक बनती है और उससे होने वाली समस्याएं धर्म, सामाजिक स्थिति, राजनीतिक व्यवस्था आदि से जुड़ी हो सकती हैं।

उपन्यासकार का विचार है कि साम्प्रदायिकता सामाजिक या धार्मिक समूहों के बीच भेदभाव, असमानता या भावनात्मक अलगाव को संकुचित करने की अवस्था है। यह एक सामाजिक मुद्दा है जहां लोग अपने धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति या उपन्यास के आधार पर अलगाव का महसूस करते हैं और एक–दूसरे के साथ संघर्ष करते हैं। साम्प्रदायिकता के खिलाफ लड़ाई और सामाजिक समरसता की प्रावधानिकता इसे समाप्त करने की कोशिश करती है। जैसे–

''यह बात हनीफ़ और श्रुति के आगे, उन्हीं की तरह कॉलोनी में सैर को निकले, दो तीन जनों में से एक ने ही कही थी कि हिंदुओं ने मारना–धाड़ना इसीलिए अपनाया कि मुसलमानों ने नफ़रत भर दी और अब जो वे बमबारी आदि पर पहुँच गए हैं तो क्या होगा, हिंदुओं में उनके प्रति नफ़रत ही तो बढ़ेगी?

कोई मानेगा थोड़े? श्रुति बोली थी।

हनीफ़ चुपचाप सिर हिलाने लगा।

हम बोलेंगे तो वे कहेंगे कि आप तो बस हिंदुओं के ख़लिाफ़ बोलना चाहते हैं। जैसे कि हम बमवालों की तरफ़दारी कर रहे हों! कह रही है अँ हँ कि बिजूका लगा दो। ''[8]

'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों के चरित्रों का यह आंतरिक विश्व बाहरी कार्य–व्यापार के आईने में ही घटित होता है। दुनिया जैसी है, जिस दिशा में जा रही है, जिन सवालों से जूझ रही है, वे सब उनके

चरित्रों में परिलक्षित–प्रतिबिंबित होते हैं। पिछले कुछ वर्षों में जो विमर्श हमारे लिए सबसे जरूरी रहे हैं, जिन सवालों से हमारी रोजाना मुठभेड़ होती है, वे उनके मौन–से लगते लेखन में बहुत मुखरता से अभिव्यक्त हो रहे हैं। कई सालों से मंदिर के नाम से होने वाले दंगे या धर्म को लेकर होने वाले विवाद को लेखिका ने अपने साहित्य में चरितार्थ करने की कोशिश की है। सांप्रदायिकता के सवाल को लेकर उनका उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' की कहानी तीन–चार नहीं बल्कि पांच चरित्रों के इर्द–गिर्द घूमती है। दद्दू, शरद, हनीफ और श्रुति। पांचवीं वह गुम किरदार है जो दरअसल कथावाचक भी है– जिसे गवाह बने रहना है। जैसे–

''हमारा इरादा किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने का नहीं था। हम सब मतों की आज़ादी को मानते हैं। हमने पैसे को लेकर मठ पर बेईमानी की तोहमत नहीं लगाई, केवल पूछा कि इतना पैसा है उसका लेखा–जोखा तो होगा, कहाँ है? हमने हिंदू धर्म और धर्म की महानता को ही मध्नज़र रखकर पूछा है कि क्या जो बिक रहा है, हिंदू धर्म है? धर्म है? हमें ग़लत समझकर जिन मासूमों को ठेस लगी है, उनसे हम माफ़ी मांगते हैं और विनती करते हैं कि वे हमारी बात समझें। धर्म की जो धारणा बन जा रही है, वही असल है तो वाकई हम धर्म के बारे में कुछ नहीं जाना। हिंदू धर्म के बारे में कुछ नहीं जानते। ख़त के नीचे हनीफ़ का भी हस्ताक्षर है।''[9]

उपन्यासकार का विचार है कि राष्ट्रवाद और सरहद के नाम से भी सांप्रदायिकता बढ़ी है। राष्ट्रवाद ने ग्रामीण क्षेत्रों तथा आदिवासी–जनजाति, अंचलों में, शहरों तथा महानगरों में सांप्रदायिकता उन्माद और क्रूरता का खेल शुरू कर दिया। फलतः भयावह परिस्थितियाँ सामने आई है। सांप्रदायिक हिंसा ने अनेक क्षेत्रों में क्रूरता का रूप धारण कर लिया है। कई लोग भिन्न–भिन्न विषय को मुद्दा बनाकर जैसे कभी शहादत के नाम पर लोगों को भड़काते हैं तो कभी विकृत रूप को प्रोत्साहित करते हैं। नैतिकता का हवन करके मानव– मूल्यों को दफनाना चाहते हैं। राजनीति की आड़ में कुछ सरफिरे एक दूसरे को गुमराह करते है। सांप्रदायिकता फैलाने के लिए कुछ बेवकूफ़ तो सरहद के नाम से षड्यन्त्र रचकर लोगों के बीच भय उत्पन्न करते है। जैसे–

''ये जो सरहद है, हमारे तुम्हारे ज़माने के फर्क की बात है। तब हम इस तरह नहीं डरते थे। हर चीज़ में बम नहीं छिपा था। इस छड़ी में, उस गमले में, मेरे नाखून में। कि सारा वक्त इसी में जाया करो, बम स्क्वाड, सुंघाई, ठोंक ठोंक, जाँच जाँच । दुनिया ऐसी नहीं थी कि जहाँ देखो वहाँ हम अजनबी, हम विदेशी । हवा साफ़ थी और ज़र्रा ज़र्रा चमकता था। सीधे सरल दिन । धूल–धूल थी न कि अदृश्य, अनजान, जहरीला रसायन । ''[10]

सांप्रदायिकता आज के समय की एक चुनौती है, जिसकी जड़ें मजबूत हैं। यह एक विषवृक्ष है। इसके प्रयोक्ता कभी पंडे–पुजारी रहे तो कभी मुल्ले–मौलवी। इसे साम्राज्यवादी ताकतों ने गले लगाया तो कभी पूँजीवाद ने जी भरकर इस्तेमाल किया। हर अवस्था में मानवता लुंज–पुंज हुई, कराहती रही। राजनीतिक ताकतों का व्यवहार, सरकारी नीतियों का निर्धारण और न्यायपालिका के फैसलों आदि को राजनीतिकता कहा जाता है। यह लोगों के जीवन पर सीधा प्रभाव डालने के साथ–साथ समाज के संगठन और संप्रदायिक धार्मिक समूहों के माध्यम से भी दिखाई दे सकती है। राजनीतिकता कई मुद्दों पर प्रभाव डालती है, जैसे सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास, शिक्षा, स्वतंत्रता आदि। राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा लोगों का चयन और प्रतिनिधित्व संबंधित विषयों पर प्रभाव डाला जाता है। जैसे–"वैसे आप बिलकुल अलग किस्म के हैं। कभी जाकर उन मुसलमानों से मिलिए तो बेहद कोफ्त होती है। कीड़े–मकोड़ों से रेंग रहे हैं, बंद मोहल्लों में, मगर गुमान यह कि अब भी वे तो नवाबों–बादशाहों के पुत्तर ठहरे, राज ही करेंगे, और कुछ नहीं करेंगे। उन्होंने भी कम नहीं बिगाड़ा है माहौल । आज यह हाल है कि डर–डर के अच्छे शरीफ़ मुसलमान और हिंदू भी मिले–जुले मोहल्ले छोड़ रहे हैं। अच्छे शरीफ़ लोग जाएँ तो कहाँ जाएँ अब ? वैसे..." वह श्रुति की तरफ़ देखता है, "आप लोगों ने कोई अपना घर लेने की सोची है?"[11]

'गीतांजलि श्री' ने अपने साहित्य के माध्यम से अपना चिन्तन भाव प्रस्तुत करते हुए माना है कि जब साहित्य राजनीति की क्रूरता–हिंसा–सर्वग्रासिता–हत्यारी मानसिकता–घृणा फैलाने वाली वृत्तियों और उनके

भयावह परिणामों को भी अपने में शामिल कर लेता है तो राजनीति के प्रति उदासीन होकर उसे गहराई से न समझना एक बड़ी चूक होगी जो अपने मूल में न तो नैतिक है, न ही साहित्यिक। यह भाव ऐसा है जैसे अपने को भारतीय परंपरा के उज्ज्वल दाय से वंचित कर रहे है। राजनीति केवल परिवाारिक ही नही बल्कि देश के सन्दर्भ में भी व्यक्त होती है। पाकिस्तान की राजनीतिक विचारधारा और हिन्दूस्तान की विचारधारा से सभी लोग वाकिफ है। 'गीताजलि श्री' ने 'खाली जगह' उपन्यास में एक पात्र के माध्यम से राजनीतिक व्यंग्य करते हुए लिखा–

''एक मुल्क है दुनिया के पूर्वी छोर पर, जहॉ की पुरानी प्रथा नए दिनों में बरकरार है कि जलसा त्योहार का दिन और ले चले पवित्र आत्मा को डोली में बिठाकर, विस्थापित करके फिर स्थापित करने। न जाने क्यों डोली न कहकर उस डब्बे को मीकोशि कहते है।

अर्थी भी नही कहते डब्बे को !

बस उठा के चलते है ढेरों हाथ उसे, मगर मजा यह है कि सबके मुॅह अलग दिशा को फिरे ! कोई पीछे चले, कोई अगल, कोई बगल, आड़े तिरछे, टेढ़े बकरे। साथ साथ, तो भी। संगठित, संगमित। परमात्मा, पवित्र आत्मा, बीच में।''[12]

'रेत समाधि' में लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता से राजनीतिक सरहदों के बेमानीपन को दर्ज किया है। यहां उनकी एक पात्र वृद्धा है जो अपने पति की मृत्यु के बाद इस तरह अवसादग्रस्त है कि बिस्तर से उठने को तैयार नहीं। दीवार की ओर मुंह किए, बिस्तर से चिपकी वह बिल्कुल दीवार और बिस्तर हो जाना चाहती है। लेकिन यहां भी एक सुराख है, जो उसे वहां से उठने को मजबूर करता है। वे लौटती हैं और तमाम स्मृतियों के बीच अपने लिए वह स्मृति चुनती हैं जो उन्हें पाकिस्तान से जोड़ती है। वह पाकिस्तान पहुंच भी जाती है। इस उपन्यास में लेखिका तरह–तरह की युक्तियों से एक पूरी सांस्कृतिक स्मृति को पुनर्जीवित करती हैं।

निष्कर्ष :–

वस्तुतः 'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि राजनीतिकता और साम्प्रदायिकता एक सिक्के के दो पहलू है। राजनीतिक दल अपने सत्ता–स्वार्थ के कारण अपनी विचार धारा को तिलांजलि देकर साम्प्रदाय को बांटकर साम्प्रदायिक विवादों को उन्नत करने की कोशिश करते हैं, जो राष्ट्रीय एकता और समृद्धि के लिए खतरा है। इसलिए साम्प्रदायिकता को संकुचित रखने के लिए उचित नीतियों के साथ–साथ सांप्रदायिक सौहार्द की आवश्यकता है जो 'गीतांजलि श्री' के उपन्सासों में देखने को मिलता है। एक साहित्यिक कर्त्तव्य का निर्वहन करते हुए 'गीतांजलि श्री' ने अपने साहित्य में अवसरों और चुनौतियों का सामना करने पर लोगों के कार्यों और उनके बुनियादी सिद्धांतों के बीच संबंध की चिंता भी व्यक्त की है।

सन्दर्भ–सूचीः

1. वी.के.पुरी – मार्डन पोलटीक्ल थ्योरी, पृ.सं.–17
2. वही, पृ.सं–27
3. वही, पृ.सं–27
4. 'हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र विश्वकोश, पृ.सं–45
5. वामन शीवराम आपटे, संस्कृत–हिंदी शब्दकोश, पृ.सं–1073
6. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता, पृ.स–01
7. गीतांजलि श्री' 'हमारा शहर उस बरस' पृ.स–13
8. 'वही, पृ.स–210
9. 'वही, पृ.स–270
10. 'गीतांजलि श्री' 'रेत समाधि' पृ.स–332
11. गीतांजलि श्री' 'हमारा शहर उस बरस' पृ.स–129
12. 'गीतांजलि श्री' 'खाली जगह' पृ.स–102

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 194-198
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक न्याय के अग्रदूत डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर : एक संक्षिप्त अध्ययन

दीपिका रानी
सहायक प्रोफेसर शिक्षा विभाग
धर्मजीवी इस्टीटयूट ऑफ प्रोफेशनल एजूकेशन, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

शोध सारांशः
बी॰ आर॰ अम्बेड़कर एक अग्रणी समाज सुधारक और एक कार्यकर्त्ता थे, जिन्होंने अपना पूरा जीवन भारत के दलितों और अन्य सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों की भलाई के लिए समर्पित कर दिया। अम्बेड़कर ने भारतीय समाज में एक बीमारी की तरह फैले जातिगत भेदभाव को खत्म करने के लिए लगातार संघर्ष किया । चूँकि उनका जन्म सामाजिक रूप से पिछड़े परिवार में हुआ था, अम्बेडकर स्वयं एक दलित थे, जो जातिगत भेदभाव और असमानता का शिकार थे । हालाँकि सभी बाधाओं के बावजूद अम्बेडकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले पहले दलित बने । उन्होंने पूरी तरह से पिछड़े वर्गों के अधिकारों के लिए लड़ने और समाज में व्याप्त असमानता के खिलाफ लड़ने का लक्ष्य रखते हुए राजनीति में प्रवेश किया । भारत के स्वतंत्र होने के बाद, वह स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री और 'भारत के संविधान' के मुख्य वास्तुकार बने। बचपन से ही दलित जातियों के प्रति भेदभाव ने उनके मन पर गहरी चोट की । यही संघर्ष उन्हें एक समाज–सुधारक और कट्टर जातिवादी व्यवस्था के विरुद्ध अद्वितीय बना देता है । डॉ॰ अम्बेडकर ने राजनीतिक संस्थाओं, शासन प्रणाली पर जो विचार व्यक्त किए, वे सभी सामाजिक न्याय व समानता को लक्षित करते हैं । प्रस्तुत शोध–पत्र में मेरे द्वारा सामाजिक न्याय के लिए डॉ॰ अम्बेडकर के कार्यों व विचारों का विवेचन, विश्लेषण किया गया है ।

शोध–पत्र के उद्देश्य :
1. आधुनिक भारत के समाज सुधारक के रूप में डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर के क्रांतिकारी कार्यों को जानना ।
2. भारत में जातिवाद व राजनीतिक क्षेत्र में डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर के योगदान को जानना ।

शोध क्रियाविधि :
इस शोध पत्र "सामाजिक न्याय के अग्रदूत डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर : एक संक्षिप्त अध्ययन" को ऐतिहासिक विधि के अनुरूप
लिखा गया है । इस शोध पत्र को लिखने के लिए तथ्यों को मुख्य रूप से पाठ्य दृष्टिकोण, प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकों और विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं व जर्नल्स में प्रकाशित लेखों, पत्रों, आदि से लिया गया है । इस शोध पत्र को लिखने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।

भूमिका :
डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर 20वीं सदी में भारत के सबसे उत्कृष्ट बुद्धिजीवियों में से एक थे । सही अर्थों में, वह एक अग्रणी कार्यकर्त्ता और समाज सुधारक थे, जिन्होंने अपना जीवन इसके लिए समर्पित कर

दिया। वे दलितों के मसीहा थे । भारतीय समाज को खंडित करने वाले जातिगत भेदभाव को मिटाने के लिए उन्होंने लगातार संघर्ष किया । डॉ॰ भीमराव रामजी अम्बेड़कर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश के महू में एक दलित महार परिवार में हुआ था । शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पित डॉ॰ अम्बेड़कर ने उच्च शिक्षा ग्रहण की । कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ व पीएच॰डी॰ की उपाधि ग्रहण की । इसके साथ ही लंदन स्कूल ऑफ इकॉनमिक्स से डी॰एस॰सी॰ की उपाधि ग्रहण की । बचपन से ही दलित जातियों के प्रति भेदभाव ने उनके मन पर गहरी चोट की । डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर का परिचय शताब्दियों से हिंदुओं–विशेष रूप से ब्राह्मणों के हाथों अपमानित होने वाले दलित वर्ग के उद्धारक के रूप में दिया जा सकता है । उन्होंने दलित समुदाय को तिरस्कार और भेदभाव के उस दलदल से उबारा, जिसमें ब्राह्मणवाद ने इसे फंसा दिया था । डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर के विचार बहु–आयामी थे । जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं हैं, जो उनके विचारों से अछूता रहा हो । डॉ॰ अम्बेड़कर ने राजनीतिक संस्थाओं, शासन–प्रणाली पर जो विचार व्यक्त किए, वे सभी सामाजिक न्याय व समानता को लक्षित करते हैं । सही अर्थों में वह एक अग्रणी कार्यकर्त्ता और समाज सुधारक थे, जिन्होंने अपना जीवन इसके लिए समर्पित कर दिया । दलित वर्ग के अधिकारों और समाज में व्याप्त असमानता के लिए राजनीतिक रूप से लड़ने का निर्णय लिया । उन्होंने समाज में फैली विषमता, स्त्री शिक्षा, मजदूरों की दशा, आदि पर बहुत संघर्ष किया । वह स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री व संविधान के मुख्य निर्माता थे । उन्होंने संविधान में निहित सभी नागरिकों के लिए गरिमा, एकता, स्वतंत्रता तथा मौलिक अधिकारों पर विशेष जोर दिया । अम्बेड़कर जी ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हर क्षेत्र में लोकतंत्र की वकालत की । उनके लिए सामाजिक न्याय का मतलब अधिकतम लोगों की अधिकतम खुशी था । डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर द्वारा सामाजिक क्षेत्र में किए गए कुछ प्रमुख कार्य अथवा प्रयास इस प्रकार हैः–

सामाजिक न्याय के क्षेत्र में योगदान :

डॉ॰ अम्बेड़कर सामाजिक न्याय के पक्षधर थे । जाति प्रथा की समाप्ति और अस्पृश्यता के निवारण के परिणामस्वरूप भारत में सामाजिक न्याय के नए युग का सूत्रपात हुआ । सामाजिक न्याय का अर्थ है – व्यक्तिगत जीवन की मूलभूत धारणाओं में पूर्ण परिवर्तन और लोगों व चीजों के प्रति हमारे दृष्टिकोण में पूर्ण परिवर्तन । अम्बेड़कर भारतीय समाज के ढाँचे और समस्याओं से पूरी तरह परिचित थे । इस तरह अम्बेड़कर की सामाजिक न्याय की अवधारणा में निम्नलिखित शामिल थे;

- सभी मनुष्यों की एकता और समानता
- पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार
- कमज़ोरों के प्रति सम्मान
- मानवाधिकारों के प्रति सम्मान
- मानव के प्रति परोपकार, आपसी प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और दान
- सभी के साथ मानवीय व्यवहार
- जाति भेद का उन्मूलन

संविधान के प्रारूप को तैयार करने वाली समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में सामान्य लोगों की आकांक्षाओं को उचित स्थान दिया । उन्होंने कहा भी था कि "जब कभी मानवाधिकारों को छीना गया है, उन्हें प्राप्त करने के लिए युद्ध और रक्तपात हुआ है ।"

अस्पृश्यता उन्मूलन :

डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर का मानना था कि अस्पृश्यता का मूल कारण जाति–प्रथा में निहित है । अस्पृश्य लोगों का मंदिरों में

प्रवेश वर्जित था । उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था । ये लोग सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अचेत थे । डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर जी ने दलितों को नई दिशा प्रदान करने के लिए 20 जुलाई, 1924 को बम्बई में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की । इस संगठन के उद्देश्य निम्नलिखित थे :–

1. उच्च वर्ण की श्रेष्ठता के भ्रम को दूर करना ।
2. अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए आंदोलन छेड़ना ।
3. आर्थिक व औद्योगिक विकास के लिए व्यवसायिक विद्यालय खोलना ।
4. दलितों को शिक्षित करने के लिए आवासों की स्थापना करना ।

उन्होंने मार्च, 1930 में मंदिरों में प्रवेश के लिए आंदोलन भी किया तथा उनके इन्हीं प्रयासों से अक्तूबर, 1935 में दलित मंदिरों में प्रवेश पाने में सफल हुए । गांधी जी के साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' के प्रथम अंक को भेजे संदेश में उन्होंने कहा था कि, "जाति–च्युत व्यक्ति जाति–प्रथा की ही उपज है । जब तक जाति–प्रथा है, तब तक जाति–च्युत व्यक्ति रहेंगे । इस प्रथा के रहते जाति–बहिष्कृत लोगों की मुक्ति असंभव है ।" उन्होंने भारतीय संविधान के निर्माण के समय भी अनुच्छेद 17 के तहत किसी भी प्रकार की अस्पृश्यता का निषेध किया था । संविधान में 16 ऐसे अनुच्छेदों को शामिल किया है, जो दलित वर्ग की प्रत्यक्ष राजनीतिक भागीदारी को सुनिश्चित करते हैं । संविधान द्वारा भारत में अस्पृश्यता को प्रतिबन्धित किया जाना, उनका उल्लेखनीय कार्य था ।

महिला अधिकारों के अग्रदूत :

डॉ॰ अम्बेड़कर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समानता के पक्षधर थे । अतः वह महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण मानसिकता के प्रबल विरोधी थे । उनके महिला अधिकारों को लेकर मूल रूप से चार उद्देश्य थे । जैसे :–

1. पिता की सम्पत्ति में स्त्री का बराबर अधिकार ।
2. विवाह–विच्छेद में स्त्री का पूर्ण अधिकार ।
3. स्त्रियों को समाज में समान भागीदारी ।
4. जन्म से ही स्त्री को अबला समझने वाली मानसिकता की समाप्ति।

डॉ॰ भीमराव अंबेडकर का मुख्य लक्ष्य लिंग भेदभाव को समाप्त करना तथा महिलाओं का सशक्तिकरण था। इस लक्ष्य की

पूर्ति के लिए डॉ॰ अंबेड़कर ने संविधान में कई प्रावधान करके महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा दिया है।

शिक्षा के प्रति जागरूकता :

डॉ॰ अम्बेड़कर ने शिक्षा को समाज के पिछड़े वर्गों की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए एक प्रभावशाली साधन माना । उनका कहना भी था कि "शिक्षा शेरनी का दूध है, जो पिएगा वो दहाड़ेगा ।" उनका मानना था कि व्यक्ति जितनी शिक्षा ग्रहण करता चला जाता है, उसकी प्रगति की संभावनाएँ उतनी ही बढ़ती चली जाती हैं। डॉ॰ अम्बेड़कर दलितों की शिक्षा के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक थे । उनका कहना था कि दलित वर्गों का उत्थान देश के प्रबुद्ध लोगों की जिम्मेदारी है । इस प्रकार उन्होंने पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की छत्रछाया में स्कूलों, कॉलेजों और छात्रावासों की एक श्रृंखला स्थापित की । पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना 1945 में की गई थी। डॉ॰ अंबेड़कर के लिए शिक्षा का अर्थ केवल अकादमिक स्तर ही नहीं, अपितु उनका ध्येय दलितों को अपनी सामाजिक वास्तविकताओं के बारे में जागरूक करना और उनमें जातिवाद से लड़ने के लिए साहस और प्रतिबद्धता का विकास करना था । इन्हीं हितों के लिए उन्होंने चार पत्रिकाओं को प्रकाशित भी करवाया, जैसे :– मूकनायक (1920), बहिष्कृत भारत (1927), समता (1929) और जनता (1930)। जनता को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आपने अपने अधिकार को दृढ़ता से स्थिर करते हुए प्रस्तुत करना है । यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आपमें और मूल पशु में कोई अंतर नहीं रह जाता ।"

जातिवाद के विरोधी :

डॉ॰ अम्बेड़कर जी का मानना था कि जातिवाद शोषण और असमानता के स्थिरीकरण का कारण है। उनके अनुसार भारत में वर्ण– व्यवस्था के कारण ब्राह्मणों का प्रभुत्तव इतना रहा है कि उन्हें दलितों के प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करने की असीमित छूट मिल गई है। अंत में वे अनुभव करने लगे कि परम्परागत धार्मिक कर्मकांड और मनुस्मृति जैसे ग्रंथों का विरोध करने से अस्पृश्यों की स्थिति में सुधार लाया जा सकता है । 29 सितम्बर, 1927 को उन्होंने मनुस्मृति की प्रतियों को आग लगाकर खुलेआम विरोध जताया । इनके इस कृत्य से गाँधी जी भी दुखी हुए और उन्होंने अम्बेड़कर को हिन्दू धर्म के लिए एक चुनौती के

रूप में देखा । वस्तुतः अम्बेड़कर हिन्दू धर्म के विरोधी नहीं थे । उनकी दृष्टि में दोषी वे व्यक्ति थे, जो धर्म की ऐसी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्या करते थे, जिससे हिन्दुओं के एक वर्ग को दूसरे वर्ग को अपमानित करने का एकाधिकार मिल जाए । उनका दृढ़ विश्वास था कि जातिवाद को समाप्त किए बिना हिन्दू समाज की उन्नति तथा विकास सम्भव नहीं है । उन्होंने अंतर्जातीय विवाहों पर बल दिया, जिससे कि दो जातियों के मिलने से पारस्परिक निकटता अनुभव हो और अन्ततः जातिपरक भावना समाप्त हो जाए । हिन्दू धर्म के उद्धार के लिए उन्होंने ब्राह्मणवाद को समाप्त करने का अनुरोध किया । उन्होंने लोगों को ऐसे कार्य न करने की प्रेरणा दी, जो उन्हें अस्पृश्य बनाते हैं । उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दू धर्म में हमेशा समानता के विचार की बलि दी गयी है । अतः उन्होंने अपने जीवन की अन्तिम अवस्था में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली, जो समानता, मानववाद, करुणा तथा भ्रातृतव का पोषक है ।

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लोकतन्त्र :

डॉ॰ अम्बेड़कर जी ने 25 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा की बैठक में कहा था, "संविधान लागू होने से देश के राजनीतिक जीवन में समानता का पदार्पण होगा, लेकिन सामाजिक–आर्थिक जीवन में विषमता बनी रहेगी । यदि वह असंगति कायम रही, तो इस विषमता की आँच में झुलसा वर्ग हमारे महान प्रयासों से निर्मित इस राजनीतिक महल को ध्वस्त किए बगैर नहीं रहेगा । असमानता से पीड़ित लोग राजनीतिक लोकतन्त्र के ढाँचें को उखाड़ फेंकेंगे ।" इसलिए उन्होंने राजनीतिक लोकतन्त्र को यथार्थ बनाने हेतु सामाजिक, आर्थिक लोकतन्त्र पर बल दिया है । उन्होंने अपनी रचना 'स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटीज' में लिखा है, "जब तक आर्थिक संरक्षण नहीं हैं, तब तक मूल अधिकारों का कोई महत्त्व नहीं हैं । संसदीय लोकतंत्र की परिधि में सरकारी समाजवाद का मार्ग अपनाया जाए ।" सामाजिक लोकतंत्र एक जीवन–पद्धति है । इस पद्धति में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे (बन्धुत्व) के सिद्धांतों को एक–दूसरे से अलग–अलग करके नहीं देखा जाता, बल्कि तीनों को एक–दूसरे का पूरक मानते हुए एक–दूसरे को जोड़कर देखा जाता है । वे कहते हैं कि, "समानता के बिना स्वतंत्रता से बहुसंख्यकों पर अल्पसंख्यकों की सर्वोच्चता स्थापित हो जाएगी, स्वतंत्रता के बिना समानता से व्यक्तिगत पेशकदमी की हत्या होगी । भाई–चारे के बिना स्वतंत्रता और समानता को नैसर्गिक प्रवाह प्राप्त नहीं होगा ।" अम्बेड़कर जी का एक न्यायोचित्त समाज संतुलन सिद्धांत में निम्नलिखित कदम शामिल थे, जैसे :–

1. अस्पृश्यता से जुड़ी निर्योग्यताओं का निराकरण ।
2. अस्पृश्य जातियों को कानूनी संरक्षण ।
3. समान नागरिक संहिता ।
4. मूल अधिकारों की व्यवस्था ।
5. समाज में किसी भी आधार पर भेदभाव की मनाही ।

निष्कर्ष :

डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेड़कर एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । वे मानवता की सेवा को सर्वोपरि रखने वाले राजनीतिज्ञों की श्रेणी में आते थे । डॉ॰ अम्बेड़कर का जीवन छोटा और फिर भी अत्यंत असाधारण था। वास्तविक दलितों के मुक्तिदाता, एक महान् राष्ट्रीय नेता, एक महान् शिक्षाविद् के रूप में वे तत्कालीन नेताओं में अग्रणी थे । वे दलित वर्ग के आर्थिक और सामाजिक शोषण, मुख्य रूप से अत्यंत पिछड़ों के बारे में गंभीरता से चिंतित थे । अम्बेड़कर जी के व्यक्तित्व का मुख्य आधार मानवतावादी था । उन्होंने न केवल प्रचलित मान्यताओं को चुनौती दी, बल्कि समस्याओं के लिए समाधान भी प्रस्तुत किए । महिला अधिकारों के प्रहरी, जाति उन्मूलन, शिक्षा के प्रति जागरूकता, समाज व्यवस्था जैसे उनके अथक प्रयास भारतीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय एवं प्रेरणास्त्रोत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Ambedkar, B. R. (1946). What congress and Gandhi have done to untouchables. Bombay : Thacker & Company
2. Ambedkar, B. R. (1947). State and minorities. Delhi : Siddharth Books.
3. https://indianexpress.com/article/opinion/columns/atime- to-remembmer-ambedkar-women-legal-rightsindian- constitution-6I52797/

4. https://www.constitution of india.net/constituent- Assembly members/b_r_ambedkar
5. Jatav, D. R. (2006). Social Justice in Indian Perspective. Rajasthan : ABD Publication.
6. Ambedkar B. R. (1948). The Untouchables. New Delhi : Amrit Book Company.
7. Chahal, S. K. (2018). Dr. B. R. Ambedkar : The Maker of Modern India. Delhi

E-mail : playerdeepika143@gmail.com
D/690, Sardar Singh Market Birla Mandir Chowk,
Distt. Kurukshetra, Pin Code: 136118

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 199-202
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

In India Online Education Benefits and Challenges

Dr. Hema Ram Dhundhwal
Assistant Professor Department of Geography,
S.B.R.M. Govt. College, Nagaur (Rajasthan)

Abstract :-
In this present scenario there are rapid changes in technology; lots of changes in education sector are going to happen. If we compare online education to offline education there are lots of benefit about online education. In India lots of children are coming from rural areas so that they are facing lots of challenge like network issue, not having proper place for class with a comprehensive literature review, In this paper, we have identified keep factors which will boost online education in India . When we are using online education we get lots of benefit like low cost of online education. Easy to access, initiative by Government employer's recognition and bridging gap are the key factors the growth of online education. There are certain factors which are creating a hindrance in the development which include insufficient digital infrastructure, credibility and language used in online education. With the increase in number of internet users in India, with the help of this paper we also identify the opportunities for future in education sector.
Keywords: - online education, Face to face education, Challenge, Opportunities technology.

Introduction:-

The growth of technology has brought miracle changes in the every sphere of life. Technology has also impacted the process of education .The face to face education has experienced to remarkable change in the last 10 years. According to Kalpana, Andreas M. Haenlein Michael (2016), MOOCs are online courses which are aimed at unlimited participation and offer open access through the web. The major reason for the Phenomenal growth in online education is Moocs (Massive open online courses) Moocs have gained lot of popularity since the time of its development in 2008. Over 800 Universities around the world have launched at least one mooc till date. Our government has supported our education system because they feel that our education system has potential to develop the quality of education by the help of digitalization. Now a days marvelous changes are happening in the development of the internet and also world wide web that's provide various benefits to our education system. Online education provides potential opportunities to open up new market for higher education institution.

The online classes World health organization declared that covid-19 constituted in a global public health emergency by 11 March 2020, the WHO announced that the disease had become a pandemic. The global is spread of covid -19 promoted Malaysia to implement Phase of the conditional movement control order (CMCO) from 18 to 31st March 2020. From 18 March all schools, Colleges and University become closed and they started online facility. Higher education provides becoming increasingly aware of the variety of options for their engagement. Online

education is a two type one is synchronous and another one is asynchronous or some time both are together. Synchronous learning is associate to teaching and learning are both same time if you want to ask question with educator at same time so synchronous learning provide you this opportunity but in asynchronous you get recorded video there is no any option to discuss your problem but according to your choice you can see video. While many of the practices that are used in face to face contact modes can be adopted and utilized in the online content ,it is not only simply the case of applying a "one size fits all approach" which is what teaching staff relatively unfamiliar with the online environment and to do. When it comes to technology, Orland and Attard 2015) stated that "teaching with technology is not a one size fits all approach as it depends on the types of technology in use at the time and also the curriculum content being taught. The problems with a “One size fits all" approach are particularly highlighted in collaborative learning tasks where individual differences between Cohorts can be highlighted.

Review of literature:-

According to stack, Steven Dr.2015 online education has proliferated in the last decade. When he did research he has not got any major differences in the record of the students taking online course or offline classes.

According to Dr.Fahad N. AI Fahad investigates the attitudes and perceptions of 186 University Student's from different colleges towards effectiveness of mobile learning in their studies .Their research findings shows that online course engages students in the learning process, Supports strong student learning outcomes and saves cost for the universities also.

According to report by Google and KPMG, the online education market in India at the end of December, 2016 was dollar 247 million and it will reach dollar 1.96 billion by 2021 also India's online education market in the second largest Market after us. The finding of the report also states that the paid user base for online education services will also grow at least by 6 times example approximately 9.6 million users by 2027.

Challenges of online education:-

- **Infective time management: -** As we all know that time management play very important role in academic performance and lower levels of anxiety and students. "it's also visible that many students find it hard to find a balance between their history and their day to day lives when a students are not able to manage effective time management it associated with outcomes like poor sleep patterns and increase levels of stress effective time management can be especially difficult in a distance learning where students at challenge without the help of friends able to focused in class.
- **Lack of communication :-** There is a very limited direction interaction with the teacher and other people doing the course these courses which are self paced ,there is very less discussion among the pears most of the discussion takes place through email chat room or discussion groups. We found that there is not any campus atmosphere to improve social interaction. Therefore you are not able to do develop any social links which do help in the career growth.
- **Not receiving timely feedback: -** In teaching line feedback play very important role through this teacher engages with a student when feedback is delayed by additional days or weeks due to online format students get confused or insecure about your expectations in their improvement and their progress in classes.
- **Not receiving clear instructions or expectations: -** it's always crucial to said clear expectation for the students. They are only guess at whatever they are performing tasks and projects correctly.

- **Technical difficulties:-** Technical issues are major barrier to effective online learning. There are lot of students face challenges related to inadequate access to technology or unreliable internet connectivity. Our government has to provide facility to the students. Institutions and educators must ensure that a students have access to the necessary technology resources and provide support for loading on a single site, there are high possibility of the website crashing so that they delay is the classes and students do not get enough time to cover the syllabus.
- **Lack of productivity: -** There is one big drawback of online classes is that Students have to sit in one place for hours. The students may choose to sit in one place , scrolling through their phones rather than doing something productive.
- **Language of the course: -** The multi linguistic country is our India. In India vast majority of the population comes from rural areas they are unable to understand English but all content availability is in English. Hence these students who are not able to speak or understand.

Benefit of online education:-

- **Online education saves money and time :-** Through online education will save our time because anywhere anytime it can easily accessed we can access the content early morning leave evening at home or anywhere as well as convenient there is also download options of videos and content at your convenience time if we compare offline or online cost online courses very low also there is a great savings or hostel and transportation fees in all content is available online, so you need not to buy books also.
- **Ease of doing courses for working Professional: -** Online education gives great opportunity for working professional as they cannot leave their jobs to pursue higher education. Online education forms them variety of courses to choose from and this can help in finding new career options for them this is also supported by the report from Google and KPMG which states that rescaling and online certification is the biggest sector in online education.
- **Initiative by government of India: -** Now days are Government of India is also taking any initiatives to promote online education. They have started Swayam through which they are offering free education and certification courses to all main objective of this initiative is to provide quality education for which they have tied up with IITs, IIMs and NPTEL.
- **Gaining recognition among employers: -** In this present scenario most of the universities are offering online courses where otherwise admission is very difficult and costly online courses done from well respected universities are accepted by employers. Employers also know online education requires self discipline whenever you select University from where you are doing course also there are lots of option to choose from right selection from right educational institutions can help you make right career in right direction.
- **Bridge the gap between educational level and industry expectations: -** Online education refers an opportunity to enhance is skills through advance courses available in different domains curriculum reform are necessary to align educational outcomes with industry needs through this involves integrating vocational training and practical skill development into main stream education.
- **How can we overcome education gap: -** Education gap is a teaching approach where teachers create multiple lesson plans that cater to the different learning styles and abilities of a students. Teacher has to use different technique and instructions, to engage all students

and ensure that every student is engaged and learning, thus bridge the learning gap among learners.

The major reasons for an employment gap are:-

- Family reasons
- Illness
- Injuries
- Taking time to discover yourself for pursue your education
- Even a field business.

Conclusion:-

Now in this Era online education can change the whole future scenario in education if it can be implemented in joint collaboration with industry, Universities and government. Marvelous changes in course curriculum are required to bridge the gap so that a students are industry ready after passing out. In our education system education process needs to be manipulated by making it more practical with the use of technology we have to give him options according to their comfort zone they choose their language to better understanding of the content if understanding is better than only they are able to give the best. In our India majority of rural students are most they are coming from those area where they are unable to understand the content so that different language have to be increase to their reach and more opportunities for youth of rural India.

Reference:-

1. kushwah, Shivpal Singh; Vijaykumar J K. Content creation and E-Learning and Indian languages: a model
2. Nepaporn, SRICHANYACHON (2014). Turkish online journal of Distance Education - TOJDE July 2014 ISSN 1302- 6488 Volume: 15 Number:3 Article 5
3. Harman, T., &Banister,S.(2007). Face- to- Face versus online coursework: A comparison of cost and learning outcomes. Contemporary Issues in technology and Teacher education,7(4),318-326
4. Fahad N. A l- FAHAD,Dr.(2009).The Turkish Online journal of Educational Technology-TOJET April 2009 ISSN:1303 volume 8 Issue 2 Article 10
5. Khan, B.(1997). Web-based training. Englewood cliffs,NJ: Educational technology publications.

Web Links

1. https://www.class-central.com/report mooc-stats-2017/
2. https://swayam.gov.in/about
3. https://www.studyread.com/scope-of-Online-education/
4. https:/online learning success.org /advantages -and- disadvantages -of -online- and-classroom- learning/
5. https://inc42.com/resources/future-trends-digital- education -India/
6. https://timesofindia. Indiatimes.com /business/ India -business /number -Indian- internet-users- will- reach -500- million- by -June 2018-imai- says/ articleshow /62998642.cms
7. https://inc42.com/resources/future -trends-digital-education-india/
8. https://www. Charter college.edu/ news- hub/ props -and -cons -online- learning

Email - rahul1985jpr@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 203-207
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृषि और आर्थिक विकास

अन्नू यादव
भूगोल प्रवक्ता,
बाबा खेतानाथ महिला विद्यापीठ भीटेड़ा, बहरोड़

परिचय

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह घरेलू उत्पाद के साथ-साथ निर्यात में भी बड़ा योगदान देता है। आबादी का एक बड़ा हिस्सा, लगभग तीन चौथाई, कृषि पर निर्भर था जो एक निर्वाह व्यवसाय था और कृषि उत्पादों, कृषि आधारित उद्योगों आदि के व्यापार में लगे होने के कारण काफी हद तक इस पर निर्भर था। भारत के लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं और कई उद्योगों को अपना कच्चा माल कृषि क्षेत्र से मिलता है। ब्रिटिश शासन की शुरुआत में, भारतीय अर्थव्यवस्था, मोटे तौर पर, आत्मनिर्भर थी, जिसमें कृषि और उद्योग के बीच एक अच्छा संतुलन था। कृषकों के अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के अन्य वर्ग भी थे, जैसे कुम्हार, बुनकर, बढ़ई, धोबी, तेली, नाई और मोची। ये सभी व्यवसाय वंशानुगत थे और परंपरा से पिता से पुत्र को हस्तांतरित होते थे। इन व्यवसायों में लगे लोगों को उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए फसल के समय भुगतान किया जाता था। उस समय कृषि गतिविधियाँ मुख्य रूप से गेहूं, बाजरा और धान जैसी खाद्य फसलों के लिए समर्पित थीं। गांव में उत्पादित अधिकांश खाद्यान्न का उपभोग गांव की आबादी ही करती थी। उत्पादित कच्चे माल से हस्तशिल्प को पोषण मिलता था। अंग्रेजों ने एक व्यापार नीति अपनाई जिसने कच्चे माल के निर्यात और निर्मित वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहित किया। जमींदारों और ब्रिटिश एजेंटों के माध्यम से किसानों को खाद्य फसलों से नकदी फसलों (जूट, कपास, नील और तंबाकू) की ओर जाने और बाद में ब्रिटेन को निर्यात करने के लिए बेचने के लिए मजबूर किया गया। रेलवे के विकास से कृषि का व्यावसायीकरण तेज हो गया। खाद्य फसलों से नकदी फसलों की ओर जाने से खाद्यान्न की मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन बिगड़ गया, जिसके परिणामस्वरूप अकाल और कमी आई।

भारतीय संविधान में कृषि

भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II (राज्य सूची) में प्रविष्टि 14 के अनुसार कृषि एक राज्य विषय है। कृषि के अधिकांश घटक राज्य सूची में आते हैं, लेकिन कृषि के कुछ पहलू समवर्ती सूची/संघ सूची में आते हैं। इस प्रकार, मत्स्य पालन राज्य सूची (प्रविष्टि 21) से संबंधित है, लेकिन मत्स्य पालन और प्रादेशिक जल से परे मत्स्य पालन संघ सूची (प्रविष्टि 57) से संबंधित है।

संविधान (तीसरा संशोधन) के माध्यम से समवर्ती सूची में प्रविष्टि 33 का विस्तार अधिनियम, 1954 ने कृषि को वस्तुतः समवर्ती विषय बना दिया। यह इस प्रकार है: "व्यापार और वाणिज्य, तथा (क) किसी उद्योग के उत्पादों का

उत्पादन, आपूर्ति और वितरण, जहां संघ द्वारा ऐसे उद्योग का नियंत्रण संसद द्वारा कानून द्वारा सार्वजनिक हित में समीचीन घोषित किया जाता है, और ऐसे उत्पादों के समान प्रकार के आयातित माल (ख) खाद्य पदार्थ, जिनमें खाद्य तिलहन और तेल शामिल हैं (ग) मवेशियों का चारा, जिसमें खली और अन्य सांद्र शामिल हैं (घ) कच्चा कपास, चाहे ओटा हुआ हो या बिना ओटा हुआ और कपास के बीज और (ङ) कच्चा जूट।"

इस प्रकार, खाद्य तेलों और तिलहनों सहित खाद्य पदार्थों का व्यापार, वाणिज्य, उत्पादन, आपूर्ति और वितरण समवर्ती सूची के अंतर्गत आते हैं।

आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका

भारत जैसे कृषि प्रधान देश के आर्थिक विकास में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में इसने ऐसा किया है, हालांकि संतोषजनक नहीं है। कृषि के योगदान को नीचे दिए गए चित्र की सहायता से समझाया जा सकता है:

इन बिंदुओं को विस्तार से इस प्रकार समझाया गया है:

खाद्य और कच्चे माल की आपूर्ति: किसी अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि वस्तुतः विकास की प्रक्रिया को पोषण देती है। यह आय में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या में वृद्धि के कारण खाद्यान्न की ज़रूरतों को पूरा करती है। इसके अलावा यह खाद्य तेल, चीनी, कपड़ा आदि जैसी कई उपभोक्ता वस्तुओं के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करती है। ऐसी वस्तुओं की मांग की आय लोच, विशेष रूप से खाद्यान्नों के लिए, अल्पविकसित देशों में बहुत अधिक है। इसके अलावा, अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में खाद्यान्न एक महत्वपूर्ण मजदूरी-वस्तु है। कोई आसानी से कह सकता है कि भोजन की कमी के मामले में, कोई देश इन वस्तुओं को दूसरे देशों से आयात कर सकता है, लेकिन यह न तो संभव है क्योंकि विदेशी मुद्रा सीमित है और न ही यह अन्य औद्योगिक विकास उद्देश्यों के लिए आवश्यक है।

किसी अतिरिक्त पूंजी निवेश के। इसके अलावा, चूंकि ऐसे निर्यातों को मौजूदा और परिचित अंतरराष्ट्रीय बाजार की जरूरतों को पूरा करना होता है, इसलिए नए बाजारों की खोज या पोषण के लिए कोई अतिरिक्त लागत शामिल नहीं होती है।

पूंजी निर्माण के लिए संसाधन: कृषि भी बड़े पूंजी संसाधनों के लिए बढ़ते देश की जरूरतों को पूरा करने में योगदान दे सकती है। यह सब इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मौजूदा आधुनिक पूंजीवादी क्षेत्र छोटा होने के कारण, इस क्षेत्र से निवेश के लिए अधिशेष या मुनाफे के रूप में बहुत कम प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर, भारत की तरह कृषि भी एक बड़ा क्षेत्र है। यह औद्योगिक क्षेत्र के विकास में अधिक योगदान दे सकता है क्योंकि प्राथमिक उद्योग कृषि से प्राप्त कच्चे माल की मदद से चलते हैं। उदाहरण के लिए, चीनी उद्योग, जूस फैक्ट्री, कपास उद्योग आदि|

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान इस प्रकार है:

राष्ट्रीय आय में योगदान: देश की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान लगभग 25 प्रतिशत है। किसी देश में किसी निश्चित समय पर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का कुल योग सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के रूप में जाना जाता है। हमने देखा है कि कृषि क्षेत्र की तुलना में गैर कृषि क्षेत्र का जीडीपी में अधिक योगदान है, लेकिन आने वाले समय में इसे बढ़ाया जा सकता है। कृषि क्षेत्र बचत का मूल स्रोत है और इसलिए देश के पूंजी निर्माण को बढ़ाता है।

आजीविका का प्रमुख स्रोत: आजीविका के प्रमुख स्रोतों में से एक कृषि है। ग्रामीण भारत के 70 प्रतिशत से अधिक लोग अपनी आजीविका के लिए किसी न किसी रूप में कृषि गतिविधियों पर निर्भर हैं। अमेरिका, जापान और जर्मनी जैसे विकसित देशों में कृषि पर निर्भर लोगों की संख्या भारत की तुलना में कम है।

विदेशी व्यापार में वृद्धि: भारत में कृषि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में तेल केक, चाय, सब्जियाँ और फल, कॉफी, कपास, मसाले, तंबाकू, चीनी, फूल वनस्पति तेल और कच्चा ऊन शामिल हैं। भारतीय निर्यात में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। जैविक खेती के आविष्कार के साथ पिछले कुछ दशकों में निर्यात में भी वृद्धि हुई है।

अधिक पूंजी निवेश: आज की दुनिया में खेती, सिंचाई, भूमि की तैयारी, पट्टी बांधना, कटाई, हल चलाना आदि के लिए आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग किया जाता है, जिसके लिए भारी मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती है। आय से बचत होती है और बचत से निवेश होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि कृषि अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय में लगभग 25 प्रतिशत का योगदान देती है, इसलिए कृषक से बचत होगी और इससे पूंजी निर्माण होगा|

औद्योगिक संरचना, परिवहन और अन्य सेवाओं को प्रभावित करता है: कृषि औद्योगिक सेट अप के लिए बड़ी मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध कराती है। कई उद्योग कृषि उत्पादों और कई अन्य निर्मित कृषि उत्पादों को तैयार माल में संसाधित करते हैं। आंतरिक व्यापार भी कृषि कार्यों से बहुत प्रभावित होता है। परिवहन का एक बड़ा हिस्सा भी कृषि पर निर्भर है। व्यापार और वाणिज्य की अन्य संबद्ध सेवाएँ जैसे बैंकिंग, बीमा और भंडारण आदि कृषि से लाभ प्राप्त करते हैं।

सरकारी बजट में महत्वपूर्ण स्थान: भारत में कृषि को वोट बैंक भी माना जाता है। केंद्र और राज्य सरकारों के बजट एक तरफ भू-राजस्व और आयकर से प्रभावित होते रहे हैं, तो दूसरी तरफ इसके विकास पर होने वाले खर्च से। कृषि से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण बजटीय संचालन इस पर होने वाला भारी-भरकम खर्च है, जो कई उद्देश्यों के लिए किया जाता है, जिसमें कृषि विकास के लिए एक बड़ा हिस्सा शामिल है|

आर्थिक नियोजन में मदद करता है: राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व कई तथ्यों से दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कृषि भारत की परिवहन प्रणाली का मुख्य आधार है, क्योंकि रेलवे और सड़क मार्ग माल की आवाजाही से अपने व्यापार का बड़ा हिस्सा सुरक्षित करते हैं। आंतरिक व्यापार ज्यादातर कृषि उत्पादों में होता है। इसलिए, कृषि देश की आर्थिक योजना बनाने में मदद करती है।

भारतीय कृषि का पिछड़ापन

भारतीय कृषि को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कम उत्पादकता और कम उत्पादन भारत में कृषि समस्याओं के मूल में हैं। तुलनात्मक प्राकृतिक वातावरण वाले अन्य देशों की तुलना में भारत में कृषि की उत्पादकता अपेक्षाकृत कम है। हाल के वर्षों में कुछ सुधार हुए हैं, लेकिन कृषि की स्थितियों में बहुत बदलाव नहीं आया है। हमारी कृषि के पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार कारकों का विश्लेषण करना उपयोगी है।

गैर-आर्थिक और खंडित जोत: किसानों का हाशिए पर होना घरेलू आय पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला एक प्रमुख कारक है। 60.27 प्रतिशत से अधिक परिचालन जोत 1.0 हेक्टेयर से कम है और 22.18 प्रतिशत जोत 1-2 हेक्टेयर के खेत आकार समूह में हैं। नागालैंड को छोड़कर, अन्य राज्यों में भी परिचालन जोत का आकार बहुत छोटा है। ऐसी छोटी जोत गैर-आर्थिक हैं और इसका परिणाम कृषि में कम निवेश होता है, जिससे कम इनपुट का उपयोग होता है और कम उत्पादन होता है।

कृषि में अतिरिक्त या अधिशेष श्रम: कम कृषि श्रम उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण है कृषि में अत्यधिक भीड़भाड़। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है, भूमि पर दबाव भी बढ़ता है, क्योंकि प्राकृतिक वृद्धि औद्योगिक क्षेत्र द्वारा अवशोषित नहीं की जाती है।

ग्रामीण परिवेश को हतोत्साहित करना: भारत के कृषक गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं, वे अज्ञानी, रूढ़िवादी, अंधविश्वासी और अनपढ़ हैं। अंधविश्वास और विश्वास ही अभिशाप हैं, जो किसानों को उनकी आदिम खेती शैली से पूरी तरह संतुष्ट रखते हैं। इस श्रेणी के अधिकांश किसान उत्पादन की आधुनिक तकनीकों का उपयोग नहीं करते हैं।

अपर्याप्त गैर-कृषि सेवाएँ : किसानों को कृषि उपज की बिक्री से उचित राशि नहीं मिलती है। उन्हें वित्त और विपणन गतिविधियों के बारे में जानकारी नहीं है। कुछ स्थानों पर विपणन प्रणाली दोषपूर्ण और महंगी है। डीजल की बढ़ती कीमतों ने परिवहन लागत बढ़ा दी है। आधुनिक भंडारण सुविधाएँ अपर्याप्त और स्वदेशी हैं। किसान अभी भी अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए साहूकारों पर निर्भर हैं।

जोतों का आकार: भारत में प्रति किसान जोतों का औसत आकार बहुत कम है। लगभग 80 प्रतिशत जोतें 2 एकड़ से कम हैं। कृषि जोतें न केवल छोटी हैं बल्कि वे खंडित भी हैं। कुछ स्थानों पर, भूमि के टुकड़े इतने छोटे हो गए हैं कि साधारण हल भी चलाना असंभव है। खेती के लिए कोई उन्नत और वैज्ञानिक तरीके नहीं अपनाए गए हैं।

दोषपूर्ण भूमि पट्टा संरचना: भारत में भूमि पट्टा प्रणाली निराशाजनक और हतोत्साहित करने वाली रही है। इसमें स्थिरता को बढ़ावा देने वाली अंतर्निहित विशेषताएं हैं। इसकी मुख्य विशेषता बिचौलियों की उपस्थिति, छोटी और खंडित जोत, शोषणकारी मालिक-किराएदार संबंध और भूमि पर आबादी का भारी दबाव है।

खराब इनपुट और तकनीक: खेती की तकनीक और तरीके पुराने और अकुशल हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत अधिक और उत्पादकता कम होती है। इन तरीकों में सदियों से कोई बदलाव नहीं आया है। खाद और उर्वरक, उन्नत बीज, सिंचाई, औजार और अन्य प्रकार की परिसंपत्तियों के रूप में कृषि में निवेश बहुत कम रहा है।

सिंचाई की अपर्याप्त सुविधाएँ: भारतीय कृषि की कमज़ोरी का एक मुख्य कारण देश में सिंचाई सुविधाओं की कमी है। किसानों को बारिश पर निर्भर रहना पड़ता है और उनमें से बहुत कम लोग कृत्रिम सिंचाई की सुविधा का लाभ उठा पाते हैं। कभी-कभी सूखा और बाढ़ भी पूरी खेती और फसलों को बर्बाद कर देते हैं।

उन्नत प्रौद्योगिकी का कम उपयोग: भारत में उच्च उपज देने वाली किस्मों (HYV) को अपनाना बहुत दुर्लभ है। यद्यपि गेहूँ का 85 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र HYV के अंतर्गत आता है, लेकिन यह सकल फसल क्षेत्र का केवल लगभग 2 प्रतिशत ही कवर करता है। HYV क्षेत्र की धीमी वृद्धि का महत्वपूर्ण कारण उपयुक्त बीजों की अनुपलब्धता, पारंपरिक बीजों का प्रभुत्व, अनुशंसित बीजों की कम आपूर्ति और दोषपूर्ण वितरण प्रणाली है।

कृषि में नवाचारों का अभाव: बाढ़ के समय फसल के अंकुरित होने की समस्या से बचने के लिए मानसून से पहले की बारिश से बचने के लिए वैकल्पिक फसलों का अभाव एक बड़ी समस्या है। स्थानांतरित खेती के लिए बेहतर फसल प्रबंधन प्रथाओं का अभाव है। भंडारण, प्रसंस्करण और विपणन की सुविधाएँ विशेष रूप से जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं के लिए अपर्याप्त हैं।

ग्रामीण परिवहन और संचार नेटवर्क: अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र बरसात के मौसम में सड़कों की अनुपलब्धता के कारण दुर्गम रहते हैं। सड़कें अत्यधिक क्षतिग्रस्त पाई जाती हैं और ग्रामीणों की पहुँच के लिए कोई उचित परिवहन सुविधाएँ नहीं हैं।

सारांश

राष्ट्रीय कृषि नीति का उद्देश्य भारतीय कृषि की विशाल अप्रयुक्त विकास क्षमता को साकार करना, कृषि विकास को गति देने के लिए ग्रामीण बुनियादी ढांचे को मजबूत करना, मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना, कृषि व्यवसाय के विकास में तेजी लाना, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजित करना, किसानों और कृषि श्रमिकों तथा उनके परिवारों के लिए उचित जीवन स्तर सुनिश्चित करना, शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन को हतोत्साहित करना तथा आर्थिक उदारीकरण और

वैश्वीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करना है। इस मॉड्यूल में पहले भाग में कृषि, उसका इतिहास तथा भारत के संविधान में कृषि पर चर्चा की गई है। फिर देश के आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को विस्तार से समझाया गया है। अंत में कृषि की प्रगति के उपायों पर प्रकाश डाला गया है|

संदर्भ ग्रंथ सूचि-

1. शेख सलीम (2009)। बिजनेस एनवायरनमेंट। नई दिल्ली-110017: पियर्सन एजुकेशन।
2. बागची अमरेश (2011)। रीडिंग्स इन पब्लिक फाइनेंस। नई दिल्ली-110020। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. झा प्रवीण (2011)। भारत में प्रगतिशील राजकोषीय नीति। नई दिल्ली-110044। SAGE प्रकाशन इंडिया इंडिया प्राइवेट लिमिटेड।
4. कपिला उमा (2007). 1947 से भारत का आर्थिक विकास. नई दिल्ली-110002. अकादमिक आधार.
5. दत्त और सुंदरम (2011)। भारतीय अर्थव्यवस्था। नई दिल्ली-110055। एस. चंद एंड कंपनी लिमिटेड।
6. अग्रवाल ए.एन. (2007). भारतीय अर्थव्यवस्था-विकास और नियोजन की समस्याएं. नई दिल्ली-110002. न्यू एज इंटरनेशनल (पी) लिमिटेड.

मोबाइल नंबर - 97859 26708

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 July 2025 Page No. : 208-211
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'संत कबीर की जीवन–दृष्टि'

गीता देवी
हिन्दी – विभाग,
श्री लाल नाथ हिंदु कॉलेज रोहतक।

शोध–सार

संत कबीर भक्तिकालीन निर्गुण काव्य धारा में संत काव्य परम्परा के सुविख्यात कवि थे उन्होंने अपने कर्म, योग, ज्ञान और भक्ति द्वारा सच्चे ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया। इनकी वाणी का प्रमुख उद्देश्य ब्रह्मानंद को प्राप्त करना रहा है। इन्होंने जो संदेश दिया उसमें जीवन का सच्चा संदेश छिपा हुआ है। समाज कल्याण की भावना भी उसमें पूर्णतया निहित रही है। इनका व्यक्तित्व व कृत्तित्व बहुत आकर्षक व बहुमुखी था। वे समाज को किसी धर्म विशेष में न बाँटकर सच्चे मानव का संदेश देते हैं। मानव–धर्म किसी भी बंधन में नहीं बँध सकता। यही कारण है कि इन्होंने न तो हिन्दू और न ही मुस्लिम धर्म का समर्थन किया, सांसारिक वस्तुओं को भी महत्त्व नहीं दिया। इन्होंने गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए ईश्वर भक्ति पर बल दिया। वर्तमान समय तेजी से बदल रहा है, जो भी मूल्य अपने आपको वर्तमान मूल्यों से जोड़े नहीं रख पाते, उनको नकार दिया जाता है। लेकिन इनके जीवन–मूल्य वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं।

कबीर के जीवन–दर्शन को समझने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि जीवन दर्शन का अर्थ क्या है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवन दर्शन का अर्थ है– कवि का जीवन तथा जगत के बारे में दृष्टिकोण भले ही काव्य तथा दर्शन अलग–अलग विषय है, फिर भी काव्य में कुछ–न–कुछ दार्शनिक विवेचन भी रहता है। कबीर अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। कबीर विश्व–संत हैं। धरती और इस पर विद्यमान जीवन की खातिर कबीर का जीवन एक लम्बी सतत प्रार्थना है। कबीर का सहज, सिद्धों के सहज से भिन्न है, तो नाथों के सहज से भी भिन्न है। जो साधक सहज रूप से सारे विषय–विकारों का त्याग कर देता है, पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है, वही सहज–साधक कहलाता है–

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हें कोई।
जिन्ह सहजै विषया तजी सहज कहीजै सोई ।।

समकालीन साहित्यकार अपने को कबीर से जोड़ते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी सच्चाई, आध्यात्मिक दृढ़ता व संवदेनशीलता के बल पर जिसने उस समय के शासकीय, उच्चवर्गीय सत्ताओं से लोहा लिया, उससे जुड़ना गर्व की बात है। किन्तु इस सच्चे शूरमा से जुड़ना इतना आसान नहीं है, इसकी करनी से भी जुड़ना पड़ेगा। यह निर्विवाद सत्य है कि अपनी सुख–सुविधाओं को त्याग कर इनकी बनाई राह पर चलना अंगारों पर चलने के समान है कबीर ने अध्यात्म और परमात्म का अहसास कभी नहीं छोड़ा। किसी को हिन्दु, मुसलमान, राजा और रंक नहीं माना–

हों न मरिहै मरिहै संसारा ।
हरि मरिहैं तो हम हूँ मरिहौं ।
हरि न मरे हम काहे मरिहाँ ।।

कबीर ने पूर्ववर्ती धर्म–सम्प्रदायों के अनुयायी जैनों बौद्धों के आचार–व्यवहारगत भटकावों और पतन को देखते हुए एक भिन्न मर्यादित, संयमित, सात्विक चिन्तन, एवं जीवन–पद्धति का विकास

किया। यहीं, इसी आधार –स्थली पर खड़े होकर कबीर मानव–चरित्र में आये स्खलनों और वेश्या नारी को खरी–खोटी सुनाते हैं, सती तथा चरित्रवान की प्रशंसा करते हैं। ये माया को त्यागने की बात कहते है, क्योंकि माया कामिनी नारी का ही प्रतिरूप है–

कबीर माया पापणी, लालै लाया लोग।
पूरी किनहूँ न भोगई. इनका इहै वियोग ।।

आज के भारतीय समाज में उग्र साम्प्रदायिकता की आँधी चल रही है, धर्म के नाम पर घृणित रूढ़ियों को बढ़ावा मिल रहा है।

कबीर के प्रश्न उच्च वर्ग और उच्च वर्ग की नैतिक मान्यताओं को चुनौति देने वाले, उनकी बखिया उधेड़नेवाले हैं। वे मान्यताएँ चाहे कबीर युग की हों या आज के युग की। साथ ही वे नई नैतिक चेतना की आवश्यकता का बोध पैदा करने वाले हैं। उन प्रश्नों की कौंध लोगों के दिमाग पर छाए भ्रामक विचारों की धुन्ध को छांटने वाली है कबीर के प्रश्न जितने सहज और बेलाग है, उतने ही तिलमिला देने वाले–

"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढै बन माहि ।

ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि ।।'

कबीर लोकजीवन में प्रचलित ऐसे अन्धविश्वासों का भी खण्डन करते हैं जो मनुष्य के आत्मविश्वास का नाश करते हैं। उनके समय में यह अन्धविश्वास प्रचलित था कि जो काशी में मरता है वह मोक्ष पाता है, जो मगहर में मरता है वह स्वर्ग पाता है। लेकिन कबीर ने इस उक्ति का खण्डन किया है, उनका मानना है कि इस प्रकार की अर्थहीन बातें एक तो भक्ति का निरादर और दूसरे आत्मविश्वास का अन्त करती हैं–

"लोकमति का भोरा ऐ।
जो कासी तन तजै कबीरा, तो रामहि कौन निहोरा रे

कबीर जनता के कवि वे और जनता के प्रति उनके हृदय में असीम करूणा और अनुराग का भाव था। उन्हें राजा के घर जाने में आपत्ति थी। एक पद में उन्होंने कहा भी है– 'हे राजन, तुम्हारे घर कौन आएगा? तुम्हारे दूध से अधिक मैंने विदुर के पानी को अमृत माना है। तुम्हारी खीर की तुलना में मैंने उनका साग पाया जिसका गुण गाते–गाते मैंने सारी रात बिता दी।' अतः कबीर का स्वामी आनन्दमय का विरोध करने वाला है, जिसने किसी जाति–बन्धन को नहीं माना। कबीर सच्चे समाज–सुधारक थे, उन्होंने अपनी वाणी द्वारा अपने युग की आचार – प्रवणता, सामाजिक अन्याय और हिन्दु – मुसलमानों के वैमनस्य पर लगातार आक्रमण करते मानवीय आदर्शों की स्थापना की. वे निश्चय ही युगानुरूप हैं। उनका महत्त्व न केवल तत्कालीन समय में बल्कि वर्तमान समय में भी हुए जिन देखा जा सकता है।

कबीर बेशक पढ़े–लिखे न थे, लेकिन उन्होंने अपने ज्ञान की ज्योति से समस्त संसार को प्रकाशित किया। कबीर एक महान् सन्त व समाज सुधारक ही नहीं अद्वितीय कवि भी है। कबीर ने अपने समय के भारीतय समाज में धर्मा जातियों और सम्प्रदायों के बीच फैले ऊंच–नीच के भेदभाव और उससे उत्पन्न द्वेष और घृणा के भीषण सच को देखा था। उन्होंने घर, वन, बाजार, सब जगह सच का साक्षात्कार किया है। कबीर ने जिस भीषण सच और भयावह सम्भावनाओं का साक्षात्कार किया था, उससे भारतीय समाज को बचाने के लिए वे एक ऐसे लोकधर्म का विकास चाहते थे जिसका आधार प्रेम हो। एक प्रश्न यह भी उठता है कि "समाज' क्या हैं? मानवश समाज या जो उनकी आँखों के सामने का हिन्दु समाज और मुस्लिम समाज ? कबीर का उद्देश्य आत्म–निर्माण है या 'सार्वभौम समाज–निर्माण? वे नहीं मानते कि समदर्शी मानव समाज को वर्णों में बाँटता है। सन्त कबीर का मानस जिस तरह के समाज का स्वप्न देख सकता है, वह सम्भवतः इस प्रकार का हो सकता है। वह मानता है कि संत कबीर की दृष्टि 'चिदाद्वैतवादी' है। अतः उनके समाज में रहने वाले लोगों की दृष्टि चेतनाद्वैतवादी होनी

चाहिए। कबीरदास का मानना है कि हम सभी बाहर से मेल ही अलग–अलग है, लेकिन भीतर से एक है अर्थात एक ही परमेश्वर की कृत्ति हैं, वे कहते भी है–

"करत विचार मनहिं मन उपजा ना कहुँ गया न आया।'

कबीर का ज्ञान पुस्तकीय न होकर अनुभवाधारित थी। वे शास्त्र–वेद को प्रमाण न मानकर अपने अनुभव और साधना से प्राप्त सत्यों को स्वीकार करते थे। वे जीवन में सदैव निष्पक्ष और समरस रहे। वे सज्जन की प्रशंसा व दुर्जन की निंदा किया करते थे। यही कारण है कि उन्होंने जीवन में दोष दर्शन पर हिन्दुओं मुसलमानों दोनों की आलोचना की है। गुण चाहे नीच से नीच व्यक्ति की झोली में क्यों न हो, कबीर उसके ग्राहक थे। यह कबीर की समरसता, सहिष्णुता और सुयोग्यता की ही देन थी। उनकी दृष्टि में सामंजस्य बहुत ही आवश्यक है, उसके बगैर जीवन दूभर हो जाऐगा। दूर–दृष्टि, दिव्यदृष्टि और समय को पहचान सकने का बल, काबीर की विशेषताएं थी। कबीर का व्यक्तित्व, जीवन–दर्शन का व्यावहारिक पहलू है।

वास्तव में कबीर ब्राह्मण और शूद्र को एक ही ज्योति से उपजे मानते हैंय इसलिए वे बार–बार समूची मानवता की एकता की बात करते हैं। उन्होंने न हिन्दुओं और न ही मुसलमानों का पक्ष लिया, बल्कि उन्होंने हिन्दू–मुसलमान दोनों की साँझी खबर ली है–

"देखो साधो जग बौराना
हिन्दू कहत राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोक लरै भस्तु है मरम कोई नहिं जाना ।।'

कबीर की पक्षधरता और प्रतिबद्धता किसी के प्रति है, तो मानवता के प्रति है। ये ब्राह्मण के इसीलिए विरोधी हैं, क्योंकि उसने आडम्बर, कर्मकाण्ड और झूठे फरेबों के द्वारा जगत को प्रपंचों में उलझा दिया है। वह वर्ण– व्यवस्था और जाति–व्यवस्था को अपने अनुरूप ढालकर उसमें शीर्ष पर जा बैठा है और भेदभाव का मिथ्या प्रचार करके समाज में अनावश्यक व्यंग्य, शोषण और विषमता का विष फैला रहा है। वह शूद्रों को पढ़ने का अधिकार तक नहीं दे रहा है। इसीलिए उनमें, उसकी पोथियों और शास्त्र – ज्ञान के प्रति गहरा तिरस्कार है, इसीलिए वेद और संस्कृत के प्रति चोट है। यह चोट अन्याय के विरूद्ध है, किसी खास जाति के विरूद्व नहीं । यदि कहीं "ब्राह्मण" शब्द प्रयुक्त हुआ भी है तो वह ढोंगी कर्मकाण्डों का प्रतीक है, समूची ब्राह्मण जाति का नहीं यदि कबीर को समूचे उच्च वर्ग से द्वेष होता तो फिर वे राम, गोविन्द जैसे शब्दों से भी बचते। वैष्णव वल्लभाचार्य हो या अन्य कोई सन्त राम या कृष्ण भक्त आखिरकार अधिकाशं ब्राह्मण ही थे।

वास्तव में, कबीर अपनी वैज्ञानिक दृष्टि के कारण यह स्पष्ट जानते थे कि
ऊँच–नीच है मचिम बानी एकै पवन एक है पानी।
एक मटिया एक कुंभारा एक समन्हि का सिरजनहारा।।

सभी प्राणियों का सृजनहार एक होने के कारण वे कभी भी उच्च जाति का तिरस्कार न कर सके उन्हें अपने से नीचा न मान सके या उनको मारों जूते चार जैसा जुनूनी वचन न कह सके। वे सबकी समानता का राग अलपते थे, इसीलिए उन्होंने उस राग को बेसुरा करने वाले स्वर पर चोट की थी। इस प्रवृत्ति को दलितों की पक्षधरता कहना समीचीन नहीं है। वास्तव में कबीर को दलितों तक परिमित करना उनके ऋषितुल्य व्यक्तित्व को बौना बनाना है। वे सबके थे, किसी विशेष वर्ग के नहीं।

कबीरी चेतना लोक से जुड़ी है। लोक का दुख–दर्द कबीर की आत्मा को संवेदित करता है, लोकाडम्बर उसे व्यथित करते है उसने समाज को एक नई दिशा प्रदान की। यही कारण है कि कबीर का ज्ञान न केवल तत्कालीन समय में, बल्कि वर्तमान समय में भी महत्त्वपूर्ण है। यह उनका निरन्तर जागरण ही था जो उन्हें तत्त्व चिन्तन की ओर अग्रसर करता रहा। इस चिन्तन के दौरान तत्कालीन धर्म, दर्शन व साधना पद्धतियों से उन्होंने सार को गहि लिया। इससे भी आगे लोक का अविभाज्य अंग होने के कारण उन्होंने अपने अनुभवों को भी उस चिन्तन से जोड़ा–

"सतगुरू दीन्हीं तत्त्व विचार मूल गहो अनुभव विस्तार ।'

विविध भारतीय दर्शन के तत्त्वों को सन्त कबीर ने नया आयाम प्रदान किया सभी दर्शन उन्हें तत्वानुभूति के चिन्तन के स्तर पर प्रमाणित करते हैं। सन्त कबीर पच्चीस तत्त्वों के सिद्धान्त निरूपण की

बजाय उनके साधना क्षेत्र से जुड़े है उन्होंने माया को नागिन, वेश्या, ठगिनी, बगुली, सर्पिणी, व्याभिचारिणी, तेलिन, कामिनी, मोहिनी, विश्वासघातिनी, पापिन, नटनी, डाकिनी आदि कहा है

"माया महाठगिनी हम जानी

तिरगुन फांसि लिये कर डोले बोले मधुरी बानी ।'

कबीर का कहना है कि माया ही मनुष्य को भ्रम में डालती है कबीर ने पंच तत्त्वों, सम्बंधों, जप–तप–योग आदि में माया का प्रपंच देखा है। माया का मोहपाश सांख्य की प्रकृति के पहले तत्त्व महतत्त्व से आरम्भ होता है। कबीर ने अविद्या नाश और ज्ञानोदय के लिए इन पक्षों का बहुविध उल्लेख किया है। अहंकार रहित हुए बिना त्रिविध ताप से छुटकारा नहीं होता–

"आपा जानि उलति ले आप तो नहीं ब्यावै तीन्यू ताप।'

सन्त कबीर की वाणी में व्यक्ति, समाज और अध्यात्म एक साथ व्यंजित हैं। उनकी दृष्टि में संत की विशिष्टता इस बात में है कि वह समाज को सही राह दिखलाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1 डॉ. बदलेव वंशी, पूरा कबीर, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली ।
2 विद्यानिवास मिश्र, कबीर वचनामृत, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
3 डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरवैक्स, नौएड़ा 1999
4 शिव कुमार मिश्र, भक्तिकाव्य और लोकजीवन, पीपल्स, लिटरेसी प्रकाशन, दिल्ली, 1993
5 डा० पुष्पलाल सिंह, कबीर ग्रन्थावली, अशोक प्रकाशन, दिल्ली।
6 अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य, साहित्य भवन, आगरा।
7 डॉ0 गीता कौशिक, सामाजिक बुराईयों के अन्मूलन में कबीर का योगदान, नमन प्रकशन, दिल्ली।
8 मुहम्मद जकी, बेहद्दी मैदान में कबीर, प्रकाशक शिल्पायन, दिल्ली।

Email Id – nandalgeeta95@gmail.com

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course